OF

THE 'SANSKRIT TEACHER'

BY

ADUR VIDYÂBHÛSHANA, KAMALÂŚANKARA PRÂNAŚANKARA
TRIVEDÎ, B A,

RETIRED PRINCIPAL P R TRAINING COLLEGE, AHMEDÂBÂD
(HONORARY FELLOW OF THE UNIVERSITY OF BOMBAY
AND
IN SANSKR E BOMBAY AND THE PANJAB UNIVERSITIES)

nsla d into Hindi

BY

LAKSHMANA ŚÂSTRÎ TAILANGA, SÂHITYÂCHÂRYA,
PROFESSOR OF SANSKRIT, QUEEN'S COLLEGE BENARES

MACMILLAN & CO, LIMITED
LONDON, BOMBAY, CALCUTTA, AND MADRAS
1917

e Rs 2/-

संस्कृतशिक्षिका

अर्थात्

रावबहादुर विद्याभूषण कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी, बी ए,

रिटायर्ड प्रिन्सिपल, पी आर् ट्रेनिंग् कालेज, अहमदाबाद,

मुंबई विश्वविद्यालयके आनररी फेलो, बंबई तथा पंजाब

विश्वविद्यालयके संस्कृत परीक्षक विरचित

'संस्कृत टीचर्'का

हिन्दी रूपान्तर।

अनुवादक

पण्डित लक्ष्मणशास्त्री तैलङ्ग, साहित्याचार्य,

संस्कृत प्रोफेसर, क्वीन्स् कालेज,

बनारस।

प्रकाशक

मैक्मिलन् एण्ड कम्पनी लिमिटेड्

लण्डन्, बम्बे, कलकत्ता, और मद्रास।

१९१७

मूल्य २)

भूमिका।

—०—

संस्कृत भाषा प्राचीन साहित्यका एक अमूल्य निधि है और वह प्रत्नतत्त्वशास्त्र, भाषाशास्त्र, तथा इतर शास्त्रोंकी दृष्टिसे सब जातियोंको लाभदायक है, विशेषत हिन्दुओंको, जिनका जीवन धर्ममय है। मातृभाषाके यथार्थ ज्ञान तथा परिपाकके लिये और धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्यके—जो सभ्य जगत्का एक आश्चर्य है—बोधके लिये संस्कृत भाषाका अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इसकी लालसा लोगोंमें अवश्य उत्पन्न होनी चाहिये। जर्मन्, अंग्रेज, अमेरिकन् इत्यादि जातियां इस पर मुग्ध होकर इसके अभ्यासके लिये अपना जीवन समर्पण करते हैं।

मैं जब स्कूलों तथा कालेजोंमें कार्य करता था तब मेरे ध्यानमें यह बात आयी कि विद्यार्थियोंमें रुचि न होनेसे संस्कृतकी बड़ी हानि हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें संस्कृतका अनुराग उत्पन्न हो सकता और वह स्थिर भी हो सकता है यदि योग्य दिशासे उसका निरूपण किया जाय और साहित्यके बहुमूल्य खज़ाने उनके सामने रक्खे जाय। 'संस्कृत शिक्षिका' कुछ नयी रीतिपर बनायी गयी है और इसका उद्देश यह है कि संस्कृतमें विद्यार्थियोंका अनुराग उत्पन्न हो और उसका अभ्यास सुकर हो।

इस ग्रन्थमें विशेष बातें ये हैं —

(अ) प्रति पाठमें विद्यार्थियोंके लिये संस्कृतसाहित्यका साराम दिया गया है। वाक्य, प्रबन्ध, तथा श्लोकोंके चुनावमें बड़ा ध्यान दिया गया है। वे महाकवियोंके प्रबन्धोंसे, महापुराणोंसे, तथा उपनिषदोंसे लिये गये हैं। इनमें कई लोकोक्तियां हैं जो प्रतिदिनके जीवन तथा बातचीतके लिये उपयुक्त हैं (जैसे—गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः, अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः, आम्रान् पृष्टः कोविदारान् व्याचष्टे, क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः, महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः), तथा कई ऐसे श्लोक हैं जो उपदेश तथा उपयोगितासे पूर्ण हैं। इनसे चित्तपर उदात्त शील, श्रद्धा, उत्तमोंके प्रति आदर तथा विनय, विद्याका अनुराग, शक्ति, तथा प्रभुताका आदर, तथा परमेश्वरकी भक्ति, इत्यादिके संस्कार दृढ़ होंगे।

(आ) इसमें गद्यपद्यमय कविताओंका बड़ा संग्रह है। गद्यभाग पञ्चतन्त्र, दशकुमारचरित, कादम्बरी, तथा श्रीशङ्कराचार्यके ग्रन्थोंसे लिया गया है। इनमें विद्यार्थियोंको हि[illegible] रीतियोंके नमूने मिलेंगे। पद्यभाग चाणक्य, भर्तृहरि, कालिदास, भवभूति, इत्यादिके ग्रन्थों तथा रामायण, महाभारत, तथा अन्य ग्रन्थोंसे चुना गया है।

(इ) भाषाका उत्तम अभ्यास काव्योंसे हो सकता है जिनमें उत्तम विचार मनोहर रचनामें प्रकाशित किये गये हैं। ऐसे ऐसे सुभाषितरत्नोंके कण्ठस्थ कर लेनेसे भाषापर अधिकार तथा गाढ

अनुराग उत्पन्न होगा। पाठोंमें तथा ग्रन्थके अन्तमें दिये श्लोकोंके चुनावमें, जो लगभग २०० के हैं, इस बातपर विशेष दृष्टि दी गयी है।

(ई) विद्यार्थियोंका संस्कृतके छन्द तथा अलङ्कारोंमें प्रवेश करानेका यत्न किया गया है। गणोंके तथा मालिनी, वसन्ततिलका, हरिणी, शिखरिणी, इत्यादि प्रचलित छन्दोंके लक्षण दिये गये हैं। उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति, इत्यादि प्रसिद्ध अलङ्कारोंके लक्षण पाठोंमें तथा पुस्तकान्तकी टिप्पणियोंमें स्पष्ट किये गये हैं।

(उ) विद्यार्थियोंका ध्यान पहिले साहित्यकी ओर आकृष्ट किया गया है और व्याकरण उसका अङ्ग बनाया गया है, और ऐसा ही होना चाहिये। यह उद्देश अधोलिखित मार्गसे सिद्ध हुआ है। प्रतिपाठके आरम्भमें कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनका हिन्दीमें अनुवाद किया गया है। इनमें नये व्याकरणके रूप मोटे टाइपमें दिये गये हैं जिसमें विद्यार्थियोंका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो। इसके बाद तैयार रूपावली है। सबके अन्तमें नियम है जो उन रूपोंसे निकाले गये हैं। इस प्रकार अनुसृत पद्धति तुलनात्मक है। यह स्कूलके लड़कोंसे लेकर संस्कृतके जिज्ञासु वृद्ध पुरुषोंतक सभीको शिक्षाप्रद तथा मनोरञ्जक होगी। स्कूलके विद्यार्थियोंको पहिले रूपोंका पहिचानना सीखना चाहिये और इसके बाद उनका अभ्यास करना चाहिये। जिज्ञासु वृद्धोंके लिये केवल उनका पहिचानना पर्याप्त है।

(ऊ) इसमें संक्षेपसे प्राय वे सब व्याकरणके विषय आ गये हैं जिनका जानना संस्कृत साहित्यके अभ्यासके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अप्रयुक्त रूप जान बूझकर छोड दिये गये है। अध्यापक तथा परीक्षकके नातेसे मुझे इस बातका अनुभव हुआ है कि विद्यार्थी लोग अनियत रूपोको केवल परीक्षाके लिये रट लेते है और परीक्षासे छुटकारा पाते ही उनको भूल जाते हैं। वे लोग भाषामें प्रचलित शब्दरूप तथा धातुरूपोके साधारण नियमोंको नही समझते। इस त्रुटिके दूर करनेके लिये साहित्यमें साधारणत. प्रचारमे आनेवाले रूपोपर विद्यार्थियोंका ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसी उद्देश्यसे सन्धिके नियमोका, जो विविध रूपो के बनानेमे लगते हे, बडी सावधानीसे निरूपण किया गया हे और वे उदाहरणो से स्पष्ट किये गये है।

(ए) जो विषय अधिक सुगम तथा प्रचलित है वह पहिले दिया गया है और पीछेसे अधिक दुर्गम तथा कम प्रचलित विषय। समास तथा भूत कृदन्तो का प्रयोग संस्कृत साहित्यमे बहुत आया करता हे, इसलिये उनका पहिले प्रकरणो में समावेश किया गया है। भविष्यत् कालो का परोक्षभूतके पूर्व तथा सामान्य भूतकालके चतुर्थ तथा पञ्चम प्रकारो का निरूपण अन्यप्रकारोंके पूर्व किया गया है।

(ऐ) अन्तिम पाठमे कृत् तथा तद्धित प्रत्ययो का वर्णन है जो प्राय भाषामे मिलते हैं।

(ओ) संस्कृत व्याकरणके पारिभाषिक शब्दो मे यह,

विशेषता है कि वे अभिप्रायगर्भित हैं।¹ यदि यह बात विद्यार्थियों-को भलीभांति समझायी जाय, तो उनका कार्य बहुत कुछ सुगम होगा। मुझे यूनीवर्सिटीके परीक्षकके सम्बन्धमें यह कहते खेद होता है कि यह बात योग्य रीतिसे विद्यार्थियोंके ध्यानमें नहीं लायी जाती। यही कारण है कि विद्यार्थी लोग 'बहुव्रीहि' इत्यादि शब्दोंके लिखनेमें अनेक प्रकार की गलतिया किया करते हैं—जैसे कोई 'वहुरि' लिखते हैं, जो अत्यन्त उपहासास्पद है। इस आपत्तिको दूर करने के लिये इस पुस्तकमें प्रत्येक व्याकरण के पारिभाषिक शब्दोंका व्याख्यान किया गया है जिससे विद्यार्थियोंके मन पर उनका संस्कार दृढ होगा। जब विद्यार्थीको यह मालूम हो जाता है कि 'बहुव्रीहि' शब्द स्वयं बहुव्रीहि समास है और उस समासके लक्षणको बताता है, जब वह यह समझ लेता है कि 'तत्पुरुष' शब्दका विग्रह दो प्रकारोंसे हो सकता है और यह दोनो प्रकारके समासोंके लक्षणोंको सूचित करता है, जब उसे इस बातका ज्ञान हो जाता है कि वर्तमान तथा भूत ये शब्द स्वयं क्रमसे वर्तमान तथा भूतकृदन्त हैं, जब उसके समझमें यह बात आ जाती है कि छन्दोंका लक्षण प्रायः उस छन्दके पादमें कहा जाता है जिनका लक्षण बताता हो, तब उसका याद करनेका काम अत्यन्त सुकर तथा मनोरञ्जक होता है और उसका ज्ञान दृढ़ और चिरस्थायि होता है।

(औ) ज्ञानमें कुछ उन्नति होनेतक विद्यार्थियोंको अनुवादके लिये वाक्य नहीं दिये गये हैं। इसके बाद अनुवादके लिये

संस्कृत वाक्य दिये गये है। उत्तरोत्तर पाठोंमें ये वाक्य अधिक होते गये हैं परन्तु इतने अधिक नहीं कि विद्यार्थी उकता जाय। संस्कृतमें अनुवादके लिये थोडे भाषाके वाक्य दिये गये हैं।

(अ) विद्यार्थियोंमें स्वावलम्बनकी आदत—जिसके बिना इस जीवनमें कोई बडा उद्देश सिद्ध नहीं हो सकता—डालनेके लिये पुस्तकान्तमें दिये हुए गद्यपद्यसंग्रहोंका शब्दकोश नहीं दिया गया है। तथापि कठिन स्थलोमें टिप्पणियां दी गयी हैं तथा आवश्यक स्थानों पर प्रकरण समझाया गया है।

(अ) बुद्धिमान् विद्यार्थियोंके लिये परिशिष्ट दिया गया है। हमको आशा है कि यह उनके लिये उपकारक होगा जो पाणिनीय व्याकरणमें प्रवेश चाहते है और इससे आवृत्ति करते समय अच्छे विद्यार्थियोंका कार्य सुकर होगा।

सुरत। } कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी।

विषयसूची।

विषय	पृष्ठ
पाठ १—वर्ण	१—२
पाठ २—वर्तमानकाल	२—३
पाठ ३—वर्तमानकाल	३—६
पाठ ४—वर्तमानकाल	६—८
पाठ ५—उपसर्ग	९—१२
पाठ ६—अकारान्त शब्द	१२—१५
पाठ ७—अकारान्त शब्द	१६—२०
पाठ ८—इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द	२०—२६
पाठ ९—आत्मनेपद वर्तमानकाल तथा आकारान्त शब्द	२६—३१
पाठ १०—सर्वनाम	३२—३६
पाठ ११—द्वन्द्व और तत्पुरुष, ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द	३७—४३
पाठ १२—बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, सकारान्त शब्द, भूतकृदन्त	४३—५१
पाठ १३—इदम्, त्, च्, तथा ज् में समाप्त होनेवाले शब्द	५१—६०
पाठ १४—इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द, लोट् लकार (आज्ञार्थक) के रूप	६०—६९

विषय	पृष्ठ
पाठ १५—विधिलिङ् (विध्यर्थ), अदस्	६८—७६
पाठ १६—लङ्लकार वा अनद्यतन भूत, अस्मद् और युष्मद्	७७—८३
पाठ १७—ऋकारान्त शब्द	८४—८९
पाठ १८—इ, उ, तथा ऋकारान्त नपुंसक शब्द	९०—९५
पाठ १९—नकारान्त शब्द	९६—१०३
पाठ २०—कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग	१०४—१११
पाठ २१—वर्तमान कृदन्त	११२—११९
पाठ २२—वस् तथा ईयस्में समाप्त होनेवाले शब्द	११९—१२५
पाठ २३—सख्यावाचक (१ से १० तक)	१२५—१३२
पाठ २४—अनियत सज्ञावाचक	१३२—१४०
पाठ २५—स्वादि तथा तनादिगणके धातु	१४०—१४९
पाठ २६—क्र्यादिगणके धातु	१४९—१५६
पाठ २७—अदादिगणके धातु	१५७—१६७
पाठ २८—अदादिगणके धातु	१६७—१८१
पाठ २९—रुधादि तथा अदादिगणके धातु	१८१—१९४
पाठ ३०—जुहोत्यादिगण	१९४—२०६
पाठ ३१—विशेषण तथा क्रियाविशेषण	२०६—२१८
पाठ ३२—समास—अव्ययीभाव तथा तत्पुरुष	२१८—२२७
पाठ ३३—बहुव्रीहि तथा द्वन्द्वसमास	२२७—२३४
पाठ ३४—कारक	२३४—२४५

विषय	पृष्ठ
पाठ ३५—भविष्यत् तथा क्रियातिपत्ति	२४६—२५८
पाठ ३६—परोक्षभूत वा लिट्	२५८—२६८
पाठ ३७—परोक्षभूत	२६८—२७१
पाठ ३८—कुछ अनियत रूप	२७८—२८७
पाठ ३९—तद्धित और कृत् प्रत्यय	२८७—२९७
पाठ ४०—सामान्यभूतकाल	२९८—३०९
पाठ ४१—आशीर्लिङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, नामधातु	३०९—३१७
पाठ ४२—स्त्रीप्रत्यय तथा पत्रलेखनका प्रकार	३१७—३२६
१। चटकदम्पत्योः	३२७—३२९
२। वामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता	३२९—३३०
३। सिंहशशकयो	३३०—३३२
४। सर्पमण्डूकयो.	३३२—३३५
५। मान्धातृवृत्तान्त	३३५—३३६
६। कुमार चन्द्रापीड प्रति महाराजाज्ञा	३३६—३३७
७। चन्द्रापीड प्रति शुकनासोपदेश	३३७—३३८
८। ब्रह्मज्ञानविषयक गुरुशिष्यसवाद	३३८—३३९
९। नीति.	३४०—३४१
१०। राजभक्ति	३४१—३४२
११। अराजक राष्ट्रम्	३४२—३४३
१२। पञ्चवटी	३४३—३४४

विषय	पृष्ठ
१३। श्रीनिवासस्थानानि	३४४—३४५
१४। दम्पतीस्नेह.	३४५—३४७
१५। संयम	३४७—३४८
१६। आपदि शोकत्याग	३४८
१७। सन्तोष:	३४९
१८। आत्मज्ञानम्—कर्तव्यज्ञानम्	३५०—३५१
१९। अजविलाप	३५१—३५२
२०। प्रकीर्णानि सुभाषितपद्यानि	३५२—३६२
२१। स्तुतिपद्यानि	३६२—३६३
उद्धृत गद्यपद्योंपर टिप्पणी	३६५—३८३
परिशिष्ट (क) क्ष धातुके रूप	३८४
परिशिष्ट (ख) पाणिनीय पद्धति	३८५—४००
परिशिष्ट (ग) कृदन्तरूप	४०१—४०७
शुद्धिपत्र	[illegible]

प्रशंसापत्र।

—०००—

सूचना—वाबे गवर्मेण्टने 'संस्कृत टीचर्' और उसके गुजराती अनुवाद 'संस्कृत शिचिका' का स्कूलों तथा ट्रेनिंग कालेजोंमें पाठ्य पुस्तककी तरह उपयोग किया जाना मंजूर किया है। मध्यप्रदेशकी गवर्मेंटने 'संस्कृत टीचर्' का द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंमें तथा अलहाबाद यूनीवर्सिटीने सन् १९१९ की म्याट्रिक् परीक्षामें पाठ्यपुस्तक की तरह उपयोग किया जाना मंजूर किया है।

माननीय न्यायमूर्ति सर् एन् जी चन्दावरकर, एम् ए, एल् एल् बी महाशय लिखते हैं —

मैंने आपकी पुस्तक (संस्कृत टीचर) को पढ़ा और उसे अत्यन्त उपयोगी पाया। पाठोंका रचनाक्रम, टिप्पणियां, और उद्धृत गद्यपद्यसंग्रह अत्युत्तम है।

प्रो॰ ए ए मक्डानल, आक्सफोर्ड —

आखिर हमको आपकी पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला। जहांतक मेरा अनुभव है भारतवर्षके विद्यार्थियोंको संस्कृतविद्यामें प्रवेश करानेके लिये इससे उत्तम पुस्तक भारतवर्षमें छपी नहीं है। नवीन विद्यार्थियोंको संस्कृतविद्या बहुत रोचक बनायी जा सकती है यदि वह योग्य मार्गसे पढ़ाई जाय। परन्तु मैं समझता हूं, आजकल भारतवर्षमें बनी हुई पुस्तकोंमें, जिनको मैंने देखा है, यह बात नहीं पायी जाती। वे विशेषतः रटानेके लिये बनायी गयी हैं। उनमें मनोहर टिप्पणियोंके रूपमें बहुत कम ज्ञातव्य विषय होता है और उनमें अनावश्यक नियम तथा अप्रयुक्त रूप बहुत होते हैं। आपका व्याख्याका प्रकार, संस्कृत साहित्यसे सावधानीके साथ चुने हुए गद्यपद्य, छन्द तथा अलङ्कारों पर टिप्पणियां, तथा पाणिनीय व्याकरणपद्धति, ये सब विषय मेरी समझमें अत्युत्तम हैं।

मैं समझता हूं भारतवर्षीय यूनीवर्सिटियोंकी एण्ट्रेन्स् परीक्षाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपकारक होगा।

महामहोपाध्याय प हरप्रसाद शास्त्री, एम् ए, प्रिन्सिपल्, गवर्मेंट् संस्कृत कालेज, कलकत्ता —

अच्छा होता यदि आपकी पुस्तक इस प्रान्तमें भी चलायी जाती। यहां पर अभीतक वही पुराना नीरस संस्कृत पढानेका ढर्रा चला जाता है, जिससे विद्यार्थी घबडा जाते हैं। संस्कृत व्याकरणके नियम अत्यन्त क्लिष्ट और नीरस होनेके कारण विद्यार्थी लोग संस्कृतको छोड इतर भाषाओंका पढना पसन्द करते हैं। सचमुच ही आपने संस्कृत व्याकरणको एक सरस और विद्यार्थियोंके चित्तको अपनी ओर खींचनेवाली चीज बना डाला। इसकी सुन्दरता और सुगमता वस्तुतः चित्तको लुभानेवाली है। लोग संस्कृतभाषाकी, जिसमें ३६०० पाणिनिके और लगभग ५,००० कात्यायनके नियम हैं, शहदके छत्तेकी उपमा दिया करते हैं, जो अपने शहदको बचाता रहता है। जिस प्रकार मधुमक्खियां काटकर लोगोंको शहद तक पहुंचने नहीं देती उसी प्रकार क्लिष्ट नियम और उनकी सदोषता लोगोंको संस्कृत साहित्यके सौन्दर्य और माधुर्य तक पहुंचनेमें बाधा देते हैं। परन्तु आपने मधुमक्खियां पालनेवाले चतुर पुरुषके कुशल हस्तसे सब मधुमक्खियोंको उडा दिया और शहद हमारे बच्चोंके लिये सुलभ कर दिया है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि आपके परिश्रमोंसे आपका प्रान्त अच्छी तरह लाभ उठायगा। आपने यह सिद्ध कर दिया कि संस्कृत भी एक भाषा है जो किसी भाषासे कम नहीं। साथ साथ आपने यह भी सिद्ध कर दिया कि व्याकरणसे भाषाका अभ्यास अधिक उपयोगी है, भाषाका जाननेवाला स्वयं व्याकरणके नियम बना ले सकता है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि नियमोंके उदाहरणोंमें आपने आधुनिक संस्कृत न देकर प्राचीन काव्योंसे गद्य पद्य चुने। मेरी यह इच्छा है कि इस कार्यमें आपको पूर्ण सफलता प्राप्त हो। मैंने अपने लडकोंसे आपकी पुस्तकका पूर्ण उपयोग लेनेके लिये कहा है।

श्रीयुत रेवरेंड् प्रो० ए हेग्लिन्, संस्कृत प्रोफेसर, झेवियर्स कालेज बंबई —

संस्कृतकी विभक्तियां, अनेक शब्दरूप, तथा धातुरूप विद्यार्थियोंकी स्मृतिशक्तिपर बड़ा बोझ डालते हैं। आपने बड़ी चतुराईसे विशेष प्रचलित रूपोंमें सीमाबद्ध कर इस कामको हलका बना डाला है। नियमोंकी योग्य रचना और क्रमिक पाठोंका सन्निवेश इस कामको और हलका करते हैं। आपने (उदाहरणार्थ) दिये हुए वाक्य तथा पुस्तकके अन्तमें दिये हुए गद्य पद्य उत्तम रीतिसे चुने हुए, भिन्न भिन्न विषयोंके, मनोरञ्जक, तथा काव्योंसे उद्धृत हैं।

विद्यार्थियोंको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि प्रति पाठमें दिये हुए भाषाके वाक्य कम और छोटे २ हैं। टाइप् मोटा तथा स्पष्ट और पुस्तकका आकार छोटा है। पुस्तककी सम्पूर्ण रचना मनोहर है। मेरी रायमें 'संस्कृत टीचर्' स्कूलोंमें प्राथमिक व्याकरण और पाठ्य पुस्तककी तरह उपयुक्त होनेके योग्य है।

प्रो० वी एस् घाटे, एम् ए, संस्कृत प्रोफेसर, डेक्कन कालेज, पूना .—

मैंने आपकी 'संस्कृत टीचर्' के कुछ अंश पढ़े हैं। मैं प्रसन्नतासे इसे स्कूलोंमें चलाये जानेकी शिफारिस करता हूं।

पहिले संस्कृत वाक्य लेकर उनपर व्याकरणनियमोंके बैठानेकी आपकी रीति अधिक स्वाभाविक है और मुझे निश्चय है कि यह संस्कृतकी पढ़ाईको अधिक मनोरञ्जक बनायगी।

गद्यपद्योंका संग्रह उत्तम और मनोरञ्जक है। व्याकरणके भिन्न भिन्न विषय योग्य रीतिसे व्यवस्थित किये गये हैं, जैसे पुस्तकके पूर्व भागमें सर्वनाम तथा साधारण समासोंका वर्णन, तथा परोक्षभूतके पूर्व दोनों भविष्यत् कालोंका

वर्णन, निश्चय योग्य दिशाका सूचक है। आपका संस्कृत व्याकरणकी प्रचलित पारिभाषिक शब्दोंका जहां तहां व्याख्यान करनेका उद्योग अत्यन्त स्तुत्य है। आपने अनियत रूपोंके व्याख्यानमें पुस्तकका बोझ नहीं बढाया है जिससे विद्यार्थियोंके मार्गमें एक बड़ा विघ्न दूर हुआ। विशेषत आपका आशीर्लिङ् तथा इच्छार्थकोंका वर्णन वैसा है जैसा कि होना चाहिये। मैं बड़ी प्रसन्नतासे कह सकता हूं कि 'संस्कृत टीचर' का यत्न योग्य दिशासे हुआ है और यह संस्कृतके पढानेमें बहुत उपकारी होगा, क्योंकि यह इन दो उत्तम सिद्धान्तोंपर बना है, 'व्याकरणके पूर्व साहित्य' और 'उतना व्याकरण जितना साहित्यके लिये आवश्यक है।'

प्रो० एच् एम् भडकमकर, बी ए, संस्कृत प्रोफेसर, विल्सन् कालेज, बंबई :—

उन नई रीतियोंकी दृष्टिसे, जो अब स्कूलोंमें संस्कृत पढानेमें चलाई जानेवाली हैं, मैं समझता हूं कि आपकी पुस्तक बहुत उपयुक्त होगी। अध्यापकके नातेसे आपकी विद्यार्थियोंकी अपेक्षायें तथा शक्ति जाननेका मुझसे अच्छा अवसर मिला है। मुझे विश्वास है कि आपकी पुस्तक स्कूलोंके विद्यार्थियोंके लिये बहुत उपयोगी होगी। मुझे आशा है इससे संस्कृतके पढानेको मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद बनानेका आपका उद्देश अच्छी तरह सिद्ध होगा। मैं जानता हूं कि यूनीवर्सिटीके परीक्षामें जानेके पूर्व विद्यार्थियोंको अधिक पढनेकी आवश्यकता होगी, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आपकी सुगम तथा संक्षिप्त व्याकरणरीतियोंको अच्छी तरह अभ्यास कर चुकनेपर उनकी बुद्धि संस्कृत साहित्यमें प्रवेश करनेमें समर्थ होगी। विद्यार्थियोंको इसकी यथार्थ तथा व्यावहारिक उपयोग, होनेके विषयमें, मैं समझता हूं, आप मुझसे अच्छा समझते हैं।

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम् ए, संस्कृत प्रोफेसर, म्योर सेंट्रल् कालेज, अलहाबाद —

मुझे विश्वास है कि आपकी पुस्तकका आदर होगा। जो कुछ थोड़ासा मैंने देखा है उस पर से यह मालूम होता है कि डा० भाण्डारकरकी सीरीज् से यह उत्तम हुई है।

यह पुस्तक स्कूलोंमें चलाये जाने योग्य है। मैं यथाशक्ति इसके प्रचारका उद्योग करूंगा।

डा० वेनिस्, एम् ए, प्रिन्सिपल्, गवर्मेंट् संस्कृत कालेज, बनारस —

जहांतक मुझे आपकी पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला, मैं यह कह सकता हूं कि इससे आपने अपनी प्रस्तावनामें लिखे हुए उद्देश सिद्ध हुए। आपने भारतवर्षके अंग्रेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके हाथ संस्कृत व्याकरणकी संक्षिप्त और विश्वसनीय एक पुस्तक दी। मेरी इच्छा है कि आपकी पुस्तका उचित आदर हो।

प्रिन्सिपल् पी एस् श्रीनिवास ऐयङ्गार, एम् ए, प्रिन्सिपल्, मिसेस् ए वी नरसिंह राव कालेज, विजगापटम् —

आपकी पुस्तक प्रचलित संस्कृत व्याकरण तथा पाठ्य पुस्तकोंमें बहुत उत्तम है। मैं पहिले रूप और बाद उसके विवेचनकी आपकी पद्धति बहुत पसन्द करता हूं। धातुओंसे रूप बनानेकी कृत्रिम रीतिसे यह रीति बहुत अच्छी है, जिसमें लोग घड़ीसाज घड़ियोंकी तरह उन उन अवयवोंको जोड़ शब्द तैयार करते हैं।

ए महादेव शास्त्री, बी. ए, संस्कृत पुस्तक निरीक्षक तथा मैसोर सस्कृत सीरीज्के सम्पादक —

आप विश्वास रक्खे कि आपने पढानेकी रीतिमें बडी उन्नति कर दिखायी है। पढानेकी इस अत्यन्त स्वाभाविक रीतिसे सस्कृतका पढाना अधिक मनोरञ्जक होगा। उदाहरणवाक्य, जो सस्कृत काव्योंसे दिये गये हैं, साहित्यमें लोगोंकी रुचि उत्पन्न करेंगे।

ए अनन्ताचार्य शास्त्री, मैसोर प्रत्नतत्त्वविभाग, बगलोर् —

मैंने आपकी पुस्तक पढी। आपकी रीति उत्तम है। अंग्रेजी विभागके संस्कृत विद्यार्थियोंके लिये यह पुस्तक अच्छी सहायक होगी। दूसरी पुस्तकें उन्हीं विद्यार्थियोंकी सहायता दे सकती हैं जिनकी पहिले ही से सस्कृत भाषाकी अच्छी व्युत्पत्ति है। पहिले वाक्य देकर बाद उनके शब्दोंकी निष्पत्ति निरूपण करनेकी रीति विद्यार्थियोंको साहित्य पढनेमें सहायता देती है। आपने उदाहरणार्थ चुने हुए गद्य पद्य केवल उपदेश-पर ही नही हैं किन्तु वे स्मरण रखने योग्य तथा भावि जीवनमें उपयोगी भी हैं।

प्रो०, राजराज वर्मा, एम् ए, सस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, त्रिवाङ्कम् :—

मैंने आपकी पुस्तक देखी। मैं देखता हूं कि इसकी योजना बडी योग्यता-से कल्पित और बडी कुशलतासे रची गयी है। इसमें सक्षेप और सुगमताका योग हुआ है जिसके लिये आप धन्यवादार्ह हैं। नये विद्यार्थियोंके लिये बनी हुई पुस्तकमें प्रयोगात्मक रीतिसे तुलनात्मक रीतिका अवलम्बन करना एक नयी बात है। इस नयी रीतिका अवलम्बन उन विद्यार्थियोंमें रुचि जाग्रत तथा स्थिर करनेमें उपयुक्त होगा, जिनके हाथमें यह पुस्तक दी जायगी। इसके गद्य पद्योंके विषयमें मुझे निश्चय है कि उनकी विचित्रता और उत्तमता सर्वत्र आद्दृत

होगी। सर्वथा इसमें यदि मतभेद हो सकता है तो वह कदाचित इसके परिमाणके विषयमें। सम्भव है कि इसे कुछ लोग नये विद्यार्थियोंके लिये अपर्याप्त समझें। इसी प्रकार संस्कृतमें अनुवादके लिये वाक्य कदाचित बहुत कम समझे जांय तो सम्भव है। परन्तु मुझे पूर्ण निश्चय है कि नये विद्यार्थियोंके लिये बनाई गयी ऐसी पुस्तकमें कुछ सीमा भी होती है। पुस्तकके अन्तमें दिये हुए गद्य पद्य भलीभांति चुने गये हैं और सदाचार के अच्छे निदर्शक हैं। वे एंट्रेन्स् परीक्षाकी एक वर्षकी पढ़ाईके लिये पर्याप्त हैं। मैं अपने विद्यार्थियोंमें इसका प्रचार करूंगा और सामान्यतः स्कूलोंमें इसके उचित उपयोगकी सिफारिश करूंगा।

प्रो॰ वीरेश्वर शास्त्री द्रविड, संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, जयपुर —

स्कूलों तथा भारतवर्षीय युनीवर्सिटियोंके म्याट्रिक्युलेशन परीक्षाके छात्रोंकी अपेक्षायें पूर्ण करनेमें यह पुस्तक अत्यन्त उपयुक्त है। अपने परिश्रमसे संस्कृतमें प्रवेश चाहनेवालोंके लिये तो यह अमूल्य है। आपने अवलम्बन की हुई तुलनात्मक पद्धति नूतन विद्यार्थियोंकी उस नीरसताको कम करेगी जिसका उनको प्रायः अनुभव हुआ करता है। चुने हुए वाक्य सुगम तथा सुव्यवस्थित हैं और प्रकृत व्याकरण नियमों को अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं। पुस्तकके अन्तमें दिये हुए विविध विषयोंके गद्य पद्य इस पुस्तकमें अपूर्व हैं। उनका बार बार पढ़ना विद्यार्थियोंको संस्कृत भाषाकी रचना और मर्म समझने में बहुत उपकार करेगा।

टी गणपति शास्त्री, संस्कृतपुस्तकनिरीक्षक तथा त्रिवाङ्कुर् संस्कृत सीरिजके सम्पादक —

आप ऐसे लोग लोगोंके अनेक प्रकारके उपकार करनेमें समर्थ हैं। इन्हें अपने किये

हुए अनेक उपकारोंसे तृप्ति नहीं। वे ऐसी दिशासे फिर भी लोगोंका उपकार करनेकी इच्छा करते रहते हैं। सर्वथा यह नयी पुस्तक गुणनोंमें अवश्य प्रवेश पावेगी।

नारायण शास्त्री, हेड्मास्टर, संस्कृत पाठशाला, त्रिवाड्रम् तथा भूतपूर्व संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, त्रिवाड्रम् ।—

मैने सावधानतासे आद्यन्त आपकी पुस्तक पढी। मुझे इसमें कहीं कोई भी चीज दुष्ट या असुन्दर देखनेमें न आयी। वाक्योंसे उद्धृत कर पदोंकी निष्पत्ति प्रतिपादन करनेकी आपकी शैली पाणिनितक किस वैयाकरणकी हृदयको मुग्ध न करेगी? सबसे बढकर प्रशंसाकी बात तो यह है कि इसमें प्राचीन उत्तम काव्योंसे संगृहीत वाक्य, गद्य, तथा पद्य मधुर, कोमल, तथा सदुपदेशपर हैं। अधिक क्या लिखें? आपकी पुस्तक संस्कृताभिमानियोंके मनकी 'अंग्रेजीके फैलनेसे संस्कृतका प्रचार संकुचित हो रहा है' इस कण्टककी दूर करनेमें रामबाण औषध है यही मेरा निश्चित मत है।

आपने प्रस्तावनामें जो लिखा है कि यह पुस्तक स्कूलके विद्यार्थियों तथा अधिक वय वाले अंग्रेजीके विद्वानोंको, जो संस्कृत जाननेकी अभिलाषा रखते हैं, शिक्षाप्रद तथा मनोरञ्जक होगी, इससे मैं सहमत हूं। ऐसा आदमी न मिलेगा जो इस विषयमें विवाद करे कि यह पुस्तक स्कूलोंमें उत्तम पाठ्यपुस्तकका स्थान पाने योग्य है। संक्षेप यह है कि इस प्रकारका आपका उद्योग सुझ ऐसे लोगोंको बहुत आनन्द देता है। पाठशालाओंमें पाठ्यपुस्तकोंका विचार करनेके अवसरपर कौन 'संस्कृत टीचर' को भूलेगा? सब लोग ... प्रेमसे अपना हर्ष प्रकट करते हैं।

शास्त्री केदारनाथ दुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्याय, काव्यमालाके सम्पादक, जयपुर ।—

आपका 'संस्कृत टीचर' नामका संस्कृतशिक्षक एकबारगी व्याकरण, कोश, तथा साहित्यमें उत्तम व्युत्पत्ति करानेमें समर्थ है।

इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत साहित्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको यह अत्यन्त

उपयोगी तथा नवीन शैलीकी पुस्तक बहुत उपकारी होगी। संस्कृतानुरागी सहृदयोंसे मेरी सादर यह प्रार्थना है कि केवल संस्कृत जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये वे लोग इसी रीतिपर सरल संस्कृत अथवा हिन्दीमें ग्रन्थ शीघ्र बनावें। पढ़ानेमें किस परिपाटीका स्वीकार करना चाहिये यह बात 'संस्कृत टीचर' अच्छी तरह सिखाता है। संस्कृतमें हम इसे टीचर नहीं, चौतर कहते हैं। क्योंकि पाणिनि, कात्यायन, तथा पतञ्जलि यह मुनित्रय केवल व्याकरणमें व्युत्पत्ति करा सकता है और यह एक ही में कोश, व्याकरण, तथा काव्य सिखाता है। इसी प्रकार यह मोक्षमूलर—काले—आपटे—इनकी पुस्तकोंसे भी निराला है। इस कारणसे भी यह चौतर है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि यह संस्कृतसाहित्यमें प्रवेश तथा व्युत्पत्ति चाहनेवालोंका उपकार करेगा। यह संस्कृत चौतर-चन्द्र योग्य समयपर उदित हुआ। प्रतिदिन बढ़नेवाली इसकी कलायें संस्कृत व्युत्पत्ति चाहनेवालोंको अपनी शिक्षारूपी चन्द्रिका दें।

संस्कृत-शिक्षिका।

एक नये ढंगकी संस्कृत पाठ्यपुस्तक।

गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥

*　*　*　*

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते
धुर्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद ।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय ॥

*　*　*　*

शरणं करवाणि शर्मदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥

संस्कृतशिक्षिका।

पाठ १।

वर्ण।

संस्कृतमें अधोलिखित वर्ण होते हैं —

(अ) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ।

(ब) क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स्, तथा ह्।

(अ) से चिह्नित वर्णोंको स्वर कहते हैं, क्योंकि और किसी वर्णकी सहायताके बिना वे उच्चारण किये जा सकते हैं।

(ब) से चिह्नित वर्णोंको व्यञ्जन कहते हैं, क्योंकि वे अपने उच्चारणमें स्वरोंकी अपेक्षा रखते हैं, क्, ख्, इत्यादि वर्णोंका बिना किसी स्वरके मिलाये उच्चारण नहीं हो सकता, व्यञ्जन शब्द वि+अञ्ज्+अन के जोड़ने से बना है और उसका अर्थ मिलना है। उदाहरण—क=क्+अ, का=क्+आ, को=क्+ओ।

आ, ई, ऊ, और ॠ, ये अ, इ, उ, तथा ऋ इनके दीर्घरूप हैं, ऌका दीर्घ नहीं होता।

स्वरोंके ऊपर जो बिन्दु दिया जाता है उसे अनुस्वार तथा उनके बाद जो दो बिन्दु दिये जाते हैं उनको विसर्ग कहते हैं। जैसे—ं, ः, कं, कः।

दो या अधिक व्यञ्जन जहां मिले रहते हैं उनको संयुक्ताक्षर कहते हैं। जैसे क्त्=क्+त्, र्क्=र्+क्, द्ध्=द्+ध्, ग्म्=ग्+म्,

वसत (वस् अ त)	पूजयत (पूज् अय त)
वदत (वद् अ त)	कथयत (कथ् अय त)
चरत (चर् अ त)	गणयत (गण् अय त)
पठन्ति (पठ् अ अन्ति)	रचयन्ति (रच् अय अन्ति)
हसन्ति (हस् अ अन्ति)	स्पृहयन्ति (स्पृह् अय अन्ति)
पतन्ति (पत् अ अन्ति)	पीडयन्ति (पीड् अय अन्ति)
नमन्ति (नम् अ अन्ति)	सूचयन्ति (सूच् अय अन्ति)

जिस प्रकार द्वितीय पाठमें दिये हुए भवति इत्यादि धातुओंमें अ लगता है उसी प्रकार वसत इत्यादि रूपोंमें भी अ लगता है ।

२ । अ भ्वादिगणमें धातुओंका चिह्न है । वस् इत्यादि धातु भू इत्यादि धातुओंसे पृथक् विभक्त क्यों है यह बात आगे चलकर मालूम होगी ।

पूजयत इत्यादि रूपोंमें धातुओंसे अय जोडा गया है ।

३ । अय चुरादिगणका चिह्न है ।

पठन्ति, रचयन्ति इत्यादिमें अन्तिसे पहिले रहनेवाला अ निकल गया है ।

४ । अन्ति के पहिले रहनेवाला अ निकल जाता है

जयति (वह) जीतता है ।	नाटयति—(वह) भाव करता है ।
नयति (वह) ले जाता है ।	क्षालयति (वह) धोता है ।
भवति (वह) होता है ।	चोरयति (वह) चुराता है ।
स्मरति (वह) स्मरण करता है ।	धारयति (वह) उठाता है ।
तरति (वह) तैरता है ।	
बोधति (वह) जानता है ।	

ऊपर दिये हुए धातुरूप भ्वादि और चुरादिगणके है । जयति= जय्+अ+ति (जि+अ=जे+अ=जय्+अ) जि का, नयति=नय्+अ+ति (नी+अ=ने+अ=नय्+अ) नी का, भवति=भव्+अ+ति (भू+अ=भो+अ=भव्+अ) भू का, स्मरति=(स्मृ+अ=स्मर+अ)

ऋ का, तरति=तर्+अ+ति (तॄ+अ=तर्+अ) तॄ का, बोधति=बोध्+अ+ति (बुध्+अ=बोध्+अ) बुध् का रूप है।

५। ऊपरके रूपोंसे यह मालूम होगा कि अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य (अन्त्यके समीपका) ह्रस्व स्वरोंमें गणचिह्न अ के पहिले कुछ परिवर्तन होता है। (इ, या ई का ए, उ, या ऊ का ओ, ऋ या ॠ का अर, तथा ऌ का अल् हो जाता है)।

६। ए, ओ, अर्, तथा अल् इ या ई, उ या ऊ, ऋ, या ॠ, और ऌ के यथाक्रम आदेश हैं और इनको गुण आदेश कहते हैं।

- जे+अ=जय्+अ, ने+अ=नय्+अ, भो+अ=भव्+अ—

७। संस्कृतमें जब एक साथ दो स्वर आते हैं तो वे विशेष परिवर्तनसे मिल जाते हैं। इसको सन्धि कहते हैं।

८। जब ए तथा ओ के बाद कोई स्वर आता है तो वे यथाक्रम अय् तथा अव् में बदल जाते हैं।

नाटयति, तालयति, चोरयति, धारयति इत्यादि चुरादिगणके धातु रूप हैं।

नट्+अय+ति=नाटयति, तल—तालयति; कथ्—कथयति, चुर्—चोरयति, पीड्—पीडयति, स्पृह्—स्पृहयति, धृ—धारयति—

९। उपान्त्य (अन्त्यके समीपका) अ प्रायः, इसकी वृद्धि आमें बदल जाता है, परन्तु कथ्, गण्, अर्च् इत्यादिमें नहीं बदलता।

१०। स्पृह् इत्यादि छोड़ कर अ के सिवा दूसरे उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण होता है।

११। अन्त्य स्वरकी वृद्धि होती है। अ की वृद्धि आ, इ तथा ई की [illegible] उ तथा ऊ की वृद्धि औ, ऋ तथा ॠ की वृद्धि आर्, और [illegible] की वृद्धि आल् है।

[illegible] [illegible], [illegible]ति, और स्पृशति तुदादि गणके रूप हैं। इनका बोधति

[illegible]

१२ । जिस प्रकार भ्वादिगणके धातुओंमें अ के पहिले गुण होता उस प्रकार तुदादिगणके धातुओंमें नहीं होता ।

शब्दसंग्रह ।

भ्वादिगण ।	चुरादिगण ।
चर्—चलना	कथ्—कहना
जि—जीतना	क्षल्—धोना
तॄ—पार करना	गण्—गिनना
दह्—जलाना	चुर्—चुराना
नी—ले जाना	धृ—पकड़ना वा उठाना
पठ्—पढ़ना	नट्—नाचना
पत्—गिरना	पीड्—कष्ट देना
बुध्—जानना	पूज्—पूजा करना
भू—होना	रच्—रचना
वद्—बोलना	सूच्—सूचन करना वा सुनाना
वस्—रहना	[illegible]
स्मृ—स्मरण करना	

पाठ ४ ।

वर्तमान काल ।

क्रुध्यसि—(तू) क्रोध करता है ।	नश्यामि (मैं) नाश होता [illegible]
नश्यसि (तू) नष्ट होता है ।	रज्यामि (मैं) [illegible]
इच्छथ (तुम दो) से आते हो ।	क्षुभ्याव (हम दो) [illegible]
नश्यथ (तुम दो) में आते हो ।	नृत्याव (हम दो) [illegible]
कुप्यथ (तुम सब) क्रोध करते हो ।	नश्याम (हम सब) [illegible]
क्रुध्यथ (तुम सब) क्रोध करते हो ।	क्रुध्याम (हम सब) [illegible]

उपरके उदाहरणोंसे ये नियम निकलते हैं —

१। सि, थ, और थ यथाक्रम वर्तमानकालिक क्रियाके मध्यम पुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके प्रत्यय हैं, और मि, व, म वर्तमानकालिक क्रियाके उत्तम पुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके यथाक्रम प्रत्यय हैं।

२। स्पृहयामि, स्पृशाव, वदाम —मि, व, म के पूर्व अ को दीर्घ हो जाता है।

शाम्यामि—मैं शान्त होता हूं।	क्लाम्यति—वह मुर्झाता है।
श्राम्याम —हम लोग थकते हैं।	भ्राम्यन्ति—वे घूमते हैं।
क्षाम्याव —हम दो क्षमा करते हैं।	भ्रम्यति—वह घूमता है।
माद्यामि—मैं मत्त होता हूं।	भ्रमसि—तू घूमता है।

इन उदाहरणोंसे ये नियम सिद्ध होते हैं —

३। शम्, श्रम्, क्षम्, मद्, और क्लम् इन धातुओंके अ को दीर्घ होता है।

४। भ्रम् भ्वादि तथा दिवादि दोनों गणोंमें पढ़ा हुआ है। और दिवादिमें अ को विकल्पसे दीर्घ होता है। इस प्रकार उसके तीन रूप होते हैं —भ्रमति, भ्रम्यति, भ्राम्यति।

गच्छसि—तू जाता है।	पृच्छाम —हम लोग पूछते हैं।
इच्छामि—मैं चाहता हूं।	पश्यथ—तुम लोग देखते हो।
तिष्ठन्ति—वे खड़े रहते हैं।	पिबत —वे दो पीते हैं।

५। गणचिह्न (विकरण) के पहिले कुछ धातुओंके स्थानमें दूसरे आदेश हुआ करते हैं। जैसे—गम् के स्थानमें गच्छ्, इष के स्थानमें इच्छ्, स्था के स्थानमें तिष्ठ, प्रच्छ् के स्थानमें पृच्छ्, दृश् के स्थानमें पश्य, और पा के स्थानमें पिब आदेश होता है।

गच्छाम—हम लोग जाते हैं।	नयथ—तुम दो ले जाते हो।
आगच्छाम—हम लोग आते हैं।	आनयथ—तुम दो ले आते हो।
वसामि—मैं रहता हूं।	तराम—हम लोग पार करते हैं।
निवसामि—मैं रहता हूं।	अवतराम—हम लोग उतरते हैं।

६। धातुओंके पहिले लगे हुए आ, नि, अव इत्यादि उपसर्ग कहाते हैं। वे बहुधा धातुओंके अर्थोंको बदल देते हैं।

स्नाव—हम दो नहाते हैं।	यान्ति—वे जाते हैं।

स्नाव—स्ना धातुका रूप है, और यान्ति या धातुका। ये अदादिगणके धातु हैं।

७। अदादिगणके धातुओंमें कोइ गणचिह्न नहीं होता। धातुओंके बाद ही प्रत्यय लगाये जाते हैं।

शब्दसंग्रह।

भ्वादि।

गम् (गच्छ्) जाना
आगम्—(गच्छ्) आना
जि—जय करना
अव तॄ—उतरना (अव=नीचे)
त्यज्—छोड़ना
दृश् (पश्य्)—देखना
आ नी—लाना
पा (पिब्)—पीना
भ्रम्—घूमना
नि वस्—रहना
स्था (तिष्ठ्)—खड़ा रहना
हृ—हरण करना।

दिवादि।

क्लम् (क्लाम्)—थकना
क्षम् (क्षाम्)—क्षमा करना
क्षुभ्—क्षोभ करना
भ्रम् (भ्राम् वा भ्रम्)—घूमना
मद् (माद्)—मत्त होना
शम् (शाम्)—शान्त होना
शुष्—सूखना
श्रम् (श्राम्)—थकना

तुदादि।

इष् (इच्छ्)—चाहना
प्रच्छ (पृच्छ्)—पूछना

अदादि।

या—जाना
स्ना—नहाना

पाठ ५ ।

उपसर्ग ।

अपनयति—वह हटाता है (अप = दूर)।

अनुसरति—वह पीछे चलता या अनुकरण करता है (अनु = पीछे)।

उत्पतामि—मैं कूदता हूं (उद् = ऊपर)।

विनश्यथ—तुम हो नष्ट होते हो (वि = पूर्ण रूपसे)।

प्रतिवदाम—हम लोग उत्तर देते (प्रति = बदलेमें)।

उपगच्छत—वे दो समीप आते हैं (उप = समीप)।

अवगच्छाव—हम दो जानते हैं। (यहांपर अव का अर्थ 'नीचे' नहीं है।)

प्रचरसि—तुम चलते हो (प्र = आगे)।

गम्—भ्वादि ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छत	गच्छन्ति
मध्यम ,,	गच्छसि	गच्छथ	गच्छथ
उत्तम ,,	गच्छामि	गच्छाव	गच्छाम

पुष्—दिवादि । पोषण करना, ...

प्र पु	पुष्यति	पुष्यत	पुष्यन्ति
म पु	पुष्यसि	पुष्यथ	पुष्यथ
उ पु	पुष्यामि	पुष्याव	पुष्याम

इष्—तुदादि ।

प्र पु	इच्छति	इच्छत	इच्छन्ति
म पु	इच्छसि	इच्छथ	इच्छथ
	इच्छामि	इच्छाव	इच्छाम

चुर्—चुरादि ।

प्र पु	चोरयति	चोरयत	चोरयन्ति
म पु	चोरयसि	चोरयथ	चोरयथ
उ पु	चोरयामि	चोरयाव	चोरयाम

स्ना—अदादि ।

प्र पु	स्नाति	स्नात	स्नान्ति
म पु	स्नासि	स्नाथ	स्नाथ
उ पु	स्नामि	स्नाव	स्नाम

उद्+पतामि=उत्पतामि, यहां द् को त् हुआ है ।

यह जानना आवश्यक है कि अपने२ स्थानोंके अनुसार स्वर और व्यञ्जन किन वर्गों में विभक्त हैं ।

अ, आ, कु, (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्), ह्, और विसर्ग—कण्ठस्थानीय ।

इ, ई, चु, (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्), य्, और श्—तालुस्थानीय ।

ऋ, ॠ, (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्), र्, और ष्—मूर्द्धस्थानीय ।

लृ, तु, (त्, थ्, द्, ध्, न्) ल्, और स्—दन्तस्थानीय ।

उ, ऊ, पु, (प्, फ्, ब्, भ्, म्)—ओष्ठस्थानीय ।

ए और ऐ—कण्ठतालुस्थानीय ।

ए=अवर्ण (अ वा आ)+इवर्ण (इ वा ई), ऐ=अवर्ण (अ वा आ)+ए ।

ओ तथा औ—कण्ठोष्ठस्थानीय ।

ओ=अवर्ण (अ वा आ)+उवर्ण (उ वा ऊ), औ=अवर्ण (अ वा आ)+ओ ।

व्—दन्तोष्ठस्थानीय ।

ङ्, ञ्, ण्, न्, और म्—इनका ऊपर लिखे हुए स्थानोंमें [illegible] नासिका स्थान भी है और ये अनुनासिक कहाते हैं ।

य्, व्, और ल् अननुनासिक भी हैं और अनुनासिक भी। क् से म् तकके पाचो वर्गोंके (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग) वर्ण स्पर्श कहाते है, क्यों कि इन वर्णों के उच्चारण करनेमें जिह्वाका अग्र, उपाग्र, मध्य, और मूल इनके उच्चारण स्थानोंको (कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त, और ओष्ठोंको) स्पर्श करता है।

पाचो वर्गोंके प्रथम, तृतीय, तथा पञ्चम वर्ण और य्, र्, ल, व्, अल्प-प्राण कहाते है। क्योंकि उनके उच्चारणमें कम श्वासकी अपेक्षा है और उनका उच्चारण सुगमता से हो सकता है। इनके सिवा अन्य वर्ण महाप्राण कहाते है, क्योंकि उनके उच्चारणमें अधिक श्वासकी अपेक्षा है और इनका उच्चारण कठिनतासे होता है।

वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा, श्, ष्, स्, अघोष (कठोर व्यञ्जन), और य्, र्, ल्, व्, तथा ह् घोष (कोमल व्यञ्जन) कहाते है।

य्, र् ल, और व् अन्त स्थ वा अन्त स्था (अर्द्ध स्वर), और श्, ष्, स्, तथा ह् ऊष्मन् कहाते है।

उद्+पतति=उत्पतति, उद्+तरति=उत्तरति, उद्+पात = उत्पात, उद्+साह =उत्साह, उद्+तेजनम्=उत्तेजनम्।

नियम—अनुनासिक वा अन्त स्थ को छोड कर और कोई व्यञ्जन, जब उनके बाद कोई अघोष वर्ण हो, अपने वर्गके प्रथम वर्णमें बदल जाता है।

शब्दसङ्ग्रह।

अनु सृ (भ्वादि) पीछे जाना, अनुकरण करना।

अप नी (भ्वादि) ले जाना।

अव गम् (भ्वादि) जानना।

उद् पत (भ्वादि) कूदना।

उप गम् (भ्वादि) पास जाना।

प्र चर् (भ्वादि) आगे चलना।

प्रति वद् (भ्वादि) विरुद्ध बोलना, उत्तर देना।
वि नश् (दिवादि) पूर्णरूपसे नष्ट होना।

पाठ ६।

अकारान्त शब्द।

बाल क्रीडति—लडका खेलता है।
अश्व चरति=अश्वश्चरति—घोड़ा चलता है।
जन, तरति=जनस्तरति—आदमी तैरता है।
चौरौ चोरयत —दो चोर चुराते है।
वृक्षौ पतत —दो पेड गिरते है।
बुधा पठन्ति—पण्डित लोग पढ़ते है।
देवा जयन्ति=देवा जयन्ति—देव लोग जीतते हैं।
पर्णम् शुष्यति=पर्ण शुष्यति—पत्ता सूखता है।
नयने पश्यत —दो आखें देखती है।
पापानि नश्यन्ति—पाप नष्ट होते है।
दुःखानि गलन्ति—दुःख गलते है।
धर्मम् उपदिशामि=धर्ममुपदिशामि—मै धर्मका उपदेश करता हूं
असत्यम् वदथ=असत्य वदथ—तुम लोग झूठ बोलते हो।
बालौ ताडयति—वह दो लडकोंको मारता है।
वेदान् पठाम —हम लोग वेदोंको पढ़ते है।
पुस्तकानि लिखन्ति—वे लोग पुस्तकोंको लिखते है।
वत्स, सुष्ठु भणसि—लडके, तू अच्छा कहता है।

सात विभक्तिया है।

प्रथमा—यह प्रातिपदिकार्थमे लगती है।
द्वितीया—यह क्रियाके कर्मको दिखाती है।
तृतीया—यह किसी क्रियाके कर्ता या करणको दिखाती है।

चतुर्थी—यह उसको दिखाती है जिसको कोई वस्तु दी जाय (सम्प्रदान), किंवा जिसके लिये कोई काम किया जाय (तादर्थ्य)।

पञ्चमी—अपादान वा हेतुको दिखाती है।

षष्ठी—सम्बन्धका बोध कराती है।

सप्तमी—यह किसी क्रियाके अधिकरणको जताती है।

सम्बोधन कोई आठवां कारक नहीं है वह केवल प्रथमाका बोध कराती … और किसीको पुकारनेमें इसका प्रयोग किया जाता है जैसे—हे वत्स, …ु मधूनि।

योध शरौ क्षिपति, शरौ क्षिपति योध, वा क्षिपति शरौ योध = …र दो बाणों को फेंकता है।

वस्तुतमें वाक्यके शब्दोंके क्रमके लिये कोई नियम नहीं है।

इस पाठमें अकारान्त शब्दोंके प्रथमा, द्वितीया, और सम्बोधनके …प दिये गए हैं।

राम—पुंलिङ्ग।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्रथमा	राम	रामौ	रामा
द्वितीया	रामम्	राम[illegible]	रामान्
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामा

फल—नपुंसक लि[illegible]

प्र	फलम्	फ[illegible]	फलानि
द्वि	,,	,,	
स	हे फल	,,	

अश्व + चरति = अश्वश्चरति, जन + तरति = जनस्तरति।

नियम—

१। विसर्ग के बाद यदि च वा छ आवे तो वह श में बदल जाता और यदि उसके बाद त् तथा थ आवे तो वह स में बदल जाता है।

२। यदि विसर्गके पहिले आ हो और उसके बाद कोई स्वर वा कोमल व्यञ्जन हो तो उसका लोप हो जाता है।

३। विसर्गका लोप होने पर पास पास रहनेवाले स्वरोंमें सन्धि कार्य नहीं होता।

(अ) पुष्पम्+हरति=पुष्प हरति—

(ब) वनम्+गच्छति=वन गच्छति वा वनङ्गच्छति—

(क) पुस्तकम लिखति=पुस्तक लिखति वा पुस्तकँल्लिखति—
नियम—

४। विभक्तियोंके सहित शब्दोंको पद कहते हैं जैसे—राम, फले, गच्छत।

५। (अ) पुष्प हरति—जब किसी पदके अन्तमें म् हो और उसके बाद श, ष, स, ह, वा र् हो तो वह अनुस्वारमें बदल जाता है।

(ब) वन गच्छति, वा वनङ्गच्छति—जब म् के बाद कोई अन्य व्यञ्जन हो तो वह अनुस्वारमें अथवा जिस वर्गका वह व्यञ्जन हो उसके अनुनासिकमें बदल जाता है।

(क) पुस्तक लिखति—वा—पुस्तकँल्लिखति—जब म् के बाद य, व, वा ल् हो तो वह अनुस्वारमें अथवा अनुनासिक य, व, वा ल् में बदल जाता है।

शब्दसंग्रह।

अकारान्त पुंलिङ्ग शब्द।

अश्व —घोड़ा	योध —सिपाही
चौर —चोर	वत्स —प्रिय बालक
जन —मनुष्य	वीर —वीर
देव —देवता	वृक्ष —पेड़
धर्म —धर्म	वेद —वेद
पर्वत —पहाड़	शर —तीर
बाल —लड़का	स्तेन —चोर
बुध —पण्डित	

नपुंसक।

अनृतम्—झूठ	पर्णम्—पत्ती
असत्यम्—झूठ	पापम्—पाप
दुःखम्—दुःख	पुस्तकम्—पुस्तक
नयनम्—नेत्र	वनम्—जंगल

धातु।

अस् (अस्यति) दिवादि—फेंकना।
उपदिश् (उपदिशति) तुदादि—उपदेश करना।
क्रीड (क्रीडति) भ्वादि—खेलना।
गल् (गलति) भ्वादि—गलना।
तड (ताडयति) चुरादि—पीटना, मारना।
भण (भणति) भ्वादि—बोलना।

पाठ ७।

अकारान्त शब्द।

रथेन आगच्छति=रथेनागच्छति—वह रथसे आता है।

पादाभ्यां चलति—वह दो पैरोंसे चलता है।

अक्षराणि गणयति बालः—लड़का अक्षरोंको गिनता है।

बालैः सह क्रीडामि—मैं लड़कोंके साथ खेलता हूं।

रामाय नमः—रामको नमस्कार।

क्रोधात् भवति संमोहः—क्रोधसे अज्ञान होता है। (क्रोधात्+भ भी क्रोधाद् भवति के बराबर है)।

चक्रं रथस्य अङ्गम्=चक्रं रथस्याङ्गम्—चक्र रथका एक भाग है।

व्याघ्रेभ्यः भयम्=व्याघ्रेभ्यो भयम्—व्याघ्रोंसे भय।

चन्द्रो नक्षत्राणां भूषणम्—चन्द्रमा ताराओंका भूषण है।

आकाशे शुकः उत्पतति=आकाशे शुक उत्पतति—आकाशमें उड़ता है।

पुरुषेषु उत्तमः=पुरुषेषूत्तमः पुरुषोत्तमः—पुरुषोत्तम वा पुरुषोंमें उत्तम है।

हस्तयोः प्रहरति—हाथों पर मारता है।

इस पाठमें अकारान्त शब्दोंकी प्रथमासे सप्तमीतक सब विभ दी गयी हैं।

राम—पुं।

	ए० व०।	द्वि० व०।	ब० व०।
प्र०	रामः	रामौ	रामाः
द्वि०	रामम्	,,	रामान्
तृ०	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
च०	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पं०	रामात्	,,	

ऋवर्ण=अर, और अवर्ण+लृ=अल्। व्याघ्रेभ्य+भयम्=व्याघ्रेभ्य+उ+भयम्=व्याघ्रेभ्यो भयम।

नियम— शुक+उत्पतति=शुक उत्पतति।

९। विसर्गके पहिले अ हो, और उसके बाद अ के सिवा कोई स्वर हो, तो उसका लोप होता है।

नमो देवेभ्य।	पुत्रेण सह धावति।
शरीर वर्धते।	अश्वादवतरति योध।
नरा दुर्गाणि तरन्ति।	वनेषु व्याघ्रा भ्रमन्ति।
भद्राणि पश्यन्ति जना।	वृक्षाद्‌वृक्ष पतति शुक।
गृहाणि प्रविशन्ति।	बालस्य चित्त तुष्यति।

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द।

आकाश —आकाश	पुरुषोत्तम —विष्णु
क्रोध —क्रोध	रथ —रथ
चन्द्र —चन्द्रमा	राम —राम
दुर्ग —कठिनाई	व्याघ्र —बाघ
नर —मनुष्य	शुक —तोता
पाद —पैर	सम्मोह —अज्ञान
—लड़का	हस्त —हाथ
१ पुरुष, २ आत्मा	

अकारान्त नपुंसक शब्द।

५। क्रोधात्+भवति=क्रोधाद्भवति—पदके अन्तमें आनेवाला अनुनासिक किं वा अन्त स्थके सिवा कोई व्यञ्जन अपने वर्गके तृतीय वर्ण में बदल जाता है, यदि उसके बाद कोई स्वर वा घोष वर्ण हो।
स्व+अर्थ=स्वार्थ, देव+आलयम्=देवालयम्, रथेन+आगच्छति =रथेनागच्छति, कवि+ईश्वर=कवीश्वर, रघु+उत्तम=रघूत्तम, पुरुषेषु+उत्तम=पुरुषेषूत्तम—अधोलिखित नियमके अनुसार होते हैं।—

६। जब अ, इ, उ, ऋ (हृस्व वा दीर्घ), तथा लृ के बाद वही हृस्व वा दीर्घ स्वर आते हैं तो उन दोनों स्वरोंके स्थानमें दीर्घ होता है।

इस प्रकार अवर्ण+अवर्ण=आ, इवर्ण+इवर्ण=ई, उवर्ण+उवर्ण=ऊ; ऋवर्ण+ऋवर्ण=ॠ, लृ+लृ=ॠ। (क्योंकि लृ को दीर्घ नहीं होता, और ऋ तथा लृ सवर्ण वा एकसे हैं।)

व्याघ्रेभ्य+भयम्—यहा पर विसर्गको उ हुआ, और उसके पहिले अ तथा उ मिलकर अधोलिखित नियमके अनुसार ओ हो गया—

७। मन+रथ=मनोरथ, मन+भाव=मनोभाव, मन+वृत्ति=मनोवृत्ति, मन+हर=मनोहर, ग्राम+असि=ग्रामो असि (अन्तमें ग्रामोऽसि, पाठ ८, नियम ४)—जब विसर्गके पहिले अ हो और उसके बाद अ वा कोई घोष वर्ण हो तो उस विसर्गका उ हो जाता है।

यह उ तथा उसके पहिला अ मिलकर अधोलिखित नियमसे ओ हो जाता है।

८। परम+ईश्वर=परमेश्वर, चन्द्र+उदय=चन्द्रोदय, गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम्—

जब अ वा आ के बाद इ, उ, ऋ (हृस्व किंवा दीर्घ), वा लृ आते हैं तो उन दोनोंके स्थानमें इ, उ, ऋ, तथा लृ के गुण अर्थात् ए, ओ, अर्, तथा अल् आदेश होते हैं।

इस प्रकार अवर्ण+इवर्ण=ए, अवर्ण+उवर्ण=ओ; भव

मनोः अपत्यानि मानवाः = मनोरपत्यानि मानवाः — मनुके लड़के मानव (कहाते हैं)।

बहवः जन्तवः, बहून् जन्तून्, इत्यादि—

विशेष्य तथा विशेषणका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति एक होती है।

शिशौ अपि प्रहरति मूर्खः = शिशावपि प्रहरति मूर्खः — मूर्ख लड़के पर भी प्रहार करता है।

विपदि धैर्यं रक्षन्ति धीराः — धीर लोग विपदमें भी धैर्यकी रक्षा करते हैं।

भानुः दिनस्य मणिः — भानुर्दिनस्य मणिः — सूर्य दिनका रत्न है।

सुहृदाम् वचनं नातिक्रामन्ति = सुहृदां वचनं नातिक्रामन्ति — वे लोग मित्रोंकी बातको उल्लङ्घन नहीं करते।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द दिये गये हैं।

हरि—पुलिङ्ग।

	एक व।	द्विवचन	बहु व।
प्र	हरिः	हरी	हरयः
द्वि	हरिम्	,,	हरीन्
तृ	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
प	हरेः	,,	,,
ष	,,	हर्योः	हरीणाम्
स	हरौ	,,	हरिषु
सं	हरे	हरी	हरयः

भानु—पुलिङ्ग।

प्र	भानुः	भानू	भानवः
द्वि	भानुम्	,,	भानून्
तृ	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः

विशेषण।

उत्तम—सबसे अच्छा।

अव्यय।

सह—साथ (यह वा इसी अर्थके दूसरे शब्द जैसे साकम् सार्द्धम्, तृतीयाके साथ आते हैं) | नम—नमस्कार (यह चतुर्थीके साथ प्रयोग किया जाता है

धातु।

चल् (चलति) भ्वादि—चलना।
प्रविश् (प्रविशति) तुदादि—घुसना।
प्रहृ (प्रहरति) भ्वादि—मारना वा प्रहार करना।
सृ [धाव] (धावति) भ्वादि—दौड़ना।

पाठ ८।

इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द।

रवि उदय याति=रविरुदय याति—सूर्य उदय को जाता है—सूर्य उदित होता है।

राम कपिभि रावण जयति=राम कपिभी रावण जयति—राम बन्दरोंसे रावणको जीतता है।

कवय भूपतीनाम् चरित वर्णयन्ति=कवयो भूपतीना चरित वर्णयन्ति—कवि लोग राजाओंके चरितको वर्णन करते हैं।

गुरवे नम—गुरुको नमस्कार।

वीर अरीन् जयति=वीरोऽरीञ्जयति—वीर शत्रुओंको जीतता है।

हरये स्वस्ति—हरिको जयजयकार।

अग्नये स्वाहा—अग्निको स्वाहा (आहुति)।

शिशु वृक्षमारोहत—वे लड़के पेड़पर चढ़ते हैं।

मनोः अपत्यानि मानवाः = मनोरपत्यानि मानवाः — मनुके लड़के मानव (कहाते हैं)।

बहवः जन्तवः, बहून् जन्तून्, इत्यादि—

विशेष्य तथा विशेषणका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति एक होती है।

शिशौ अपि प्रहरति मूर्खः = शिशावपि प्रहरति मूर्खः — मूर्ख लड़के पर भी प्रहार करता है।

विपदि धैर्यं रक्षन्ति धीराः — धीर लोग विपदमें भी धैर्यकी रक्षा करते हैं।

भानुः दिनस्य मणिः — भानुर्दिनस्य मणिः — सूर्य्य दिनका रत्न है।

सुहृदाम् वचनं नातिक्रामन्ति = सुहृदां वचनं नातिक्रामन्ति — वे लोग मित्रोंकी बातको उल्लङ्घन नहीं करते।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द दिये गये हैं।

हरि—पुंलिङ्ग।

	एकव।	द्विवच	बहुव।
प्र	हरिः	हरी	हरयः
द्वि	हरिम्	,,	हरीन्
तृ	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पं	हरेः	,,	,,
ष	,,	हर्योः	हरीणाम्
स	हरौ	,,	हरिषु
सं	हरे	हरी	हरयः

भानु—पुंलिङ्ग।

प्र	भानुः	भानू	भानवः
द्वि	भानुम्	,,	भानून्
तृ	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः

च.	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पं	भानोः	"	"
ष	"	भान्वोः	भानूनाम्
स.	भानौ	"	भानुषु
स	भानो	भानू	भानवः

हरि और भानु शब्दको दोनों मिलानेपर यह मालूम होगा कि इन दोनोंमें एकसा परिवर्तन हुआ है।

विपद्—स्त्रीलिङ्ग।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	विपत्	विपदौ	विपदः
द्वि.	विपदम्	"	"
तृ.	विपदा	विपद्भ्याम्	विपद्भिः
च	विपदे	"	विपद्भ्यः
पं	विपदः	"	"
ष	"	विपदोः	विपदाम्
स	विपदि	"	विपत्सु
स	विपद्	विपदौ	विपदः

इन तथा इनके पहिले दिये हुए शब्दरूपोंसे ये प्रत्यय सुगमतासे मालूम होते हैं —

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	स्	औ	अस्
द्वि	अम्	"	"
तृ	आ	भ्याम्	भिस्
च	ए	"	भ्यस्
पं	अस्	"	"

ष	अस्	ओस्	आम्
स	इ	,,	सु
स	स्	ओ	अस्

१। विपद् + स् = विपद् — व्यञ्जनान्त शब्दोंका प्रत्यय स का लोप हो जाता है।

अब हम लोग इस पाठमें दिये हुए वाक्योंमें सन्धिके नियमोंका विचार करें।

रवि + उदयम् = रविरुदयम्, कपिभि + रावणम् = कपिभिर् रावणम् = कपिभी रावणम्, मनो + अपत्यानि = मनोरपत्यानि, भानु + दिनस्य = भानुर्दिनस्य, निर् + रस = नीरस, निर् + रोग = नीरोग —

नियम —

२। जब विसर्गके पहिले अ वा आ के सिवा कोई स्वर आवे और उसके बाद कोई स्वर वा घोष व्यञ्जन हो तो वह र् में बदल जाता है।

३। जब र् के बाद र् हो तो उसका लोप होता है, और उसके पहिलेका स्वर, यदि वह ह्रस्व हो, दीर्घमें बदल जाता है।

वीर + अरीन् = वीरोऽरीन —

जब विसर्गके पहिले और बाद अ हो तो वह उ में बदल जाता है (पाठ ७ नियम ७) अ + उ = ओ (पाठ ८ नियम ८)।

४। जब किसी पदके अन्तमें रहनेवाले ए वा ओ के बाद अ आता है तो वह अ उनमें मिल जाता है, और यह उसका मिलना ऽ चिन्हसे दिखाया जाता है, जिसको अवग्रह कहते हैं।

गुरो + अपि = गुरोऽपि, नै + अक = नै १ + अक = नायक, पौ + अक = पावक।

— १। अक (जो धातुसे होने वाला एक प्रत्यय है और कर्ताका बोध कराता है) के पहिले धातुके अन्तिम स्वरको वृद्धि आदेश होता है।

नियम —

५। ए, ऐ, ओ, तथा औ के बाद जब कोई स्वर होता है तो क्रम से वे अय्, अव्, आय्, तथा आव् में बदल जाते हैं।

हरये और विष्णवे—इनके इ तथा उ को गुण होनेके बाद—इस नियम के अनुसार बने हैं।

हरि + ए = हरे + ए = हरय् + ए = हरये।

गुरु + ए = गुरो + ए = गुरव् + ए = गुरवे॥

६। गुरौ + अपि = गुरावपि और गुरा अपि—

जब ए, ऐ, ओ, तथा औ, किसी पदके अन्तमें होते हैं और उनके बाद कोई स्वर रहता है, तो उनके स्थानमें होनेवाले अय, अव, आय, तथा आव् के य् तथा व का विकल्पसे लोप होता है, और इस प्रकार उनका लोप होनेपर एक साथ आये हुए स्वर आपसमें नहीं मिलते।

हरे + ए = का केवल हरये होता है, क्यों कि हरे का ए पदके अन्तमें नहीं है।

अरीन् + जयति = अरीञ्ज जयति, सत् + चरितम् = सच्चरितम्—

नियम —

७। जब स् या तवर्गका कोई वर्ण श वा चवर्गके किसी वर्णके साथ आता है, तो स् को श होता है, और तवर्गके वर्णको उसी क्रमका चवर्गका वर्ण होता है। इस प्रकार अरीञ्ज्जयति में वर्गके पञ्चम न् के स्थानमें वर्गका पञ्चम ञ् हुआ, और सच्चरितम् में प्रथम वर्ण त् के स्थानमें प्रथम वर्ण च् हुआ।

८। प्रतिकामन्ति वा प्रतिकामन्ति—क्रम् भ्वादि तथा दिवादि गणोंमें है, और उसके उपान्त्य अ को दीर्घ होता है।

कुबेरो निधीनामीशः।
मातलिरिन्द्रस्य सारथिः।
भ्रमराः कुसुमानां गन्धं हरन्ति।
साधवो विपत्सु धैर्यं न त्यजन्ति।
बालाः पांसुभिः क्रीडन्ति।

संज्ञाशब्द।

ग्नि (पु)—आग
पत्य (न)—सन्तान
रि (पु)—शत्रु
लि (पु)—भ्रमर
न्द्र (पु)—इन्द्र, स्वर्गका राजा
श (पु)—स्वामी
दधि (पु)—समुद्र
दय (पु)—उदय, उन्नति
पि (पु)—बन्दर
कवि (पु)—कवि
कुबेर (पु)—कुबेर, धनका प्रभु
कुसुम (न)—फूल
गन्ध (पु)—सुगन्ध
गुरु (पु)—अध्यापक
चरित (न)—चरित्र
जन्तु (पु)—प्राणी
दिन (न)—दिन
धीर (पु)—गम्भीर पुरुष
धैर्य (न)—धीरज
निधि (पु)—खज़ाना
पांसु (पु)—धूल
भूपति (पु)—राजा
भानु (पु)—सूर्य
मणि (पु)—रत्न
मनु (पु)—मनु
मातलि (पु)—इन्द्रका सारथि
मानव (पु)—मनुष्य
रवि (पु)—सूर्य
रावण (पु)—रावण
वचन (न)—वचन
विपद् (स्त्री)—विपद्
शिशु (पु)—लड़का
साधु (पु)—सज्जन
सारथि (पु)—सारथि
सुहृद् (पु)—मित्र
हरि (पु)—१. कृष्ण, २ किसी पुरुषका नाम

वृध्—भ्वा आत्मने ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र पु	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
म पु	वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
उ पु	वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे

प्रत्यय (परस्मै)

प्र पु	ति	तस	अन्ति
म पु	सि	थस्	थ
उ पु	मि	वस	मस

आत्मने ।

प्र पु	ते	इते	अन्ते
म पु	से	इथे	ध्वे
उ पु	ए	वहे	महे

वर्धावहे—वर्धामहे—वर्धे—वर्धन्ते—

१। वहे और महे से पहिले अ को दीर्घ होता है जैसे वस् और मस से पहिले अ को, और अन्ति से पहिले अ की तरह ए और अन्ते से पहिले अ का लोप होता है।

देखना चाहिये कि सब आत्मनेपद प्रत्यय ए से समाप्त होते हैं ।

आकारान्त शब्द भी इस पाठमें लिखे जाते हैं ।

रमा—(स्त्री)।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	रमा	रमे	रमाः ।
द्वि	रमाम	,,	रमाः
तृ	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः

	ए व।	द्वि व।	ब व।
च	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्य
प	रमाया	,,	,,
ष	,,	रमयो	रमाणाम्
स	रमायाम्	,,	रमासु
स	रमे	रमे	रमा

हरति + [illegible] =हरत्यलय , प्रति + उत्तरम् =प्रत्युत्तरम् ; मधु + [illegible]रि =मध्व[illegible]

२। [illegible], उवर्ण, ऋवर्ण, और लृ के बाद उनसे भिन्न प्रकारका असवर्ण) [illegible] आता है तो [illegible] क्रमसे य, व, र, और ल् में बदल जाते हैं।

विडा[illegible] + [illegible]डयति = बिडालाल्लाडयति।—

३। [illegible] पदके अन्ताके न् के बाद च, छ, त, थ, ट, वा ठ हो तो उसको [illegible] या विसर्ग दोनो होते हैं।

४। [illegible] विसर्गके बाद च् वा छ् हो तो वह श् में, जब उसके बाद त् वा [illegible] स् में, और जब उसके बाद ट् वा ठ् हो तो ष् में बदल जाता [illegible]

[illegible] ,इषु + अस्यति, लभेते + अत्र यहा सन्धिकार्य्य नहीं हुआ[illegible]

[illegible] यम —

[illegible] इकारान्त, ऊकारान्त, वा एकारान्त स[illegible] किवा क्रियावाचक शब्द [illegible] उनके अन्तिम स्वर उनके आगेके स्वरके साथ नहीं मिलते, इस[illegible] आगेके स्वरसे न मिलने वाले ई, ऊ, और ए प्रगृह्य कहाते हैं।

उद + इयते=उद्दूयते।

नियम —

६। जब ष् या तवर्गका कोई वर्ण [illegible] के साथ आता है तो स् को ष् होता है और तवर्ग [illegible] वर्णको उसी स्था का टवर्ग का वर्ण होता है (पाठ ८ नियम ७ [illegible] जिससे यह मिलता है) उड्डयते में तृतीय वर्ण ट को तृतीय [illegible] हुआ है।

हरित्सुक —वत्सुक विशेषण है। इसमें [illegible] लिङ्ग, वचन, विभक्ति लगी है।

कन्ययोर्विवाहं चिन्तयामि।
आतपात् त्रायते आतपत्रम्
नराणां तृष्णा न शाम्यति।
लोपामुद्राऽगस्त्यस्य भार्या।
पङ्के जायते पङ्कजम्।

मक्षाभ्यर्व।

ा (स्त्री)—लड़की	वत्सा (स्त्री)—प्रिय बालिका
-नका (स्त्री)—लड़की	वर्षा (स्त्री)—बरसात
ाल (पु)—बिलार	(यह शब्द सर्वदा बहुवचन ही में प्रयोग किया जाता है)
ार्या (स्त्री)—पत्नी	
ूर (पु)—मोर	विप्र (पु)—विप्र
ा (स्त्री)—लक्ष्मी, विष्णु की स्त्री	विद्या (स्त्री)- ज्ञान
ा (नं)—सुन्दरता	विवाह (पु)— विवाह
ोपामुद्रा (स्त्री) अगस्त्यकी भार्या	सीता (स्त्री)—सीता

विशेषण।

ाधिक—अधिक	उत्सुक—उत्सुक

अव्यय।

अद्य—आज	नाम—सचमुच
इव—तरह , सदृश ,	सायम्—सायङ्काल

धातु।

अस् (अस्यति) (दिवादि परस्मै)—फेंकना	भाष् (भाषते) (भ्वा आत्म)—बोलना
उद् + डी (उड्डी — उड्डयते) (भ्वा, आत्म,)—उड़ना	रम् (रमते) (भ्वा आत्म)—खेलना
	लभ् (लभते) (भ्वा आत्म)—पाना
चिन्त् (चिन्तयति) (चुरादि परस्मै)—सोचना	वृत् (वर्तते) (भ्वा आत्म)—होना
	वृध् (वर्धते) (भ्वा आत्म)—बढ़ना
त्रै (त्रायते) (भ्वा आत्म)—बचाना।	शुभ् (शोभते) (भ्वा आत्म)—शोभना
निर् + गम् (निर्गच्छति) (भ्वा परस्मै)—निकलना	

पाठ १०।

सर्वनाम।

सर्व स्वार्थं समीहते—सर्वस्स्वार्थं समीहते—सब अपना स्वार्थ चाहता है।

सर्वेभ्य. देवेभ्यो नम =सर्वेभ्यो देवेभ्यो नम —सब देवोंको नमस्कार।

सर्वासु कलासु चतुर एष बाल =सर्वासु कलासु चतुर एष बाल—यह लड़का सब कलाओंमें चतुर है।

कस्य एष पुत्र =कस्यैष पुत्र —यह लड़का किसका है?

का वार्ता वर्तते?—क्या खबर है?

अन्य क अपि एषः=अन्य कोऽप्येष —यह कोई दूसरा ही है।

किम् अपि एषा कथयति=किमप्येषा कथयति—यह कुछ भी कहती है।

भूपते! एषा एव सा ऊर्मिका=भूपते! एषैव सोर्मिका—महाराज, यही वह अगूठी है।

के एते कन्ये—ये दो लडकियां कौन हैं? (के और एते का स्वर प्रगृह्य है, इस लिये सन्धि नहीं हुई)।

तेषाम् विद्या न विद्यते=तेषां विद्या न विद्यते—उनको ज्ञान नहीं है।

सर्व—(पु)

	ए व	द्वि व
प	सर्व	सर्वौ
द्वि	सर्वम्	,,
तृ	सर्वेण	सर्वाभ्याम्
च	सर्वस्मै	,,

	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
पं.	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
ष.	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
स.	सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु

सर्व (न.)

	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
प्र. द्वि.	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

और सब रूप पुंलिङ्गके समान।

सर्व सर्वनाम है। इसका स्त्रीलिङ्गका रूप सर्वा होता है। राम, लता, तथा फल शब्दके समान इसके तीनों लिङ्गोंमें रूप होते हैं। केवल अधोलिखित रूपोंमें विशेष है।

	पुं.	स्त्री.	न.
प्र. सं. ए. व.	सर्व		
च. ए. व.	सर्वस्मै	सर्वस्यै	पुंलिङ्गके समान
पं. ,,	सर्वस्मात्	सर्वस्याः (ष. ए. व. भी)	
ष. ब. व.	सर्वेषाम्	सर्वासाम्	
स. ए. व.	सर्वस्मिन्	सर्वस्याम्	

परस्मै, अन्येषाम्, इत्यादि—पर (दूसरा), अन्य (दूसरा), और विश्व (सब) सर्वनाम हैं, और इनके रूप सर्वके समान होते हैं।

तद्—(पुं.)।

	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
प्र.	सः	तौ	ते
द्वि.	तम्	,,	तान्
तृ.	तेन	ताभ्याम्	तैः

3+4

सैषा परा कोटिः स्नेहस्य ।
का वेला वर्तते ।
अम्ब कैषा ।

शब्दसंग्रह ।

सर्वनाम ।

अन्य—दूसरा	तद्—वह
एतद्—यह	यद्—जो
किम्—कौन ? क्या ?	सर्व—सब

संज्ञाशब्द ।

अम्बा (स्त्री) (सं ए. व हे अम्ब)—मा	देवता (स्त्री)—देवी
कर्णिका (स्त्री)—अंगूठी	पुत्र (पु)—लड़का
कला (स्त्री)—कला	वार्ता—(स्त्री)—खबर
कानन (न)—जंगल	वेला—(स्त्री)—समय
कोटि—(स्त्री)—सीमा	स्नेह (पु)—प्रेम
(परा कोटि =चरम सीमा)	स्वार्थ (पुं)—अपना मतलब ।

विशेषण	अव्यय
चतुर—चतुर	एव—निश्चयसे, सचमुच
पर—बड़ा	

धातु ।

नम् (नमति) (भ्वा पर)—प्रणाम करना ।
विद् (विद्यते) (दि आ)—होना ।
सम्+ईह् (समीहते) (भ्वा आ)—चाहना ।

पाठ ११ ।

द्वन्द्व और तत्पुरुष, ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द ।

अपि सा पञ्चवटी—क्या यह पञ्चवटी है ?

अपि सा गोदावरी—क्या यह गोदावरी है ?

अपि तत् तपोवनम्—क्या यह तपोवन है ?

सा हि कुलपतेः प्राणाः—वह तो कुलपतिका जीवन है ।

लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः—लक्ष्मी और नारायणको प्रणाम ।

विघ्नभयेन नीचा कार्यं न प्रारभन्ते—विघ्नोंके भयसे नीच लोग कार्यको आरम्भ नहीं करते ।

उत्तमजनाः कदापि धर्मं न त्यजन्ति—अच्छे लोग कभी धर्मको नहीं छोड़ते ।

पञ्चपात्रे पूजासामग्री वर्तते—पञ्चपात्रमें (पांच पात्रोंका समुदाय) पूजाका सामान है ।

सरस्वत्याः जलं पावनम्=सरस्वत्या जलं पावनम्—सरस्वतीका जल पवित्र है ।

कुबेरः स्वनगर्याम् अ(म)लकायां वसति—कुबेर अपनी नगरी अलकामें रहता है ।

पत्न्यै क्रुध्यति माणवकः—माणवक अपनी स्त्री पर कोप करता है, (क्रुध् चतुर्थीके साथ आता है)।

सरय्वाः तटे *कश्चित्तापसः प्रतिवसति=सरय्वास्तटे कश्चित्तापसः प्रतिवसति—सरयूके तटपर कोई तपस्वी रहता है ।

श्वश्र्वाः आज्ञामनुसरति वधूः—श्वश्र्वा आज्ञामनुसरति वधूः—बहू सासकी आज्ञाका अनुसरण करती है ।

---

* चित्, चन, और अपि—ये अनिश्चित अर्थमें किम् शब्दके पुं, स्त्री, तथा नपुंसक लिङ्गके रूपोंके बाद लाये जाते हैं—कश्चित्, कस्मिंश्चित्, काचन, कानिचित् इत्यादि।

इस पाठमें ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं ।

नदी (स्त्री) ।

	ए व.	द्वि व	ब, व
प्र,	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि	नदीम्	,,	नदीः
तृ	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च	नद्यै	,,	नदीभ्यः
पं	नद्याः	,,	,,
ष	,,	नद्योः	नदीनाम्
स	नद्याम्	,,	नदीषु
स	नदि	नद्यौ	नद्यः

वधू (स्त्री) ।

	ए व	द्वि व	ब व,
प्र	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वि	वधूम्	,,	वधूः
तृ,	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च,	वध्वै	,,	वधूभ्यः
पं	वध्वाः	,,	,,
ष	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स,	वध्वाम्	,,	वधूषु
सं	वधु	वध्वौ	वध्वः

नदी तथा वधूके रूप एकसे हैं । परन्तु वधूके प्रथमाके एकवचनमें विसर्ग रहता है, और नदीके प्र ए व में नहीं रहता ।

[F] लक्ष्मीनारायणाभ्याम्, कुलपते, पञ्चवटी, तपोवनम्, विप्रभयेन, और रामजना ये सब समास हैं।

दो या अधिक पद जब एक साथ मिले रहते हैं तो वह समास कहलाता है। प्राय अन्तिम पदको छोड़ और सब पदोंकी विभक्तियोंका लोप हो जाता है।

हम लोग अपनी इच्छासे पदोंको जोड़कर समास नहीं बना सकते। इसलिये वैयाकरणोंने इस विषयपर अतिसूक्ष्म नियम दिये हैं।

प्रधानत समास चार प्रकारके होते हैं —द्वन्द्व, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव। इनमें पहिले दो प्रकारके समासोंका वर्णन इस पाठमें किया गया है।

रामलक्ष्मणौ (राम और लक्ष्मण), रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना (राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न), भीमार्जुनौ (भीम, और अर्जुन), लक्ष्मीनारायणौ (लक्ष्मी, और नारायण), पार्वतीपरमेश्वरौ (पार्वती, और परमेश्वर), उमामहेश्वरौ (उमा, और महेश्वर) ये सब द्वन्द्व समास हैं।

१। द्वन्द्व समास वह है जिसमें सब (दो या अधिक) पदोंके अर्थोंकी एकसी प्रधानता रहती है। जब वह समास अलग किया जाता है तो हर एक प्रत्येक पद च से जोड़ा जाता है। च का अर्थ 'और' है।

यदि दो पदोंका समास हो तो उसमें द्विवचन आता है और अधिक का हो तो बहुवचन, अन्तिम पदका लिङ्ग ही समासका लिङ्ग होता है। द्वन्द्वका अर्थ है जोड़, द्वन्द्व समासमें प्रति पदके अर्थकी एकसी प्रधानता रहती है।

छोटे शब्दका बड़े शब्दसे पहिले प्रयोग होता है। भाइयोंके नाम उनकी बड़ाईके क्रमसे प्रयुक्त होते हैं।

कुलपति —कुलका स्वामी, षष्ठीतत्पुरुष, तत्पुरुष —उसका स्वामी; षष्ठीतत्पुरुष, तपोवनम् (तपस्+वनम् =तप व वनम् =

तपोधनम्)—तपका धन, षष्ठीतत्पुरुष, विप्रभयम्—विप्रोंसे पञ्चमीतत्पुरुष—

२। तत्पुरुष वह समास है जिसका पहिला पद प्रथमाको छ और किसी विभक्तिके अर्थमें हो और इस प्रकार वह दूसरे पदसे जाय।

'तत्पुरुष' यह शब्द भी तत्पुरुष समास है, और इसका अर्थ है उसका आदमी, और इस प्रकार वह तत्पुरुष समासको बतलाता है।

तत्पुरुष शब्दका अर्थ—'वह आदमी' भी है। इसमें पहिला विशेषण है और दूसरा विशेष्य—

विशेषण तथा विशेष्यका समास भी एक प्रकारका तत्पुरुष इसको कर्मधारय कहते हैं।

उत्तमजना —कर्मधारय समास है।

३। कर्मधारय—कर्म माने क्रिया। इस समासके सब पद एक ही क्रि अन्वित होतेते हैं, उत्तमजना गच्छन्ति और उत्तमजनान् पूजयामि—में तथा जन ये दोनों एक ही क्रियामें अन्वित है। पहिलेमें वे कर्ता हैं दूसरेमें कर्म। इस प्रकार कर्मधारय समासमें पद समानाधिकरण है। पञ्चपात्रम्—पांच पात्रोंका समुदाय, पञ्चवटी—पांच वृक्षोंका समुदाय,—ये द्विगु समास हैं।

४। द्विगु कर्मधारयका एक भेद है। यदि प्रथम पद संख्यावाच और द्वितीय पद संज्ञावाचक हो तो वह द्विगु समास है। यह समाह (समूह) के अर्थमें नपुंसकके एकवचनमें प्रयोग किया जाता है। क कहीं द्विगु समासके अन्तका अ ई हो जाता है।

द्विगु शब्द इस समासके लक्षणको बतलाता है क्योंकि इसका पहि पद द्वि यह संख्यावाचक है और दूसरा पद गु (गो—गाय, ... है) संज्ञावाचक है।

विशेषण।

उत्तम—सब से अच्छा	पावन—पवित्र शुद्ध करनेवाला
नीच—नीचा, अधम	बाल—लड़का
पर—(स्त्री परा)	श्रेष्ठ—उत्तम
बड़ा (परा सीमा=चरम सीमा)	स्व—अपना (सर्वनाम)*

धातु।

क्रुप् (कुप्यति) (दिवादि पर)—कोप करना। (चतुर्थीके साथ आता है)।

प्र+आ+रभ् (प्रारभते) (भ्वा आत्म)—आरम्भ करना।

सम्+गम् (सङ्गच्छते)—संगम (भ्वा आत्म) मिलना।

सह् (सहते) (भ्वा आत्म)—सहना

सिच् [सिञ्च्] (सिञ्चति) (तुदादि पर)—सींचना।

स्रु (स्रवति) (भ्वा पर)—बहना।

पाठ १२।

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, मकारान्तशब्द, भूतकृदन्त।

राम ससीत सहलक्ष्मणो वन गत—राम सीता और लक्ष्मणके साथ वन को गया।

अश्वमारूढो देवदत्त—देवदत्त घोड़ेपर चढ़ा।

---

* जब सर्वनाम है तब इसका अर्थ अपना है। जब इसका अर्थ सम्बन्धी या धन है तब यह सर्वनाम नहीं है।

संज्ञाशब्द।

अधिप (पु)—स्वामी
अलका (स्त्री) कुबेरकी नगरी
आज्ञा (स्त्री)—आदेश
इच्छा (स्त्री)—चाह
कार्य (न)—काम
कुबेर (पु)—कुबेर
कुमारी (स्त्री)—अविवाहित कन्या
कुलपति (पु) १ कुलका प्रधान पुरुष, २ गुरु जो १०,००० शिष्योंको पढ़ाता और पोषण करता है।
गङ्गा (स्त्री)—गङ्गा
गर्भिणी (स्त्री)—गर्भिणी
गोदावरी (स्त्री)—गोदावरी
चित्र (न)—तसवीर
जल (न)—पानी
तट (पु, न)—किनारा
तपोवन (न)—तपोवन
तापस (पु)—तपस्वी
दोहद (पु न) गर्भिणीका मनोरथ
नगरी (स्त्री)—नगरी
नारायण (पु)—विष्णु
नैपुण्य (न)—चातुर्य
५ (न)—पाच धातुओंका समूह
पञ्चवटी (स्त्री)—दण्डकारण्यका एक भाग, जिसमें पाँच वट थे
पत्नी (स्त्री)—भार्या
पादप (पु)—पेड़
पूजा (स्त्री)—पूजा
प्रदोष (पु)—सायङ्काल
प्रयाग (पु)—प्रयाग
प्राण (पु)—(सर्वदा ब व में प्रयोग होता है)—प्राण
भङ्ग (पु)—उल्लङ्घन
भव (पु)—शिव
भवानी (स्त्री)—पार्वती
माणवक (पु)—किसी का नाम
मुख (न)—१ मुँह, २ आरम्भ
यमुना (स्त्री)—यमुना
रजनी (स्त्री)—रात
रुद्र (पु)—शिव
रुद्राणी (स्त्री)—पार्वती
लक्ष्मी* (स्त्री)—लक्ष्मी
वधू (स्त्री)—स्त्री, पुत्रवधू
शरयू (स्त्री)—शरयू नदी
श्वश्रू (स्त्री)—सास
सरस्वती (स्त्री)—इरावती नदी
सामग्री (स्त्री)—सामान
सीमा (स्त्री)—सीमा, हद।

---

* प्रथमा ए व लक्ष्मीः। शेष रूप नदी शब्दके समान।

विशेषण।

उत्तम—सब से अच्छा
नीच—नीचा, अधम
पर—(स्त्री परा)
बड़ा (परा सीमा=चरम सीमा)
पावन—पवित्र शुद्ध करनेवाला
बाल—लड़का
श्रेष्ठ—उत्तम
स्व—अपना (सर्वना)*

धातु।

कुप् (कुप्यति) (दिवादि पर)—कोप करना। (चतुर्थी के साथ आता है)।
प्र+आ+रभ् (प्रारभते) (भ्वा आत्म)—आरम्भ करना।
सम्+गम् (सङ्गच्छते)—सगम् (भ्वा आत्म) मिलना।
सह् (सहते) (भ्वा आत्म)—सहना
सिच् [सिञ्च्] (सिञ्चति) (तुदादि पर)—सींचना।
स्रु (स्रवति) (भ्वा पर)—बहना।

पाठ १२।

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, सकारान्तशब्द, भूतकृदन्त।

राम ससीत सलक्ष्मणो वनं गतः—राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन को गया।

अश्वमारूढो देवदत्त —देवदत्त घोड़ेपर चढ़ा।

---

* यह सर्वनाम है जब इसका अर्थ अपना है। जब इसका अर्थ सम्बन्धी व धन है तब सर्वनाम नहीं है।

क कोऽत्र भो ! कुत आगतोऽसि।—यहां कौन है जो ? तू आया है ?

प्रतिदिन सन्ध्यामाचरति—वह प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन करता है।

तपोधनानां तप एव परमं धनम्—मुनियोंका तपही बड़ा धन है।

ऋषयो जितेन्द्रिया जितक्रोधाश्च—ऋषि लोग वे हैं जिन्होंने इन्द्रियोंको तथा क्रोधको जीता।

च तथा वा भाषाकी तरह दो शब्दों अथ वा दो वाक्योंके बीचमें आता। उनके प्रयोगपर ध्यान दो। रामश्च लक्ष्मणश्च वा रामो ... रामो वा लक्ष्मणो वा, अथ वा रामो लक्ष्मणो वा, न त्वया साधु, न चानेन।

परोपदेशवेलायां सर्वेऽपि पण्डिता भवन्ति—दूसरोंको उपदेश देते समय सभी पण्डित होते हैं।

अहो गृहस्यास्य रमणीयता—वाह! इस घरकी सुन्दरता।

चन्द्रमा ओषधीनां नायक—चन्द्रमा ओषधियोंका स्वामी है।

पयोदा पयांसि वर्षन्ति—मेह पानी बरसते हैं।

कुतूहलेन तेषां चेतसि लब्धं पदम्—कौतुकने उनके हृदयमें स्थान पाया।

इस पाठमें बहुव्रीहि तथा अव्ययीभावका वर्णन किया गया है।

बहुव्रीहि—यदि इस शब्दको बहु व्रीहि (बहुत धान) ऐसा लिया जाय, तो यह कर्मधारय समास है, क्योंकि यह विशेषण तथा विशेष्य बनाया गया है। पर यदि इसका अर्थ 'वह जिस के पास बहुत धान है' (बहु व्रीहि यस्य) ऐसा लिया जाय, तो यह बहुव्रीहि समास है। इस प्रकार यह शब्द अपने लक्षणको बताता है।

जितेन्द्रिय—वह जिसने अपनी इन्द्रियोंको जीता है।

जितक्रोध—वह जिसने अपने क्रोधको जीता है।

पीताम्बर—वह जिसका वस्त्र पीला है, विष्णु।

ये सब बहुव्रीहिके उदाहरण हैं।

१। विशेषण तथा विशेष्यका समास बहुव्रीहि समास है, यदि वह किसी दूसरेका विशेषण हो। इसका विग्रह दिखानेमें यत् शब्दका योग करना आवश्यक है, जो प्रथमाको छोड़ और चाहे जिस विभक्तिमें आ सकता है।

जितेन्द्रिय ऋषि —इसमें जित विशेषण है और इन्द्रिय विशेष्य, और यह समस्त पद अन्य पदार्थ ऋषिका विशेषण है। इसका विग्रह यों होता है—जितानि इन्द्रियाणि येन सः, पीतमम्बरं यस्य सः।

सहलक्ष्मण और सहीत बहुव्रीहि समास है—

२। वह समास भी, जिसमें पहिला पद सह है, बहुव्रीहि है। सह विकल्पसे स में बदल जाता है। सहीत राम —सीतया सह वर्तते इति सहीत —

३। यदि बहुव्रीहिका अन्तिम पद आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो और समस्तपद पुंलिङ्ग वा नपुंसक लिङ्गका हो तो उस 'आ' को 'अ' हो जाता है।

प्रतिदिनम्—प्रति अव्यय है, दिन अव्यय नहीं है, पर यह समस्तपद अव्यय है, दिने दिने इति प्रतिदिनम् (हर दिन)—

४। यदि समासका प्रथम पद अव्यय हो और यदि वह समस्तपद भी अव्यय हो, तो इसका नाम अव्ययीभाव समास है।

अव्ययीभाव शब्दका अर्थ है—जो अव्यय नहीं है, अव्यय हो जाता है। दिनम् सञ्ज्ञाशब्द है, पर प्रतिदिनम् में वह अव्यय है।

५। अव्ययीभाव समासका रूप प्रायः नपुंसक शब्दके द्वितीयाके एकवचनमें समाप्त होता है।

क कोऽयं भो । कुत आगतोऽसि ।—यह कौन है जी ? तू कहाँ आया है ?

प्रतिदिनं सन्ध्यामाचरति—वह प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन करता है।

तपोधनानां तप एव परमं धनम्—मुनियोंका तपही बड़ा धन है।

ऋषयो जितेन्द्रिया जितक्रोधाश्च—ऋषि लोग वे हैं जिन्होंने इन्द्रियोंको तथा क्रोधको जीता।

च तथा वा भाषाकी तरह दो शब्दों अथ वा दो वाक्योंके बीचमें नहीं आता। उनके प्रयोगपर ध्यान दो। रामश्च लक्ष्मणश्च वा रामो लक्ष्मणश्च रामो वा लक्ष्मणो वा, अथ वा रामो लक्ष्मणो वा, न त्वया साधु ! न चानेन।

परोपदेशवेलायां सर्वेऽपि पण्डिता भवन्ति—दूसरोंको उपदेश देते समय सभी पण्डित होते हैं।

अहो गृहस्यास्य रमणीयता—वाह ! इस घरकी सुन्दरता।

चन्द्रमा ओषधीनां नायकः—चन्द्रमा ओषधियोंका स्वामी है।

पयोदाः पयांसि वर्षन्ति—मेह पानी बरसते हैं।

कुतूहलेन तस्य चेतसि लब्धं पदम्—कौतुकने उसके हृदयमें स्थान पाया।

इस पाठमें बहुव्रीहि तथा अव्ययीभावका वर्णन किया गया है।

बहुव्रीहि—यदि इस शब्दको बहु व्रीहि (बहुत धान) ऐसा लिया जाय, तो यह कर्मधारय समास है, क्योंकि यह विशेषण तथा विशेष्यसे बनाया गया है। पर यदि इसका अर्थ 'वह जिस के पास बहुत धान है' (बहु व्रीहि यस्य) ऐसा लिया जाय, तो यह बहुव्रीहि समास है। इस प्रकार यह शब्द अपने लक्षणको बतलाता है।

जितेन्द्रिय —वह जिसने अपने इन्द्रियोंको जीता है।

जितक्रोध —वह जिसने अपने क्रोधको जीता है।

पीताम्बर —वह जिसका वस्त्र पीला है, विष्णु।

ये सब बहुव्रीहिके उदाहरण हैं।

१। विशेषण तथा विशेष्यका समास बहुव्रीहि समास है, यदि वह किसी दूसरेका विशेषण हो। इसका विग्रह दिखानेमें यत् शब्दका प्रयोग करना आवश्यक है, जो प्रथमाको छोड़ और चाहे जिस विभक्तिमें आ सकता है।

जितेन्द्रिय ऋषि—इसमें जित विशेषण है और इन्द्रिय विशेष्य, और यह समस्त पद अन्य पदार्थ ऋषिका विशेषण है। इसका विग्रह यों होता है—जितानि इन्द्रियाणि येन स, पीताम्बर यथा स।

सफलदमय और सपीत बहुव्रीहि समास हैं—

२। वह समास भी, जिसमें पहिला पद सह है, बहुव्रीहि है। सह विकल्पसे स में बदल जाता है। सपीत राम—पीतया सह वर्तते इति सपीत—

३। यदि बहुव्रीहिका अन्तिम पद आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो और समस्तपद पुंलिङ्ग वा नपुंसक लिङ्गका हो तो उस 'आ' को 'अ' हो जाता है।

प्रतिदिनम्—प्रति अव्यय है, दिन अव्यय नहीं है, पर यह समस्तपद अव्यय है, दिने दिने इति प्रतिदिनम् (हर दिन)—

४। यदि समासका प्रथम पद अव्यय हो और यदि वह समस्तपद भी अव्यय हो, तो इसका नाम अव्ययीभाव समास है।

अव्ययीभाव शब्दका अर्थ है—जो अव्यय नहीं है, अव्यय हो जाता है। दिनम् सनाशब्द है, पर प्रतिदिनम् में वह अव्यय है।

५। अव्ययीभाव समासका रूप प्रायः नपुंसक शब्दके द्वितीयाके एकवचनकी समान होता है।

अस्—अदादि, परस्मै वर्तमान काल ।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अस्ति	स्त	सन्ति
म पु	असि	स्थ	स्थ
उ पु	अस्मि	स्व	स्म

सकारान्त शब्दोंके पुलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्गके रूप भी इस प्रकार दिये गये है ।

चन्द्रमस्—पु ।

	ए व	द्वि व.	ब व
प्र	चन्द्रमा	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस
द्वि	चन्द्रमसम्	”	”
तृ	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभि
च	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्य
प	चन्द्रमस	”	”
ष	,	चन्द्रमसो	चन्द्रमसाम्
स	चन्द्रमसि	”	चन्द्रमस्सु-चन्द्र
स	चन्द्रमा	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस

पयस्—न ।

प्र	पय	पयसी	पयांसि
द्वि	”	”	”
तृ	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभि
च	पयसे	,	पयोभ्य
प	पयस	”	”
ष	पयस	पयसो	पयसाम्
स	पयसि	”	पय स-पयस्सु
स	पय	पयसी	पयांसि

ये रूप सन्धिके नियमके अनुसार शब्दोंके आगे प्रत्यय जोड़नसे बन
। पुलिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें उपान्त्य अ को दीर्घ होता है।

ई नपुंसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधनके द्विवचनका
त्यय है, और इ नपु० शब्दके उन्हीं विभक्तियोंके बहुवचनका प्रत्यय है।
पाधि की तरफ ध्यान दो।

६। अनुनासिक अथवा अन्तस्थ व्यञ्जनोंको छोड़ और किसी
ञ्जनमें समाप्त होनेवाले नपुंसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन-
अन्तिम व्यञ्जनके पूर्व न् आता है, जब इ आगे रहता है।

जब इस न् के बाद श्, ष्, स्, वा ह् होता है, इसको अनुस्वार
ोता है, और जब और कोई व्यञ्जन आगे रहता है, यह न् इसके आगे
हनेवाले व्यञ्जनके वर्गके अनुनासिकमें बदल जाता है। सकारान्त शब्द
था महत् शब्दमें इस अनुनासिकके पहिले रहनेवाले स्वरको दीर्घ
ोता है।

क्तप्रत्ययान्त तथा कृत्यप्रत्ययान्त शब्दोंके रूप भी इस पाठमें सिखाये
ये हैं। संस्कृतमें क्तप्रत्ययान्तका बहुत प्रयोग होता है। वे बहुधा
नद्यतन भूतकी जगह प्रयोग किये जाते हैं।

भूतकृदन्त—भूत यह शब्द स्वयं भूतकृदन्त है, और इस बातको
दिखाता है कि धातुसे भूतकृदन्त किस प्रकार बनाया जाता है।

७। भू + त = भूत। त भूतकृदन्तका प्रत्यय है।

गम्	गत	इन धातुओंमें अन्तिम म् का लोप हुआ है।
नम्	नत	
रम्	रत	

भू	भूत
जि	जित
नी	नीत
लुभ्	लुब्ध
रुध्	रुद्ध
लभ्	लब्ध
क्षुभ्	क्षुब्ध
क्रुध्	क्रुद्ध
बुध्	बुद्ध
रुह्	रूढ
गुह्	गूढ

ये सब रूप बनते हैं। लुभ्+त=लुभ्+ध= लुब्+ध=लुब्ध—त—जब किसी वर्गका चतुर्थ व उसके पहिले रहता है—ध हो जाता है, और उस पहिले रहनेवाला वर्गचतुर्थ वर्णके तृतीयवर्णमें बद जाता है।

रुह्+त=रुढ्+त=रुढ्+ध=रुढ्+ढ (इस ध् पूर्ववाले ढ् में बदल गया क्यों कि यह ढ् से मिलाया गया)=रूढ, पर रुढ में ऋ को दीर्घ ना हुआ—जब अनुनासिक या अन्तस्थ वर्णके सिवा और कोई व्यञ्जन आगे रहता है, धातु के अन्तिम ह् ढ् होता है, ढ् जब आगे रहता है तो ढ् का लो होता है, और ऋ को छोड़ कर उसके पहिले रहनेवाले स्वरको, य वह ह्रस्व हो, दीर्घ होता है।

रमणीय कैसे बना है इधर ध्यान दो।

८। गम्—गन्तव्य, गमनीय, गम्य (जाने योग्य)—तव्य, अनीय, य विध्यर्थ प्रत्यय हैं।

शुच्—शोचनीय, कृ—करणीय—कर्तव्य, शुच्—शोच्य, धृ—धार्य—

९। अनीय तथा तव्यके पहिले धातुके अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरके स्थानमें गुण आदेश होता है, और य के पहिले प्राय अन्तिम स्वरको [illegible] आदेश होता है।

१०। रमणीय—सुन्दर, रमणीयता—सुन्दरता—भाववाचक प्रत्यय त और त्व हैं। इनके लगानेसे विशेषणोंसे भाववाचक शब्द बनते हैं।

शत्रून् पराजयते।

अध्ययनात् पराजयते।

उच्चानि देवदत्तस्य गृहाणि ।
गतं न शोचनीयम् ।
देवि रमणीयमेतत् सरः ।
अहो प्रियदर्शनः कुमारः ।
अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः ।
—अचिन्त्यानप्यर्थान् विधिर्घटयति ।
भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः ।
न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति ।
– तानि वचनानि तस्य हृदये शल्यानि सम्भूतानि ।
एतस्याः परिषदि बहवः पण्डिताः सन्ति ।
वयस्य ! कथं शून्यहृदयो भवसि ।
गुणेन शून्याः पशुभिः समानाः ।
पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरिताम् ।

हम लोग प्रतिदिन गङ्गामें नहाते हैं ।
ये लड़के कहाँसे आये हुए हैं ?
इस नगरमें बहुत पण्डित रहते हैं ।

सञ्ज्ञाशब्द ।

ध्ययन (न)—पढ़ना	कुतूहल (न)—कौतुक
र्थ (पु)—इच्छा	कुमार (पुं)—लड़का
ागम (पु)—आना	क्रोध—(पु)—क्रोध
न्द्रिय (न)—इन्द्रिय	गुण (पु)—गुण
पदेश (पु)—उपदेश	चन्द्रमस् (पु)—चन्द्रमा
षि (पु)—मुनि	चेतस् (न)—मन
षधि (पुं)—वनस्पति	जन (पुं)—लोग

तरु (पु)—वृक्ष, पेड़
देवदत्त (पु)—किसी पुरुषका नाम
देवी (स्त्री)—देवता, रानी
धन (न)—धन
नक्षत्र (न)—तारा
नायक (पु)—स्वामी
पण्डित (पु)—पण्डित
पद (न)—स्थान
पयस् (न)—जल
पयोद (पु)—मेघ
परिषद् (स्त्री)—सभा
पशु (पु)—पशु
पुलिन (न)—तट
फल (न)—फल
रमणीयता (स्त्री)—सुन्दरता
लक्ष्मण (पु)—लक्ष्मण
वचस् (न)—वाणी
वयस्य (पु)—मित्र
विधि (पु)—ब्रह्मा, दैव
वेला (स्त्री)—समय
शत्रु (पु)—शत्रु
शल्य (न)—कांटा, दुखदायी
सन्ध्या (स्त्री)—त्रिकालसन्ध्या
सरित् (स्त्री)—नदी
सरस् (न)—सरोवर
सीता (स्त्री)—रामकी स्त्री
स्रोतस् (न)—प्रवाह
हृदय (न)—हृदय

विशेषण ।

अचिन्त्य—जिसको सोच नहीं सकते
आगत—(आ+गम्+त) आयाहुआ
आरूढ (आ+रुह्+त) चढ़ा हुआ
उच्च—ऊंचा
उपरत (उप+रम्+त)—मृत
गत (गम्+त)—गया हुआ
[illegible] (जि+त)—जीता हुआ
नम्र—नम्र, विनीत
पर—दूसरा (सर्वनाम)
परम—बड़ा
प्रियदर्शन (बहु)—सुन्दर
रमणीय—सुन्दर
लब्ध (लभ्+त)—मिला हुआ
वल्लभ—प्रिय

शून्य—खाली, (शून्यहृदय=जिसका मन ठिकाने नहीं)
शोचनीय—शोक करने योग्य
सन्निहित—(सम्+नि+धा+त)—उपस्थित
सम्भूत—(सम्+भू+त)—उत्पन्न
समान—तुल्य

अव्यय।

अधुना—अब
कथम्—कैसे?
कुत—कहां से?
खलु—निश्चयसे
तत्र—वहां
पुरा—पूर्वकालमें
प्रतिदिनम्—हरदिन
[1] भोस् (भो) हे!
कुत्र—कहां?

धातु।

अस् (अस्ति) (अ पर)—होना।
आ+चर् (आचरति)-(१आ पर)-करना।
घट् (घटयति) (चु पर)—बनाना, पूरा करना।
पराजि (पराजयते) (भ्वा आ)—१ पराजय करना, २ थकना (दूसरे अर्थमें पञ्चमीके साथ प्रयोग किया जाता है।)
वृष् (वर्षति) (भ्वा-पर) बरसना।

पाठ १३।

इदम्, तद्, यद्, तथा अ में समाप्त होनेवाले शब्द।

क अयम् ऋषिकुमार=कोऽयमृषिकुमार—यह कौन ऋषिकुमार है?

अलम् अनेन अतिविस्तरेण=अलमनेनातिविस्तरेण—यह विस्तार बस —अब बहुत न कहिये।

[1] भोस के स का लोप होता है, तब उसके बाद कोई स्वर या घोष व्यञ्जन होता है।

अलम् अयम् मल्लः तस्मै मल्लाय = अलमयं मल्लस्तस्मै मल्लाय यह मल्ल उस मल्लके लिये बस (पर्याप्त) है।

महद्भिः महत्सु एव विक्रमः कर्तव्यः—महद्भिर्महत्स्वेव कर्तव्यः—बड़े लोगों को बड़े ही लोगोंपर पराक्रम करना चाहिये।

महान् अस्य (महानस्य) कवेर्वाचां विभवः—इस कविका वाणियों का वैभव बड़ा है।

बुधानां परिषदि अनेन (परिषद्यनेन) महद्यशो लब्धम्—पण्डितों सभामें इसने बड़ा यश पाया।

महान्ति दुःखानि सोढानि आभ्याम् (सोढान्याभ्याम्) दुःखान्याभ्याम्। इन दो लड़कोंने बड़े दुःख सहन किये।

निःस्पृहस्य तृणं जगत्—निःस्पृहको जगत् तृण (तुल्य) है।

एभिः फलैः किं प्रयोजनम्*—इन फलोंसे क्या काम है ?

इयम् अस्मि=इयमस्मि—यह मैं हूं।

अस्मिन् एव समये कोऽपि वन्यगजस्तत्रायातः =अस्मिन्नेव समये कोऽपि वन्यगजस्तत्रायातः—इसी समय कोई जंगली हाथी वहां आया।

इदम्—पु।

	एव	द्विव	बव
प्र	अयम्	इमौ	इमे
द्वि	इमम् एनम्	इमौ एनौ	इमान्-एनान्
तृ	अनेन एनेन	आभ्याम्	एभिः
च	अस्मै	,,	एभ्यः
प	अस्मात्	,,	एभ्यः
ष	अस्य	अनयोः एनयोः	एषाम्
स	अस्मिन्	,,	एषु

* हेतु, अर्थ, प्रयोजन किम और इनके समान अर्थके पद प्रायः कर्तावाचि... में प्रयोग किये जाते हैं।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
पं	वाच	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य
ष	,,	वाचो	वाचाम्
स	वाचि	,,	वाक्षु
सं	वाक्-ग्	वाचौ	वाच

सुखभाज्—पु० ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	सुखभाक्—ग्	सुखभाजौ	सुखभाज
द्वि	सुखभाजम्	,,	,,
तृ	सुखभाजा	सुखभाग्भ्याम्	सुखभाग्भि
च	सुखभाजे	,,	सुखभाग्भ्य
पं	सुखभाज	,	,
ष	,,	सुखभाजो	सुखभाजाम्
स	सुखभाजि	,,	सुखभाक्षु
सं	सुखभाक्—ग्	सुखभाजौ	सुखभाज

महत्—न ।

प्र, द्वि, स   महत्—द्   महती   महान्ति

महती—महत् का स्त्रीलिङ्ग है ।

सुखभाज्—न ।

प्र, द्वि, स   सुखभाक्-ग्   सुखभाजी   सुखभाञ्जि

१। भगवत्+भ्याम्=भगवद्भ्याम्—

अनुनासिक या अन्तःस्थ को छोड़कर परके बोधका और कोई व्यञ्जन, वर्ग, उनके बाद वर्गका तृतीय वा चतुर्थ वर्ण होता है, अपने वर्गके तृतीय वर्णमें बदल जाता है ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
तृ	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भि
च	भगवते	,,	भगवद्भ्य
प	भगवत	,,	,,
ष	,,	भगवतो	भगवताम्
स	भगवति	,,	भगवत्सु
सं	भगवन्	भगवन्तौ	भगवन्त

महत् -पु० ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	महान्	महान्तौ	महान्त
द्वि	महान्तम्	,,	महत
तृ	महता	महद्भ्याम्	महद्भि
च	महते	,,	महद्भ्य
प	महत	,,	,,
ष	,,	महतो	महताम्
स	महति	,,	महत्सु
सं	महन्	महान्तौ	महान्त

वाच्—स्त्री ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	वाक्-ग्	वाचौ	वाच
द्वि	वाचम्	,,	,,
तृ	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भि
च	वाचे	,,	वाग्भ्य

अपि तपो वर्धते ।
भानुर्वियतो मणिः ।
धिक् चौरान् ।
धिगिय दरिद्रता ।
अलं अनेन ।
रमणीयेव लता ।
अहो मधुरमासां कन्यानां दर्शनम् ।
अहो महात्मसु भक्तोऽयमुद्वेग ।
कथय कियदवशिष्टं रजन्या इति ।
न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।
अनेन तीर्थनाम्ना समीहितं साधयाम ।
अथ स वल्कलैर्मिश्रो मित्र दुष्यन्त ।
तदिदमरण्यं यस्मिश्चिरं सीतया सह राम उषित ।
अरेमूर्ख कलहेन किम् ।
अर्थो हि कन्या परकीय एव ।
निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।
कन्या नाम महद् दुःखं पितॄणां महतामपि ।
* शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ।

यहाँ हम लोग हैं ।
इन पत्तोंका क्या काम है ?
इस मूर्खको धिक्कार ।
तुम लोग ऐसे व्यग्र क्यों हो ?

* जब कोई शब्द दो बार प्रयोग किया जाता है तब उस का अर्थ 'हर' होता है जैसे—शैले शैले=हरेक पहाड़में ।

संज्ञाशब्द ।

अतिविस्तर (पु)—बड़ी लबाई
अर्थ (पु)—प्रयोजन
अनल (पु)—अग्नि
अरण्य (न)—वन
* अविषय (पु)—(नञ्समास) जिसको जान नहीं सकते
आडम्बर (पु)—दिखावा
उद्देश (पु)—प्रदेश, स्थान
गज (पु)—हाथी
चन्दन (न)—चन्दनका पेड़
जगत् (न)—संसार
तीर्थ (न)—उपाय, घाट, मार्ग
दरिद्रता (स्त्री)—दरिद्रता
दर्शन (न)—प्रकाश, देख पड़ना
दुःख (न)—कष्ट
दुष्यन्त (पु)—एक राजाका नाम
पशु (पु)—जन्तु
परिषद् (स्त्री)—पण्डितोंकी सभा
प्रयोजन (न)—मतलब
प्रवात (पु)—(प्रकृष्टो वात) अच्छा पवन
बलभिद् (पु)—बल असुर इन्द्र
मल्ल (पु)—मल्ल, पहलवान
माणिक्य (न)—माणिक
मित्र (न)—मित्र
मौक्तिक (न)—मोती
यशस्—(न)—यश
लता (स्त्री)—लता
लोभ (पु)—लोभ
वासुदेव (पु)—कृष्ण, वसु[देव] का लड़का
विक्रम (पु)—पराक्रम
विभव (पु)—शक्ति
वियत् (न)—आकाश
शैल—(पु)—पहाड़ (शैले शैले=हर पहाड़में)
श्रम (पुं)—परिश्रम
समय—(पुं)—काल

* जिस समासमें ‘न’ या ‘अन्’ पूर्वपद रहता है उसे नञ्समास कहते हैं। अपापम् (न पापमिति), पर अपापम् (नास्ति पापं यस्य सत) बहुव्रीहि है।

धातु।

वृध् (वर्धते) (भ्वा आ) बढ़ना, उदित होना	साध् (साधयति) (चु पर) सिद्ध करना

पाठ १४।

ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द,

लोट् लकार (आज्ञार्थ) के रूप।

मुक्तये हरिं भज—मुक्तिके लिये हरिका भजन करो।

महात्म्या लक्ष्मीश्चला मा तां सेवस्व—स्वभावसे लक्ष्मी चञ्चल है उसको मत सेवो।

इमां वेदनां कथं सहामहै—इस दुःख को कैसे सहन करें?

देव! प्रसीद। अपराधान् क्षमस्व—महाराज। कृपा कीजिये अपराधोंको क्षमा करिये।

नरो दुर्गाणि तरतु भद्राणि च पश्यतु—मनुष्य कष्टोंको पार करे मङ्गल देखे।

भगवतीं भागीरथीमवगाहताम्—वह भगवती गङ्गामें स्नान करे।

गुरूनभिवादयध्वम्—तुम लोग गुरुओंको प्रणाम करो।

भ्रमाद्रज्जुं सर्पं मा मन्यस्व—तू भ्रमसे डोरीको साँप न समझ।

दुर्नीतिर्नृपतिर्विनश्यति—अनीतिसे राजा नष्ट होता है।

अस्मिन् घोरेऽरण्ये कथं वसानि—मैं इस भयानक वनमें कैसे रहूँ

गृहं गत्वा शीघ्रं प्रतिनिवर्ततां भवान्—आप घर जाकर शीघ्र लौटें

प्रातर् उत्थाय (प्रातरुत्थाय) दन्तधावनं कृत्वा स्नातव्यं सन्ध्योपासनीया च—प्रातःकाल उठ दन्तधावन कर सन्ध्यावन्दन करना चाहिये।

पितृपादा अस्मभ्यमार्तान् त्रातुम् एव (त्रातुमेव) नागपराधं सहन्तम्

क्षत्रियोंका शस्त्र तु स्त्रियोंको बचाने हीके लिये है, निरपराधको मारनेके लिये नहीं।

आज्ञां भवतः श्रोतुम् इच्छामि (श्रोतुमिच्छामि)—मैं आपकी आज्ञा सुना चाहता हूं।

लोट् लकार (आज्ञा) के रूप इस पाठमें दिये गये हैं।—

भू भ्वा पर।

	एक व	द्वि व	बहु व
प्र. पु	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म पु	भव	भवतम्	भवत
उ पु	भवानि	भवाव	भवाम

वृत्—भ्वा आ।

प्र पु	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
म पु	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
उ पु	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै

ऊपरके रूपोंमें ये प्रत्यय ध्यानमें आवेंगे।—

परस्मैपद।

प्र. पु	तु	ताम्	अन्तु
म पु	०	तम्	त
उ. पु	आनि	आव	आम

आत्मनेपद।

प्र पु	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म पु	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ. पु	ऐ	आवहै	आमहै

जिस प्रकार अन्ति तथा अन्ते के पूर्व अ का लोप होता है, उसी प्रकार अन्तु तथा अन्ताम् के पूर्व अकारका भी लोप होता है।

वर्तमानकी तरह आज्ञामें भी विकरणके लगानेसे रूप बनते हैं ।

पुष्—दि पर ।

प्र पु	पुष्यतु	पुष्यताम्	पुष्यन्तु

विद्—दि आ ।

प्र पु	विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्

इहागच्छ (यहां आओ), आयुष्मान् भव (चिरजीवी हो), देव ! प्रसीद (महाराज ! कृपा कीजिये), इनके साथ ऊपरको और मिलाकर देखो ।

नियम —

लोट् लकार केवल आज्ञा होके अर्थमें नहीं आता । इच्छा, प्रार्थना तथा आशीर्वाद भी इसके अर्थ हैं ।

शिवः मा रक्षतात्—आशीर्वाद के अर्थ में प्रथम, तथा मध्यम पुरुष एकवचनमें तात् विकल्पसे जोड़ा जाता है ।

प्र पु	रक्षतु—रक्षतात्	रक्षताम्	रक्षन्तु
म पु	रक्ष — ,,	रक्षतम्	रक्षत

इस पाठमें इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप भी दिये गये हैं ।

मति—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	मतिः	मती	मतयः
द्वि	मतिम्	,,	मतीः
तृ	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च	मत्यै—मतये	,,	मतिभ्यः
पं	मत्याः—मतेः	,,	,,

	एक व	द्वि व	ब व
प	मत्या —मतेः	मत्योः	मतीनाम्
स	मत्याम्—मतौ	,,	मतिषु
सं	मते	मती	मतयः

धेनु—स्त्री।

	एक व	द्वि व	ब व
प्र	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि	धेनुम्	,,	धेनूः
तृ	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च	धेन्वै—धेनवे	,,	धेनुभ्यः
प	धेन्वाः—धेनोः	,,	,,
ष	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स	धेन्वाम्—धेनौ	,,	धेनुषु
सं	धेनो	धेनू	धेनवः

इकारान्त उकारान्त पुलिङ्ग शब्दोंके रूपोंको इनसे साथ मिलाकर निम्नलिखित भेदकी ओर ध्यान दो,—

१। स्त्रीलिङ्गमें द्वितीयाके बहुवचनमें न् के स्थानमें विसर्ग होता है पु हरीन्, भानून्, स्त्री—मतीः, धेनूः।

२। इकारान्त, उकारान्त शब्दोंके च, प, ष, तथा स, के एकवचन में विकल्पसे दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दोंके समान रूप भी होते हैं।

३। त्वा तथा त्वा प्रत्यय आ के जोड़ने से बने हैं।

नी—नीत्वा—(लेजाकर)	गम्—गत्वा—(जाकर)
श्रु—श्रुत्वा—(सुनकर)	नम—नत्वा—(प्रणाम कर)
कृ—कृत्वा—(कर)	रम्—रत्वा—(खेलकर)

म् का लोप हुआ है

आचार (आचार) पु —व्यवहार-सम्बन्धी आदर ।
आज्ञा (स्त्री)—आदेश
आर्या (स्त्री)—प्रतिष्ठित स्त्री
आसन (आसनम्) न —आसन
औषध (औषधम्) न —दवा
कङ्कण (कङ्कणम्) न —कङ्कण
कौन्तेय (कौन्तेय) पु —कुन्तीका पुत्र, युधिष्ठिर
क्षत्रिय (क्षत्रिय) पु —क्षत्रिय
घृत (घृतम्) न —घी
चकोर (चकोर) पु —एक पक्षी जिसके विषयमें कहा जाता है कि वह चांदनी खाता है।
चक्रवाकी (स्त्री) चकवी (यह रातको अपने सहचरसे वियुक्त होती है)
चन्द्रिका (स्त्री)—चांदनी
छात्र (छात्र) पु —शिष्य
जात (स्त्री जाता, जन् [जा] इ आ + त) प्रिय बालक
ज्ञान (ज्ञानम्) न —ज्ञान
ज्ञातप्राय (न)—ज्ञात होना (तत्पुरु)
[illegible] ([illegible]नम्) न —देना
[illegible] —र्गम्)पु , न —कठिनाई
[illegible] —[illegible])—अनीति

द्विज (द्विज) पु —दो बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, दो बार जन्म होता है। पहले [illegible] यज्ञोपवीत संस्कार इनका द्वि[illegible] जन्म है।
नृपति (पु)—राजा
पाणि (पु)—हाथ
पार्थिव (पार्थिव) पु —राजा
पुनर्दर्शन (पुनर्दर्शनम्) न (पुनर्-अव्यय फिर, दर्शन न [illegible] दूसरी भेट
प्रकृति (स्त्री)—स्वभाव
प्रतीकार (प्रतीकार) पु —(प्रति [illegible] भी पु)—[illegible]
ब्राह्मण (ब्राह्मण) पु —ब्रा[illegible]
भक्ति (स्त्री)—भक्ति
भवत् (सर्वना)—आप
भागीरथी (स्त्री)—गङ्गा
भ्रम (भ्रम) पु —भ्रम
मति (स्त्री)—बुद्धि
मुक्ति (स्त्री)—मोक्ष
मृगया (स्त्री)—शिकार
मैत्र (पु)—किसीका नाम ।
रज्जु (स्त्री)—डोरी
विकार (विकार) पु —[illegible] स्वाभाविक स्थितिमें परिवर्[illegible]

ना (स्त्री)—पीडा	सर्प (सर्प) पु—साप
त्र (शस्त्रम्) न,—शस्त्र शस्त्र	

विशेषण।

पराध (अद्रु०)—निर्दोष।	चल—चञ्चल
सन्तुष्ट (नञ्समा०, अ—नहीं + सन्तुष्ट सम्+तुष्+त)—अप्रसन्न	जड—सुस्त, मन्द
	दरिद्र—गरीब
	नष्ट (नश्+त)—नष्ट
सज् (बहु०, निर्=निष्क्रान्त= रुग्णा+रुज् स्त्री = रोग, जिसका रोग चला गया वह	पटु—चतुर
	पथ्य—हितकारी
	प्राज्ञ—बुद्धिमान्
प्रात (आ+ऋत, ऋ+त)—पीडित	लोल—चञ्चल
	वृत्त (वृत्+त)—हुआ
पुर—धनी	व्याधित—(व्याधि पु रोग)—रोगसे पीडित
पस्थित (उप+स्था+त)—प्राप्त	सन्तुष्ट—प्रसन्न
पासनीय (उप+आस्+अनीय) —पूजाके योग्य	सहचर—साथी
	स्नातव्य—(स्ना+तव्य) स्नान करने योग्य
र—भयानक	

धातु।

भि+वाद् (अभिवादयते) (चु आ)—प्रणाम करना	आ+स्तृ (आस्तृणुते) (चु आ) —बिछा मारना
व+गद् (अवगादते) (भ्वा आ)	उप+विश् (उपविशति) (तु पर,)

क्लृप् (कल्पते) (भ्वा आ—यह चतुर्थीके साथ आता है)—समर्थ होना, उत्पन्न करनेके लिये समर्थ होना

क्षम् (क्षमते, क्षाम्यति) (भ्वा आ, दि पर)—सहन करना

पुष् (पुष्यति) (दि पर)—पुष्ट करना, बढ़ाना

प्रति+नि+वृत् (प्रतिनिवर्तते) (भ्वा आ)-लौटना

प्रति+पद् (प्रतिपद्यते) (दि आ)—स्वीकार करना, अभ्यास करना

प्र+दा [यच्छ्] वा प्र+यम् [यच्छ्] (प्रयच्छति) (भ्वा पर)—देना

प्र+सद् (प्रसीदति) [सीद्] (भ्वा प —प्रसन्न होना

भज् (भजति—ते) (भ्वा उ)—भ करना

भृ (भरति) (भ्वा पर)

मन् (मन्यते) (दि आ)

वि+तृ (वितरति) भ्वा प—

शुभ् (शोभते) (भ्वा आ)—शो चमकना

सेव् (सेवते) (भ्वा आ)—से करना

अव्यय।

अज्ञात्वा (अ+ज्ञात्वा—ज्ञाका भूत कृ अव्यय)—न जानकर

उत्थाय (स्थाका भू कृ अव्य)—उठकर

कर्तुम् (कृ+तुम्)—करनेके लिये

ततः—उसके अनन्तर

तथा—उस प्रकारसे

तावत्—१. तबतक, २. प्रथमतः, ३. यह वाक्यकी शोभाके भी प्रयोग किया जाता है

त्रातुम् (त्रै+तुम्—भ्वा आ) बचानेके लिये

परमार्थतः—यथार्थ, सचमुच ('तस्—प्राय पञ्चमीके और कभी २ सप्तमीके आता है।)

प्रातर्—प्रात कालमें, सुब

—नहीं (यह निषेधके अर्थमें लोट् लकारके मध्यम पुरुषके साथ आता है)
यथा—जैसे, जिस प्रकारसे
शीघ्रम्—जल्दी
श्रोतुम्—(श्रु+तुम्) सुननेके लि

पाठ १५।

विधिलिङ् (विध्यर्थ), अदस्।

प्रज्वलन्ति असी अग्नय =प्रज्वलन्त्यमी अग्नय —ये अग्नि जलते हैं।
य असौ (योऽसौ) चोर स गृहीत —जो वह चोर, वह पकड़
ा (योऽसौ स —वह प्रविष्ट)=वह प्रविष्ट चोर पकड़ा गया है।
सर्वे अमी (सर्वेऽमी) इम पक्षिणमाद्रियन्ते—ये सब इस पक्षिक
दर मानते हैं।
अमीषां मार्गाना कृते किं न व्यवसितम् एभि (व्यवसितमेभि)-
मार्गोंके लिये इन्होंने क्या नहीं किया?
अपि नामानुरूप वर लभेय—क्या (अपि नाम—क्या जैसा मैं चाहत
) योग्य पति पाऊंगी?
सम्पत्तौ न हृष्येत् विपत्तौ (हृष्येद्विपत्तौ) च न विषीदेत् प्राज्ञ -
द्धमान् सम्पत्तिमें प्रसन्न न हो, और न विपत्तिमें खिन्न हो।
दुर्बलो पुरुषो वेतसी वृत्तिम् आश्रयेत् (वृत्तिमाश्रयेत्)—दुर्बल पुरु
ाईमें वेतके व्यवहारका आश्रय ले (अर्थात् नम्र होवे या झुके)।
न्यायशास्त्र शिक्षेवहि इतीच्छामि (शिक्षेवहीतीच्छामि)—मैं
हता हूं कि हम दोनों न्यायशास्त्र पढ़ें।
अर्थात् मा नदापि अ (म) वधीरेत् अतिथीनां नानी आगत
...

अन्तसे अनुनासिकको सिवा कोई व्यञ्जन अपने वर्गके अनुनासिकमें विक से बदला जाता है।

(क) तत्+मात्रम्=तन्मात्रम् (केवल वह), चित्+मयम् चिन्मयम् (ज्ञानमय), वाक्+मयम्=वाङ्मयम् (शास्त्र),—म और मय प्रत्यय हैं। पदके अन्तका अनुनासिकको सिवा कोई व्य नित्य अपने वर्गके अनुनासिकमें बदल जाता है—यदि उसके बाद प्र सम्बन्धी अनुनासिक हो। जैसे—तत्+मरणम्=तन्मरणम् वा तद्मर परन्तु तत्+मात्रम्=तन्मात्रम्, चित्+मयम्=चिन्मयम्, वाक्+म वाङ्मयम्।

अदस् के रूप इस प्रकार बनते हैं —

पु तथा स्त्रीलिङ्गके एकवचनमें असौ। इतर रूप बनानेके लिये इ अद शब्द समझना चाहिये, जो सर्वके ऐसा चलता है। द्को म् है, और उसके आगेवाले स्वरको, यदि वह ह्रस्व हो, उ होता है, यदि दीर्घ हो तो ऊ होता है। पुलिङ्गमें द्वितीयाको छोड़ और सब विभक्ति के बहुवचनमें ऊ के जगह ई होता है। पुलिङ्गके तृतीयाके एकवच सुके बादके स्वरको उ होता है, ऊ नहीं।

४। अमी अश्वाः, अमी इषा —अमीके अन्तका ई प्रगृह्य, अर्थात् यह अग्रिम स्वरके साथ नहीं मिलता।

धिङ् मूर्ख।
नाम्यगतिर्मनोरथानाम्।
स्वागत देवि।
नेत्रेण काणः। कर्णेन बधिरः। पादेन खञ्जः।
गोत्रेण कौशिकोऽसि।
चिरं जीव। अनुगृहीतो देवादेशः।
अमी अश्वाद्दूरं धावन्ति।

॰ इसमें ये सब जाती हैं। ऐसी कोई जगह नहीं जहां वे नहीं जातीं।

मलीमसां पद्धतिं कदापि नावलम्बेमहि ।

अलमनेनाप्रस्तुतेन । प्रस्तुतमेवोपक्रमे ।

यद्यधर्मेऽपि प्रवर्तेथा अधमो भवेत् ।

वयस्य ! चिरस्याकाङ्क्षितादागमनात् ।

मध्यासौ नाम युष्माकमयं परम उत्सवः ।

[1]वत्से ! इमे अपि प्रदेये । न युक्तमनयोस्तु गन्तुम् ।

इतो यत् सखा क्व नु खलु भवेत् ।

नाप्या वृत्तिं समाचरेत् ।

अथ पुनरसौ दशरथ सूनुं रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति ।

न सुहृदमर्थकृच्छ्रेषु न च धर्मं परित्यजेत् ।

शाधयेत् प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनम् ।

सर्वतो जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम् ।

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।

तुमको अपने गुरुकी आज्ञा करनी चाहियें ।

बुरे कामोंसे दूर रहो ।

तुमको कहना चाहिये कि फिर क्या हुआ ।

अच्छा होता यदि तुम झूठ न कहते ।

वे प्रसिद्ध चोर पकड़े गये हैं ।

सहायशब्द ।

गति (स्त्री)—स्थानका अभाव	अर्थकृच्छ्र (पु, न तत्पु०, अर्थ पु + कृच्छ्र, पु, न —कष्ट)—धनका कष्ट
अधर्म (अधर्म) पु —बुरा काम	आदेश (आदेश) पु —आज्ञा
अमृत (अमृतम्) न (अ+मृत= मृ+त)—अमृत	

१। अब शकुन्तला अपने पतिके घरकी तरफ सखियोंको भी भेजनेके लिये प्रार्थना करती है तब उसे बाबा कण्व मुनि समझा रहे हैं।

आरम्भ (आरम्भ) पु —कार्य
ईश्वरेच्छा (स्त्री)—ईश्वरकी इच्छा (तत्पु०)
उत्सव (उत्सव) पु —उत्सव
उपकार (उपकार) पु —उपकार
कर्ण (कर्ण) पु —कान ।
कलह (कलह) पु —झगड़ा
गोत्र (गोत्रम्) न —गोत्र
चोर (चोर) पु —चोर
जय (जय) पु —जय
दुर्जन (दुर्जन) पु —(तत्पु० [1]प्रादिस०) दुर् उपसर्ग बुरा)—बुरा आदमी
नेत्र (नेत्रम्) न —आंख
न्यायशास्त्र (न्यायशास्त्रम्) न —(तत्पु०, न्याय पु + शास्त्र न) तर्कशास्त्र
पद्धति (स्त्री)—मार्ग
पराजय (पराजय) पु —हार

प्रत्यपकार (प्रत्यपकार) पु प्रति विद् + अपकार (पु)—बुराईके बदलेमें की हुई बुराई, बद
प्रवास (प्रवास) पु —यात्रा
प्राज्ञ (प्राज्ञ) पु —बुद्धिमान्
मनोरथ (मनोरथ) पु —इच्छा (मनोरथानामगति —बहुत्र जिसमें इच्छायें न आ हों)
मूर्ख (मूर्खः) पु —मूढ़
युद्ध (युद्धम्) न —लड़ाई
रामचन्द्र (रामचन्द्र) पु —राम
वर (वर) पु —पति
विपत्ति (स्त्री)—आपद
विष (विषम्) न —विष, जहर
वृत्ति (स्त्री)—चालचलन
सखी (स्त्री)—सहेली
सङ्ग्राम (सङ्ग्राम) पु —युद्ध
सम्पत्ति (स्त्री)—सम्पद् ।

विशेषण ।

अदम् (सर्वना)- वह
अनुरूप—योग्य

अनुष्ठित (अनु + स्थित, स्था + —किया हुआ

१ । प्र, परा इत्यादि उपसर्गोंमें प्रथम प्र है इसलिये ये प्रादि कहाते हैं । कर्म समासमें प्रथमपद यदि प्रादिमेंका कोई हो तो वह प्रादिसमास कहाता है । दुरी एवं वा इत्यादी असम्भ दुर्जन ।

अप्रस्तुत—अप्रस्तुत
काण—काना
लग्न—लगड़ा
गृहीत—(ग्रह्+त) पकड़ा हुआ
दुर्बल—कमज़ोर
निष्फल (बहु० निस्+फल न (निर्गत फल यस्मात् तत्)— विफल
ग्राम्य—ठौवा
प्रदेय (प्र+दा+य)—विवाहमें दी जानेवाली

प्रस्तुत (प्र+स्तु+त) प्रकृत
बधिर—बहिरा
मलीमस (स्त्री —मलीमसा)— मलिन
युक्त—(युज्+त) योग्य
वैतसी (वेतसका) बेतकी
व्यवसित+(वि+ अव+सो+त) —निश्चित
शूर—शक्तिमान्
शोभन—अच्छा (शोभन भवेत्— अच्छा होता)

धातु।

अनु+इष् [इच्छ्] (अन्विच्छति) (तु पर)—चाहना
अव+धीर् (अवधीरयति चु, पर) —अनादर करना
अवलम्ब् (अवलम्बते—भ्वा आ) —आश्रय लेना, स्वीकार करना
आ+दृ [द्रिय्] (आद्रियते) (दि आ)—आदर करना
आ+श्रि (आश्रयति—ते, भ्वा उ) —आसरा लेना

उप+क्रम्—(उपक्रमते—भ्वा, आ) —आरम्भ करना
जीव् (जीवति, भ्वा पर)— जीना
नि+वृत् (निवर्तते, भ्वा आ)— लौटना
परि+त्यज् (परित्यजति—भ्वा पर) —छोड़ना
प्र+ज्वल् (प्रज्वलति—भ्वा पर) —जलाना

१। स्यति—दिवादिगणके ओकारान्त धातुओंका ओ विकरण य के पहिले लुप्त हो जाता है, जसे—सो—स्यति, दो—द्यति।

मुह् (मुह्यति) (दि पर)—मूर्छित होना

मृ [म्रियू] (म्रियते) (दि आ)—मरना

लभ् (लभते) (भ्वा आ)—पाना

[1]वि + रम् (विरमति—भ्वा पर)—विराम करना

वि + सद् [सीद] (विषीदति) (भ्वा पर)—खिन्न होना [शोक

शिक्ष् (शिक्षते) (भ्वा आ)—

सम् + आ + चर् (समाचरति—भ्वा पर)—करना

हृष् (हृष्यति) (दि पर)—प्रसन्न होना

अव्यय।

हला—स्त्रियोंके सम्बोधनमें प्रयोग किया जाता है

अपि नाम १ क्या, जैसा मैं चाहता हूं (इच्छा दिखाता है) २, हो सकता है (सम्भव दिखता है)

कृते—के लिये

क्व—कहां

क्वचित्—कहीं

च—और

झटिति—शीघ्र

नु—१, प्रश्नमें आता है, २ आ दिखाता है

पुनर् १ फिर, २ परन्तु, ३ आ भूषाके लिये प्रयोग किया जाता है

वा—अथवा

सर्वत —(सर्व + तस् पञ्चमीके अर्थमें)—सब तरफसे

स्वागतम्—स्वागत (सु = अच्छा, आगत, आ + गम् + त

१। रम्—भ्वा आ है, पर जब इसके पहिले वि, आ परि, उप आते हैं तो परस्मै पद भी आता है।

पाठ १६।

लङ् लकार या अनद्यतनभूत, अस्मद् और युष्मद्।

अयम् अहम् आगतोऽस्मि = अयमहमागतोऽस्मि—यह मैं आया।

इदं नः गृहम् = इदं नो गृहम् —यह हमारा घर है।

तस्मै ते नम ईश्वराय—उस तुम परमेश्वरको प्रणाम।

इमे वयम् अ (स) योध्यां यामः —ये हमलोग अयोध्या पहुँचे।

शिवः ते मे अपि शिवं यच्छतात् = शिवस्ते मेऽपि शिवं यच्छतात्—शिव तुम्हें और हमको सुख दे।

ईशः त्वा अवतु मा अपि इह = ईशस्त्वावतु मापीह—यहाँ ईश्वर तुमको बचावे और हमको भी।

सर्वं मामनु ते—तुम्हारा सब हमारे पीछे है (अनुके योगमें द्वितीया होती है।)

अनु हरिं सुराः —देव लोग हरिसे कम हैं।

वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्—पेड़की ओर बिजली चमकती है।

अद्य प्रातर्मम वामं नयनम् अ (स) स्पन्दत अपशकुनं हि तत्—आज प्रातःकाल मेरी बाईं आँख फड़की। निश्चय, यह बुरा शकुन है।

सूर्योऽस्तम् अ (म) गच्छत्—सूर्य अस्तको गया।

अजां वयम् अ (म) नयाम—हमलोग बकरीको साथ ले गये।

संसारमसारम् अ (म) मन्यत—उसने संसारको असार समझा।

बालस्य प्रकाशेन निशीथे दीपा निस्तेजसः अभवन् (निस्तेजसोऽभवन्) लड़केके तेजसे आधीरातको दिये मन्दतेज हुए।

इस पाठमें अस्मद्, युष्मद्, तथा लङ् या अनद्यतन भूतके रूप दिये गये। अस्मद् तथा युष्मद् शब्दके तीनों लिङ्गोंमें समान रूप होते हैं।

	अस्मद् । (पु, स्त्री, न)			युष्मद् । (पु, स्त्री, न)		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	अहम्	आवाम्	वयम्	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि	माम् मा	,,—नौ	अस्मान्-न	त्वाम्-त्वा	,,—वाम्	युष्मान्-व
तृ	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि
च	मह्यम्-मे	,,—नौ	अस्मभ्यम्-न	तुभ्यम्-ते	,, -वाम्	युष्मभ्यम्-व
प	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष	मम मे	आवयो-नौ	अस्माकम्-न	तव-ते	युवयो-वाम्	युष्माकं
स	मयि	आवयो	अस्मासु	त्वयि	युवयो	युष्मासु

(अ) तस्मै ते नम ईश्वराय—यहा ते का प्रयोग किया गया है। क्योंकि तस्मै से यह मालूम होता है कि ईश्वर पहिले कहा जा चुका है।

१ (अ) अस्मद और युष्मद्के वैकल्पिक रूप, जैसे मा, नौ, न, तथा त्वा, वाम्, व, जहाँ अन्वादेश रहता है, नियमसे प्रयोग किये जाते हैं, और अन्यत्र विकल्पसे। जो एक बार कहा जा चुका उसको पुन कहनेको अन्वादेश कहते है।

(ब) हरिस्त्वा मां च रक्षतु—यहा त्वा तथा मा का प्रयोग नहीं हो सकता, क्योंकि वे च से जोड़े गये है—

(स) अस्मद् और युष्मद्के वैकल्पिक रूप वाक्यके आरम्भमें प्रयोग नहीं किये जाते, और न च, वा, एव से जोड़े जानेपर।

अनेन व्याकरण पठितमेन काव्यमुपदिश—इसने व्याकरण पढा, इसको काव्य पढाओ।

२। इसी प्रकार एतद् के एनम् इत्यादि वैकल्पिक रूप अन्वादेश में प्रयोग किये जाते है।

लङ् लकार।

	भू—भ्वा पर।			वृत्—भ्वा आ		
	ए व।	द्वि व।	ब व।	ए व।	द्वि व।	ब व।
पु	अभवत्	अभवताम्	अभवन्	अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त
पु	अभवः	अभवतम्	अभवत	अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्
पु	अभवम्	अभवाव	अभवाम	अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि

	पुष्—दि पर।			मृ—दि आ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
पु	अपुष्यत्	अपुष्यताम्	अपुष्यन्	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त

इन रूपोंको देखनेपर यह मालूम होगा कि धातुके पहिले अ (आगम) लगा हुआ है।

	इष्—तु पर।			ऋ (ऋच्छ्) भ्वा पर।			
उ पु	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम इ०	आर्च्छम्	आर्च्छाव	आर्च्छाम इ०	

जिन धातुओंके आरम्भमें स्वर होता है उनके पहिले अ के बदले आ होता है, जिसको आगेके स्वरके साथ वृद्धि आदेश होता है—गुण नहीं। इस प्रकार आ + इ या ई = ऐ, आ + उ या ऊ = औ, आ + ऋ या ॠ = आर्, तथा आ + ऌ = आल्।

लङ् लकारके प्रत्यय ये हैं —

	(परस्मै)			(आत्मने)		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	त्	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
म पु	स्	तम्	त	थास्	इथाम्	ध्वम्
उ पु	अम्	व	म	इ	वहि	महि

आश्चर्यमिदं नगरम् ।
दाय पाप जेय मनग्र ।
कुमार रामस्य हृते शोकं वोढुं नार्हसि ।
मेघेभ्यो जलबिन्दवोऽपतन् ।
रविकरस्पर्शेन पद्मान्युदमीलन् कुमुदानि च न्यमीलन् ।
शठो कपटव्याप्यैषा सन्ध्या न प्रतिपद्यते ।
अमीभिर्वाकिरैनामप्यन्वयन् ।
दशरथो रामस्य वियोगेन प्राणानत्यजत् ।
चित्रया चन्द्र इव रामः सीतया व्यराजत ।
अधुना १ भवदाज्ञा प्रमाणमित्युक्त्वा व्यरमत् ।
वत्से ! न ते मद्वचनादृते रोदितुमुचितम् ।
प्रधन्नघो तक ।
श्रीमच्छ्योऽस्तु मापोह ।
विरहेषु मदेच्छोऽस्मान् कृपण सर्वदाऽजतु ।
विना मलयमनात् चन्दनं न प्ररोहति ।
एष प्रयच्छ मे कान्ता गतिरस्मास्त्वया हृता ।

काव्य कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी ।
पठति परमाणौ च पदार्थत्व प्रतिष्ठितम् ॥
पादपानां भयं वातात् पद्मानां शिशिराद् भयम् ।
पर्वतानां भयं वज्रात् साधूनां दुर्जनाद् भयम् ॥

सज्जनोंके शब्द कभी नहीं बदलते (चल्) ।
मनुष्यको आपत्तिमें भी कर्तव्य न छोड़ना चाहिये (अर्ह् का प्रयोग करो) ।

---

१ भवदाज्ञा प्रमाणम् — [illegible]

पावोंसे हुए उत्पन्न हुए (उत्+भू)।
गुरुको प्रणाम।
क्या ऐसा होगा कि (अपि नाम) स गङ्गामें नहाए!

शब्दार्थ।

...ा (अजका स्त्री) बकरी
...गुण (अवगुणम्) न—बुरा
गुण
...ोधा (स्त्री)—अयोध्या
...ल (ईश) पु—प्रभु
...न्ता (स्त्री)—चिन्ता
...ल (काल) पु—समय
...ुम्भ (कुम्भम्) न—हाथियोंका
[illegible]
...ण (कृष्णः) पु—कृष्ण
...ति (स्त्री)—गमन
...हा (पु) (यह सर्वदा न प मे
आता है)—घर
...ाम (ग्राम) पु—गाँव
...ङ्गा (स्त्री)—एक नदी
...क (तर्क) पु—तर्क
दीव (दीप) पु—दिया
निसीह (निशीथ) पु—आधीरात
...त्थत्त (परार्थत्वम्) न (परार्थ
ए+त्व—भाववाचक प्रत्यय)
परार्थता धर्म
पद्म (पद्मम्) न—कमल

परमाणु पु—(कर्मधा० परम—
बड़ा, + अणु पु कण)
सबसे छोटा कण
पव्वत (पर्वत) पु—पहाड़
पायव (पादप) पु सम्, पाद पु०
पैर + प (पा—पीना) वह
जो पैरसे पानी पीता है, पेड़
(पादैः पिबतीति)।
पयास (प्रकाश) पु—प्रकाश
पमाण (प्रमाणम्) न—यथार्थ
ज्ञानका कारण
बिन्दु पु—बूंद
मङ्गल (मङ्गलम्) न—शुभ
मलय (मलय) पु—एक पहाड़का
नाम
मेघ (मेघ) पु—मेह
वज्ज (वज्रम्) न—इन्द्रका वज्र
वक्क (वाक्यम्) न—वाक्य
वात (वात) पु—हवा
विज्जु (स्त्री)—बिजली
विओग (वियोग) पु—विरह
सिव (शिव) पु—महादेव

शिव (शिवम्) न —कल्याण
शिशिर (शिशिर -रम्) पु, न —ठंढा
श्रीश (श्रीश) पु (तत्पु०, श्री—स्त्री धनकी देवता, + ईश—पु लक्ष्मीका पति, विष्णु
सन्ना (स्त्री)—चैतन्य
संसार (संसार) पुं —संसार
सुर (सुर) पु —देव
सूर्य (सूर्य) पु —सूर्य
हंस (हंस) पु —हंस

विशेषण।

अशेष (बहु०, नास्ति शेषो यस्य)—जिसमें शेष नहीं ; सब
असार (बहु०, अ-नहीं + सार—पु तत्त्व) जिसमें कोई तत्त्व नहीं
अस्मद् (सर्वना)—हम
आढ्य—श्रीमान्
उचित—योग्य
कालिदासाद्य (बहु०, कालिदास—पु + आद्य विशे० = प्रथम)कालिदाससे प्रारम्भ कर
कार्य (क्रिका कृत्यकृदन्त)—नष्ट करने योग्य
जेय (जिका कृत्यकृ) जीतने योग्य
तुच्छ
निस्तेजस् (बहु०, निस् + तेजस् न) जिससे तेज निकल गया,
प्रतिष्ठित (प्रति + स्थित—स्था भूत कृ) स्थिर
प्रसन्न (प्र + सद् [बैठ्] ऋा प० का भू कृ)—शुद्ध, निर्मल, निर्दोष
प्राप्त (प्र + आप् + त) पहुँचा
युष्मद् (सर्वना)—तुम
वाम—बाँया
संवेद्य (सम् + विद् + य)—जो ठीक जाना जाय
[1]हृता (हृत (हृ + त) का स्त्री —ले जाई गयी

धातु।

अर्ह् (अर्हति—भ्वा पर)—योग्य होना (त्वमर्हसि वोढुम् = तुमको उठाना योग्य है , तुम उठाना चाहिये)

१। कृत—कृता , धनवत् धनवती—भूत कृदन्तको आ जोड़नेसे स्त्रीलिङ्ग बनता तत्पु समास होनेवाले विशेषणोंका स्त्री इसे जोड़नेसे बनता है।

व्र् (व्रवति—भ्वा पर)—बधाना
र्+मील् (उन्मीलति—भ्वा पर)
—खिलना, फूलना
ा (यच्छ्) (यच्छति) (भ्वा पर)
—देना
न+मील् (निमीलति—भ्वा पर)
—बन्द होना, मुकुलित होना
ति+पद् (प्रतिपद्यते—दि आ)
—पाना
+दा (यच्छ्) (भ्वा पर)
—देना

प्र+रुह् (प्ररोहति—भ्वा पर)
—उगना
मन् (मन्यते—दि आ)—सोचना
वि+द्युत् (विद्योतते—भ्वा आ)
—चमकना
वि+राज् (विराजति—ते—भ्वा
उभ)—चमकना
सान्त्व् (सान्त्वयति—चु पर)—शान्त
करना
स्पन्द् (स्पन्दते—भ्वा आ)—
फड़कना

अव्यय।

ु (यह द्वि वि के साथ आता है)
इ—यथा
इसके अर्थ हैं—१ सदृशता,
२ हीनता, ३ सामीप्य,
४ व्यापकता
नातृ—और कहीं
पि—सम्बोधनमें आता है
ाम् (गत्यर्थक धातुओंके साथ आता
है)—अस्त गम्—अस्त होना
व—तरह (सदृशता दिखलता है

उपमान तथा उपमेय एक
विभक्तिमें आते हैं)
उक्त्वा (वच्+क्त्वा)—कहकर
रोदितुम् (रुद्+तुम्)—रोनेके
लिये
विना—बिना (यह द्वि, तृ, या प
के साथ प्रयोग किया जाता है)
वोढुम् (वह्+तुम्)—उठानेके लिं
सर्वदा—सर्वकाल

पाठ १७।

ऋकारान्त शब्द।

ऋणकर्ता पिता शत्रुः—ऋण करनेवाला पिता शत्रु है।

पितरं मातरं च पूजय—पिता और माताकी पूजा करो।

पितृभ्यः स्वधा—पितरोंको प्रदान।

मातुः नि (तुर्नि) लीयते कृष्णः—कृष्ण मातासे छिपता है।

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः—ऋषिलोग मन्त्रोंके देखनेवाले हैं।

जलं स्रष्टुः आ (ष्टुरा) द्या सृष्टिः—जल सृष्टिकर्ताकी पहिली सृष्टि है।

सीता भर्त्रा लक्ष्मणेन च सार्धं वनं गता—सीता पति और लक्ष्मणके साथ वनको गई।

तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः—भाई, इस तत्त्वको सोचो।

रामः स्वमातॄः प्रणमत्—रामने अपनी माताओंको प्रणाम किया।

इस पाठमें ऋकारान्त पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके रूप दिये गये हैं।

कर्तृ—पुं।

	एक व।	द्वि व।	ब व।
प्र	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
द्वि	कर्तारम्	,,	कर्तॄन्
तृ	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च	कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः
पं	कर्तुः	,,	,,
ष	,,	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
स	कर्तरि	,,	कर्तृषु
सं	कर्तः	कर्तारौ	कर्तारः

कर्त्री—स्त्री ।

यह नदीके समान चलता है । ऋकारान्त विशेषणोंका स्त्रीलिङ्ग ऋ में ई को जोड़नेसे बनता है ।

	पितृ—पु ।			मातृ—स्त्री ।		
	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	पिता	पितरौ	पितरः	माता	मातरौ	मातरः
द्वि	पितरम्	,,	पितॄन्	मातरम्	,,	मातॄः
तृ	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च	पित्रे	,,	पितृभ्यः	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
प	पितुः	,,	,,	मातुः	,,	,,
ष	,,	पित्रोः	पितॄणाम्	,,	मात्रोः	मातॄणाम्
स	पितरि	,,	पितृषु	मातरि	,,	मातृषु
सं	पितः	पितरौ	पितरः	मातः	मातरौ	मातरः

इन रूपोंके विषयमें अधोलिखित बातें ध्यानमें रक्खो —

१ । पहिले पांच रूपोंमें ऋको आर् होता है, और प्रथमाके एक वचनमें स् (प्रत्यय) के साथ आर्का र् निकल जाता है ।

२ । सम्बन्धबोधक पितृ, मातृ इत्यादि शब्दोंमें, तथा नृ शब्दमें ऋको अर् होता है, आर् नहीं (नृशब्दके रूपोंको देखो) ।

स्वसृ—स्त्री ।

स्वसा स्वसारौ स्वसारः

नप्तृ—पु ।

नप्ता नप्तारौ नप्तारः

भर्तृ—पु ।

भर्ता भर्तारौ भर्तारः

इत्यादि ।

३। स्वसृ—स्त्री (बहिन), नप्तृ—पु (पोता), भर्तृ—पु (
इन शब्दोंमें ऋ को आर् होता है, यद्यपि वे सम्बन्धबोधक हैं।

नृ—पु।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	ना	नरौ	नरः
द्वि	नरम्	,,	नॄन्
तृ	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
च	न्रे	,,	नृभ्यः
प	नुः	,,	,,
ष	,,	न्रोः	नृणाम् नॄणाम्
स	नरि	,,	नृषु
स	न	नरौ	नरः

४। नृके रूप पितृके समान होते हैं। इसके ष ब व में नृणाम्, नॄणाम् रूप होते हैं।

५। पुनरिह, कर्त्तरिह—कर्त्तृ, पितृ इत्यादि रूपोंको सन्धिके लि कर्त्तर्, पितर् इत्यादि रेफान्त समझना चाहिये।

ज्येष्ठो भ्राता पिता मम।
भ्रातुः पुत्रो भ्रातृव्यो भ्रात्रीयो वा।
स्वसुः पुत्रः स्वस्रीयः स्वस्रेयो वा।
वधूर्देवरि ननान्दरि च स्निह्येत्।
भर्त्तुः शासने तिष्ठ।
नृपतीनामुपदेष्टारो विरलाः।
मारमयति पुत्रं मातेव रक्षति।
अत्र वने रघुपतिस्तिष्ठति स च निरपत्यावयोरुपकर्त्ता च
यासरमानिकायस्य।

राज्ञा	राजभ्याम्	राजभि	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि
राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्य	नाम्ने	,,	नामभ्य
राज्ञ	,,	,,	नाम्न	,,	,,
,,	राज्ञो	राज्ञाम्	,,	नाम्नो	नाम्नाम्
राज्ञि—राजनि	,,	राजसु	नाम्नि-नामनि	,,	नामसु
राजन	राजानो	राजान	नाम नामन्	नाम्नी नामनी	नामानि

सीमन्—स्त्री ।

ए व	द्वि व	ब व
सीमा	सीमानो	सीमान
सीमानम्	,,	सीम्न
सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभि
सीम्ने	,,	सीमभ्य
सीम्न	,,	,,
,,	सीम्नो	सीम्नाम्
सीम्नि-सीमनि	,,	सीमसु
सीमन्	सीमानो	सीमान

ब्रह्मन्—पु ।

ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
ब्रह्मा	ब्रह्माणो	ब्रह्माण
ब्रह्माणम्	,,	ब्रह्मण
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभि
ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्य
ब्रह्मण	,,	,,
,,	ब्रह्मणो	ब्रह्मणाम्
ब्रह्मणि	ब्रह्मणो	ब्रह्मसु
ब्रह्मन्	ब्रह्माणो	ब्रह्माण

यज्वन्—पु० ।

ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
यज्वा	यज्वानो	यज्वान
यज्वानम्	,,	यज्वन
यज्वना	यज्वभ्याम्	यज्वभि

शर्मन्—न० ।

ए व	द्वि व	ब व
शर्म	शर्मणी	शर्माणि
,,	,,	,,
शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभि

मूर्धन्—पु

	ए व	द्वि. व	ब व
द्वि	मूर्धानम्	मूर्धानो	मूर्ध

अपि कुशली भवान्—क्या आप प्रसन्न हैं?

वाच कर्म अ(र्ग)तिरिक्तम्—काम बातसे अधिक बड़ा है।

के ऽपि शशिन कलङ्क वारङ्क इति शङ्कन्ते—कोई लोग शङ्का करते हैं कि चन्द्रमाका कलङ्क मृग है।

आत्मा त्व गिरिजापते!—हे पार्वतीके पति, शिव, तुम (मेरे) आत्मा हो।

आत्मा नदी स यमपुण्यतीर्था—आत्मा एक नदी है, जिसमें (इन्द्रियोंका दाय) रूपी पवित्र तीर्थ (तट) है।

ऋटुरषाणा मूर्धा—ऋ, टवर्ग, र, तथा ष का मूर्धा स्थान है।

तव वचन मे मर्माणि निकृन्तति—तुम्हारी बात मेरे मर्म काटती है।

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तु—गुण प्रेममें रहते हैं, वस्तु में नहीं।

सत्यमतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्त एते वाजिन—सचमुच ये घोड़े सूर्य तथा इन्द्रके घोड़ोंको भी लाघ कर (उनसे बढ़कर) हैं।

यद्भावि तद्भवति नात्र विचारणीयम्—जो होनहार है वह होता है, इसमें कुछ विचार करने योग्य नहीं है।

इस पाठमें नकारान्त शब्दोंके रूप दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

राजन्—पु।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	राजा	राजानौ	राजान
	राजानम्	,,	राज्ञ

नामन्—न।

ए व	द्वि व	ब व
नाम	नाम्नी—नामनी	ना
,,	,,	,,

राज्ञः--इसमें उपान्त्य अका लोप हुआ है। राजन्+अस्=राज्+न्+अस्=राज्+ञ्+अस्=राज्ञ्+अस्=राज्ञः । ब्रह्मणः और यत्वनः में उपान्त्य अका लोप नहीं हुआ है। इससे यह नियम निकलता है—

२। यदि अन्तके अन् के पहिले मकारान्त वा वकारान्त संयोग हो तो उसके उपान्त्य अका लोप नहीं होता। यदि उस अन्के पहिले ऐसा संयोग न हो तो उसके उपान्त्य अका लोप नित्य होता है, और सप्तमीके एकवचनमें तथा नपुंसकके प्रथमा और द्वितीयाके द्विवचनमें विकल्पसे लोप होता है।

राजभ्याम्, राजसु, यज्वभ्याम्, यज्वसु, नाम, आदि—

(क) तीसरे वर्गमें पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके तृतीयाके द्विवचनसे लेकर व्यञ्जनादि प्रत्यय, तथा नपुंसक लिङ्गके प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनके प्रत्यय आते हैं। इन प्रत्ययोंके पूर्व अङ्गको पद कहते हैं। ऊपर दिये हुए पदोंको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि पदके अन्तके न् का लोप हुआ है।

३। राजभ्याम्, राजभिः, राजसु, शशिभ्याम्, शशिषु, शशी, इत्यादि—

इन्नन्त शब्दोंके प्रथमाके एकवचनमें अन्त के न्का लोप होता है और उसके पूर्वके स्वरको दीर्घ होता है। पद के अन्तिम न् का लोप होता है।

राजपुत्र, राजपुरुष, मूर्धस्थानम्—इन समासोंको देखो। इनके देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि नकारान्त शब्दोंके न्का लोप होता है यदि वे समासके उत्तरपद न हों।

राजन्का स्त्री रूप राज्ञी, और भाविन् का भाविनी है। इस प्रकार नकारान्त शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग ई के जोड़ने से बनता है। जिस अङ्गको यह प्रत्यय लगाया जाता है, वह भ अङ्ग कहाता है।

	शशिन्—पुं ।			भाविन्—न ।	
	ए. व	द्वि. व	ब. व	ए. व ।	द्वि. व ।
प्र	शशी	शशिनौ	शशिनः	भावि	भाविनी
द्वि	शशिनम्	,,	,,	,,	,,
तृ	शशिना	शशिभ्याम्	शशिभिः	भाविना	भाविभ्याम्
च	शशिने	,,	शशिभ्यः	भाविने	,,
पं	शशिनः	,,	,,	भाविनः	,,
ष	,,	शशिनोः	शशिनाम्	,,	भाविनोः
स	शशिनि	,,	शशिषु	भाविनि	,,
सं	शशिन्	शशिनौ	शशिनः	भावि भाविन्	भाविनी

ऊपर दिये हुए रूपोंसे यह मालूम पड़ेगा कि प्रत्यय तीन विभक्त है।

राजा, राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ, सीमा, सीमानौ, सीमानम्, सीमानौ, तथा नामानि को मिलाकर देखो। इन स्थलोंमें परिवर्तन हुआ है और ये अन्य रूपोंसे बिलकुल भिन्न है।

(अ) पहिले वर्गमें पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके पहिले पाँच प्रत्यय, नपुं के प्रथमा तथा द्वितीयाके बहुवचनके प्रत्यय आते हैं। इन्हें सर्वनामस्थान कहते हैं।

१। सर्वनामस्थानके आगे रहनेपर अन्में समाप्त होनेवाले उपान्त्य अको दीर्घ होता है।

राजा, राजानौ, राज्ञः इत्यादि, तथा नामानि को मिलाकर देखो।

(ब) दूसरे वर्गमें पुं तथा स्त्री के द्वितीयाके बहुवचनसे स्वरादि प्रत्यय, तथा नपुं के प्रथमा तथा द्वितीयाके द्विवचनके प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययोंके आगे रहनेपर पूर्वको—भ—कहते हैं।

राज्ञः, ब्रह्मणः, तथा यज्वनः, राज्ञि राजनि, नाम्नी—नाम मिलाकर देखो।

राम् —इसमें उपान्त्य अका लोप हुआ है। राजन्+अम्=राज्न्+अस्=राज्+अ+अस्=राज्+अस्=राज्ञ । ब्रह्मण और ...न में उपान्त्य अका लोप नहीं हुआ है। इससे यह नियम निकलता

—

२। यदि अन्तके अन् के पहिले मकारान्त वा वकारान्त संयोग हो भी उपान्त्य अका लोप नहीं होता। यदि उस अन्के पहिले ऐसा योग न हो तो भी उपान्त्य अका लोप नित्य होता है, और सप्तमीके ...कवचनमें तथा नपुं के प्रथमा और द्वितीयाके द्विवचनमें विकल्पसे ...प होता है।

राजभ्याम्, राजसु, यज्वभ्याम्, यज्वसु, नाम, आदि—

(क) तीसरे वर्गमें पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके तृतीयाके द्विवचनसे लेकर ...व्यञ्जनादि प्रत्यय, तथा नपुंसक लिङ्गके प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनके ...त्यय आते हैं। इन प्रत्ययोंके पूर्व अङ्गको पद कहते हैं। ऊपर दिये हुए ...पोंको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि पदके अन्तके न् का लोप हुआ है।

३। राजभ्याम्, राजभि, राजसु, अग्निभ्याम्, अग्निषु, अग्नी, इत्यादि—

...न्नन्त शब्दोंके प्रथमाके एकवचनमें अन्त के न् का लोप होता है ...और उससे पूर्वके स्वरको दीर्घ होता है। पद के अन्तिम न् का लोप होता है।

राजपुत्र, राजपुरुष, मूर्धस्थानम्—इन समासोंको देखो। इनको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि नकारान्त शब्दोंके न्का लोप होता है यदि वे समासके उत्तरपद न हों।

राजन्का स्त्री रूप राज्ञी, और भाविन् का भाविनी है। इस प्रकार ...नकारान्त शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग ई के जोड़ने से बनता है। जिस अङ्गको यह प्रत्यय लगाया जाता है, वह भ अङ्ग कहाता है।

---

[1] दासोऽस्मि सर्वं सहे।
कुमार! तातस्त्वामाह्वयति।
आर्य! कथयामि ते भूतार्थम्।
आयुष्मान् भव। सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रं प्रतिपद्यस्व।
इन्द्रशर्मा नाम ब्राह्मणोऽस्माकं सहाध्यायि मित्रम्।
पक्षपातिनो यूयमनयोः।
विपथिषु कथापदोऽस्त गता।
वर्णेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्राणिभ्यो धारिणो वराः।
[2] किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः।
अशुचि यदि मा तु मनाषे किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा।
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रजन्मनः।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः॥
[3] सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥
कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥
माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥

१। यह राम की उक्ति है। क्योंकि उसने बहुत दुःख सहे।
२। इव से अर्थ अनिश्चित होता है, किमिव—कौनसी वस्तु?
३। यह अश्वत्थामाके प्रति कर्णकी उक्ति है। यो वा को वा—कोइ चाहे मारका।

क्या यह प्रसवण पर्वत है? ('अपि' का प्रयोग करो)
ऋषि लोग हिमालयकी चोटीपर रहते हैं।
तुमको सर्वदा सच बोलना चाहिये। सत्यमार्गसे कभी न हटो (चल्)
जो लोग अच्छी तरह (साधु) काम नहीं करते, दुःखी होते हैं।
उसने बहुत दुःख सहे।
बुद्धिमान् लोगोंको कुछ कठिन नहीं है।
मैं चाहे जो हूं, दरिद्र वा नीच, गुण हमारा बल है।
('यो वा को वा' का प्रयोग करो)
हम लोग उसको प्रणाम करें, वह तुम्हारा गुरु है और हमारा भी।

संज्ञाशब्द।

अतिभार (अतिभार) पु—बड़ा बोझ	दैव (दैवम्) न—भाग्य
अर्थ (अर्थ) पु—वस्तु	नामन् (न)—नाम
अवताडन (अवताडनम्) न—पीटना	पौरुष (पौरुषम्) न—बल
आकृति (स्त्री)—सुन्दरता	प्रेमन् (पु, न)—प्रेम
आत्मन् (पु)—आत्मा	ब्रह्मन् (पु) ब्रह्मा, (न) परब्रह्म
कपालदामन (न तत्पु०, कपाल—पु खोपड़ी, दामन्—न माला)—खोपड़ियोंकी माला।	मण्डन (मण्डनम्) न—भूषण
कर्मन (न)—कार्य।	मर्मन (न)—मर्म
कलङ्क (कलङ्क) पु दाग, धब्बा	मूर्धन्—(पु)—सिर
गिरिजा (स्त्री)—पार्वती	यज्वन् (पु)—यज्ञ करनेवाला
चक्रवर्तिन् (पु)—सार्वभौम	राजन (पु)—राजा
चरण (चरण) पु—पैर	वर्मन् (न)—१ कवच, २ क्षत्रियों-के नामके आगे आता है
जन्मन् (न)—जन्म	वस्तु (न)—वस्तु
तात (तात) पु पिता	वाजिन् (पु)—घोड़ा
	विदेश (विदेश) पु—परदेश

वैश्य (वैश्य) पु —वैश्य
शर्मन् (न) ब्राह्मणोंके नामके आगे आता है
शशिन् (पु)—चन्द्र
शूद्र (शूद्र) पु —शूद्र
संयम (संयम) पु —इन्द्रियोंका जय
सारङ्ग (सारङ्ग) पु —हरिण
सीमन् (स्त्री.)—सीमा
सूत (सूत) पुं —सारथि
स्थिति (स्त्री)—अवस्था
स्वामिन् (पु)—प्रभु
हरि (पु) १ इन्द्रका घोड़ा, २ विष्णु
हरित् (पु)—सूर्यका घोड़ा

विशेषण ।

अज—मूर्ख
अतिरिक्त (अति + रिच् + त)— —अधिक
अप्रियवादिन् (स्त्री अप्रियवादिनी) —कर्कश बोलनेवाला
अशुचि—अपवित्र
आयत्त—अधीन
आयुष्मत्—चिरजीवी
इन्द्रशर्मन्—पु (बहु०, इन्द्र पु —इन्द्र, शर्मन्—न, सुख, यह ब्राह्मणोंके नामके आगे लगाया जाता है)—इन्द्र नाम का ब्राह्मण
कुशलिन्—सुखी
क्षत्रजन्मन्—पु (बहु०, क्षत्र—पु क्षत्रिय जन्मन्—न जन्म) क्षत्रियसे उत्पन्न
ग्रन्थिन्—ग्रन्थोंमें पण्डित
गुप्तदासात्मक (गुप्त=गुप पर [गोपायति] + त रक्षित, दास—पु नौकर, आत्मन् पु आत्मा, क एक प्रत्यय है जो बहु० समासके अन्तमें लगाया जाता है) गुप्त दासरूप
दुरात्मन् (बहु०)—दुष्ट
दूर—दूर
धारिन्—जो वस्तुओंको धारण कर सकता है
नैसर्गिक (स्त्री नैसर्गिकी) स्वाभाविक
पक्षपातिन्—पक्षपाती
पर (सर्वना)—दूसरा
पुण्य—पवित्र

स—(प्र+शंस्+त)—प्रशंसा किया गया
यवादिन्—प्रिय बोलनेवाला
विन्—होनहार
—सब प्राणी
—अच्छा
चारणीय—विचार करने योग्य
भु—व्यापक, सबव्यापी
पयिन्—विषयी

व्यवसायिन्—उद्योगी
समर्थ—शक्तिमान
सविद्य (बहु०, स—सह—साथ, विद्या ज्ञान)—पण्डित
सहाध्यायिन्—साथ पढ़नेवाला
सिद्ध (सिध्+त, स्त्री सिद्धा)—सिद्ध, निश्चित, प्रमाणित
सुरभि—सुगन्ध

धातु।

+ह्वे (आह्वयति) (भ्वा पर)—पुकारना
+कृत् [कृन्त्] (निकृन्तति) (तु पर)—काटना

पा (पाति) (अ पर)—रक्षा करना
शङ्क् (शङ्कते) (भ्वा आ)—शङ्का या सन्देह करना

अव्यय।

तीय (प्रति+इ+य)—लाघ कर, पार कर
व—सच (सम्भावना दिखाता है)
था—वैसा
—समान दिखाता है

यथा—जैसे
यदि—यदि, अगर
सत्यम्—सच
सर्वथा—सब प्रकारसे

पाठ २० ।

कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग ।

देवदत्त पुस्तकं लिखति—देवदत्त पुस्तक लिखता है ।

देवदत्तेन पुस्तकं लिख्यते—देवदत्तसे पुस्तक लिखी जाती है ।

भद्र ! गच्छाम्यधुना—भद्र ! अब मैं जाता हूं

भद्र ! गम्यतेऽधुना मया—भद्र ! अब मुझसे जाया जाता है ।

वत्स ! इहागच्छासने उ (न उ) पविश—प्रिय बालक, यहां आ
आसनपर बैठो ।

वत्स ! इहागम्यताम् आ (सा) सने उ (न उ) पवि
त्वया । प्रिय बालक ! तुमसे यहां आया जाय, आसनपर बैठा जाय

नृपा पण्डितैः सह भाषन्ते—राजा लोग पण्डितोंके साथ बोलते

नृपैः पण्डितैः सह भाष्यते—राजाओंसे पण्डितोंके साथ
जाता है ।

बुधास्तत्त्वमबोधन्त—पण्डितोंने तत्त्व जाना ।

बुधैस्तत्त्वमबुध्यत—पण्डितोंसे तत्त्व जाना गया ।

सज्जना न कदाप्यसत्यं वदन्ति—साधु लोग कभी झूठ नहीं बोल

सज्जनैर्न कदाप्यसत्यमुद्यते—साधु लोगोंसे कभी झूठ नहीं
जाता ।

तूष्णीं तिष्ठतु भवान्—आप चुप बैठें ।

तूष्णीं स्थीयतां भवता—आपसे चुप बैठा जाय ।

वनदेवता नृपाणां कीर्तिं गायन्ति—वनदेवताएं राजाओंका
गाती हैं ।

वनदेवताभिर्नृपाणां कीर्तिर्गीयते—वनदेवताओंसे राजाओंका
गाया जाता है ।

विजयता भवान्—आप जीते।

विजीयता भवता—आपसे जीता जाय।

राजा यश स्तूयताम्—राजाओंसे यशकी स्तुति की जाय।

यद्भवता इ (ते) पततेे तत्सर्व क्रियते मया—जो आपसे चाहा
ता है वह सब मुझसे किया जाता है।

तद्धि (तद्+हि) वनमतीव रमणीयम्—सचमुच वह जगल बहुत
दर है।

इस पाठमें कर्मणि प्रयोग तथा भावे प्रयोगका वर्णन किया गया है।
र्तरि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्त्ताका बोध कराते हैं, कर्त्ताके आगे
ीया जोड़कर कर्त्ताकी पुनरुक्ति करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती।
े लिये कर्त्ता प्रथमान्त रहता है। कर्मणि प्रयोगमें धातके रूप ही
र्म का बोध कराते हैं। कर्मके आगे द्वितीया जोडकर कर्म बतानेकी
ावश्यकता नहीं रहती, इस लिये कर्म प्रथमान्त रहता है। देवदत्तेन
तक लिख्यते—में लिख्यते कर्मणि है अर्थात् कर्मका बोध कराता है।
सलिये कर्म पुस्तक प्रथमामें प्रयोग किया गया। 'लिख्यते' से कर्त्ताका
ध नहीं होता इस लिये कर्त्ता देवदत्त तृतीयामें प्रयोग किया गया है।
वदत्त पुस्तक लिखति—में कर्म अनभिहित है, अर्थात् लिखति इस
मे इसका बोध नहीं होता, जो कर्तरि है इसलिये 'पुस्तक' का द्वितीया-
प्रयोग हुआ।

सकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग होता है, क्योंकि उनको कर्म
ता है, अकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग नहीं होता, क्योंकि उनको
र्म नहीं होता। परन्तु उनका भावे प्रयोग होता है अर्थात् इसमें
तुका रूप क्रियाका बोध कराता है। अहं तिष्ठामि—कर्तरि प्रयोग है
ह स्थीयते मया—भावे प्रयोग है। सकर्मक तथा अकर्मक धातुओंका
र्तरि प्रयोग होता है। भावे प्रयोग प्रायः केवल प्रथम पुरुषके एक वचनमें
योग किया जाता है।

नी—कर्मणि प्रयोगके रूप।

	वर्तमान, लट्।			अनद्यतन भूत, लङ्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि	ब, व
प्र पु	नीयते	नीयेते	नीयन्ते	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म पु	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे	अनीयथाः	अनीयेथाम्	अनीयध
उ पु	नीये	नीयावहे	नीयामहे	अनीये	अनीयावहि	अनीया

	आज्ञार्थ—लोट्।			विध्यर्थ—लिङ्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेर
म पु	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्	नीयेथाः	नीयेयाथाम्	नीयेध
उ पु	नीयै	नीयावहै	नीयामहै	नीयेय	नीयेवहि	नीये

	जि—वर्तमान।			स्तु—आज्ञा।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि. व	ब
प्र पु	जीयते	जीयेते	जीयन्ते	स्तूयताम्	स्तूयेताम्	स्तूय

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके रूप धातुको य लगाकर उसके आगे आ पद प्रत्यय जोड़नेसे बनते हैं। य के पूर्व कोई विकरण नहीं लगता।

कर्मणि तथा भावे प्रयोगमें यके पहिले अधोलिखित परि होते हैं —

जीयते, स्तूयते—

१। अन्तिम इ तथा उ को दीर्घ होता है।

स्थीयते, दीयते, पीयते—

२। कुछ आकारान्त धातुओंके आको ई होता है वे धातु ये हैं स्था, दा, धा, मा, गै, पा (पीना), हा (छोड़ना), तथा सो।

गै—गीयते, सो—सीयते—

३। ए, ऐ, ओ, तथा औकारान्त धातुओंको आकारान्त समझना चाहिये।

कृ—धृ—क्रियते, ध्रियते—

४। ऋकारान्त धातुओंके ऋ को रि होता है।

यज्—इज्यते, वच्—उच्यते, वह्—उह्यते, ग्रह्—गृह्यते, ह्वे—हूयते, ह्वे=ह्व् व् ए=ह् उ ए=ह् उ=हु=हू (वको उ हुआ, अगले स्वरका लोप हुआ और प्रथम नियमानुसार उको दीर्घ हुआ)।

५। कुछ धातुओंके य्, व्, र्, तथा ल्को इ, उ, ऋ, तथा लृ होते हैं इनको सम्प्रसारण कहते हैं।

६। वह्—व अह—उह—सम्प्रसारणके आगे रहनेवाले स्वरका लोप होता है।

७। ग्रस्—ग्रस्यते—कुछ धातुओंके अनुनासिकका लोप होता है, जैसे वन्द्का वन्द्यते होता है।

अर्यते, स्मर्यते—

८। ऋ धातुको तथा संयोगके अन्तमें रहनेवाले ऋको गुण होता है।

तीर्यते, कीर्यते, पूर्यते—

९। जब ॠको गुण वा वृद्धि नहीं होती और वह ओष्ठस्थानीय वर्णके बाद होता है तो उसको इर् तथा उर् होता है। किसी व्यञ्जनके पूर्व रहने पर इर् तथा उर् के उको दीर्घ होता है।

चुर्—चोर्यते, तड्—ताड्यते—

१०। चुरादिगणके धातुओंमें विकरणके पहिले होनेवाले गुण वा वृद्धि आदेश ज्योंकी त्यों रहते हैं।

कारयति=वह कराता है, कार्यते=उससे कराया जाता है।

११। प्रेरणार्थक बनानेके लिये धातुओंके आगे अय लगाया जाता

है। चुरादिगणके धातुओंमें अय के पहिले जो परिवर्तन होते हैं वे ह
प्रेरणार्थकमें भी होते हैं।

मूल धातुओंके समान प्रेरणार्थकमें भी सब लकारोंमें रूप होते हैं।

प्रेरणार्थकके कर्मणि प्रयोग तथा भावे प्रयोगके रूप चु ग के कर्मणि तथा भावे प्रयोगके रूपोंके समान होते हैं।

१२। वाक्+हरि =वाग्हरि वा वाग्घरि, तत्+हितम्=त हितम् वा तद्धितम्—यदि ह्से पूर्व वर्गके प्रथम चार वर्णोंमेंसे कोई हो तो उसको उस वर्गका चतुर्थ वर्ण विकल्पसे होता है।

ईश्वरेण भूयते।
शिवः स्तूयतां शिवाय।
भो! नृपते! किमिति जोषमास्यते।
तेन राज्ञा क्रतुरश्वमेधः प्रारभ्यत।
एष हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।
त्यज्यतां शोकानुबन्धः।
सूर्ये रथ मणिस्तपुणि प्रतिबध्यते।
वत्स लव! संह्रियन्तामस्त्राणि।
सेनापतिराहूयते राज्ञा।
न रत्नगमिष्यति श्रूयते हि तत्।
कुमार! त्वया प्रयतेथा यथा नोपालभ्यसे पितृनाशिष्यसे विध
ँ विक्रीयसे रागेण नापह्रियसे सुखेन।
ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम्।
सा जाया परत्रेति मे चिन्तितम्।
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।
मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ।
सशोक इव कस्मात् त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥
किं पुष्पैः किं फलैस्तस्य करीरस्य दुरात्मनः ।
येन वृद्धिं समासाद्य न कृतः पत्रसंग्रहः ॥
प्रत्यहं क्षयमायाति प्रत्यहं जायते पुनः ।
अद्यापि हतदग्धाया नान्तोऽस्या दृश्यते स्पृशे ॥
काम क्रोध मोह लोभ त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥

उस अधिकारिकी (अधिकारिन्) प्रजाओंमें स्तुति की जाती है।
देखो, पेड़ लताओंसे घेरे जाते हैं (परिवृ)।
हम लोग प्रतिदिन दुःखोंसे जलाये जाते हैं।
लड़कोंसे पिता तथा माताकी सेवा की जानी चाहिये।
पृथ्वी ब्रह्मासे उत्पन्न की गयी है।
अब भी आप चुप क्यों नहीं होते?
जबतक एक भी रोग है, तबतक शरीरको सुख नहीं।
मैं जानता हूं (अव+गम्) कि शोक उससे अभीतक छोड़ा नहीं गया है।

शब्दार्थ

अभिवादन (अभिवादनम्) न—प्रणाम करना
अस्त्र (अस्त्रम्) न—अस्त्र [यज्ञ
अश्वमेध (अश्वमेध) पु—अश्वमेध
आगमन (आगमनम्) न—आना
करीर (करीर) पु—एक कांटेदार पेड़, जिसमें पत्ते नहीं होते
काम (काम) पु—इच्छा
क्रतु (पु)—यज्ञ
क्षय (क्षय) पु—नाश
जीवित (जीवितम्) न—जीवन
तृणु (न)—लाह
पद (पदम्) न—स्थान
प्रकृति (स्त्री)—स्वाभाविक

मरण (मरणम्) न —मरना
मोह (मोह) पु —मूर्छा
रत्न (रत्नम्) पु —रत्न
राग (राग) पु —विषयप्रेम
रिपु (पु)—शत्रु
लव (लव) पु —रामका पुत्र
वनदेवता (स्त्री तत्पु०, वन न + देवता—स्त्री)—वनदेवी
विकृति (स्त्री)—स्वाभाविक स्थितिका परिवर्त्तन, रोगकी दशा
विप्र (विप्र) पु —ब्राह्मण
विषय (विषय) पु —इन्द्रियोंके विष (रूप, रस, गन्ध, शब्द, तथा स्पर्श)
वृद्धि (स्त्री)—बढ़ना
शोकानुबन्ध (शोकानुबन्ध) (पु तत्पु०, शोक—पु + अनुबन्ध —पु —निरन्तर चलना)— शोकका निरन्तर चलना
सहति (स्त्री)—सहार
संग्रह (संग्रह) पु —इकट्ठा करना
सज्जन (सज्जन) पु (सत् ज्ज —साधु पुरुष
सेनापति (पु)—सेनापति

विशेषण।

एक (सर्वनाम)—एक
दग्ध (दह् + त)—निन्द्य
दुर्मनस् बहु०, दुष्ट विकारि मनो यस्य —खिन्न
नरकनिगूढ (नरक—पु + निगूढ नि + *गुह् [गूहति-ते] + त= छिपा हुआ) नरकमें डूबा हुआ
परवत् (स्त्री —परवती)—पराधीन
पृष्ट (प्रच्छ [पृच्छ्] [त पर]+ त—पूछा गया
मूढ (मुह् + त)—मूर्ख
वाच्य—कहने योग्य
विदित (विद् + त)—ज्ञात
विहीन (वि + हा + त)—रहि
शरीरिन्—शरीरधारी
सशोक (बहु०)—शोकपूर्ण
सौम्य—शान्त, यह ब्राह्मण सम्बोधन करनेमें आता क्योंकि वह क्षत्रिय इत्यादि वर्णोंसे अधिक शान्त है।
हतरूप (स्त्री —हतरूपा, बहु हत—(हन् + त) + रूप न निन्दनीय रूपका।

---

* गुह् (भ्वा उ) के उ को गुणकारक स्वरादि प्रत्यय पर रहनेपर दीर्घ होता है

धातु।

+इष् (अन्विष्यति) (दि पर) —खोजना	पच् (पचति—ते) (भ्वा उभ) —पकाना
+हृ (अपहरति) (भ्वा पर) —ले जाना	परि+वृ (कर्म प परिव्रियते)—घेरना
+क्षिप् (आक्षिपति) (तु पर) —छीनना	प्रति+बन्ध् (कर्म प्र प्रतिबध्यते) —रोकना
+या (आयाति—अ पर)—आना	प्र+यत् (प्रयतते) (भ्वा आ)—यत्न करना
(कर्मणि प्र आस्यते) बैठना	भावय (प्रेर भू)—सोचना
+हृ (आह्वयति—भ्वा पर) —पुकारना	मार्ग् (मृग्यति, मृगयते) (दि पर, चु आ)—खोजना
+आ+लभ् (उपालभते) ... पर)—निन्दा करना	लक्ष् (चु पर)—लखना
... धियते)—करना	वच् (कर्म प्र उच्यते)—बोलना
) (भ्वा पर)—गाना	वि+कृष (विकर्षति) (भ्वा पर) —खींचना
) (दि आ)—उत्पन्न होना	स+हृ (संहरति) (भ्वा पर)—बटोरना
(धूयते) (दि आ)—धोना	स्तु (कर्म प्र स्तूयते)—स्तुति करना
+धा (कर्म प्र निधीयते)—रखना	

अव्यय।

...तर्हि—क्यों?	[1]प्रत्यहम् (अव्य प्रति+अहन्—न दिन)—प्रतिदिन
...षम्—चुप	समाधाय (प्रेर सम्+आ+धा+य)—पाकर
...णीम्—चुप	

---

१ प्रत्यह दूसरा रूप है।

पाठ २१।

वर्तमान कृदन्त।

हरिं पश्यन् मुच्यते—हरिको देखता हुआ मुक्त होता है।

अवसरं प्रतीक्षमाणो वर्तते—वह समयकी प्रतीक्षा कर रहा है वाट जोह रहा है।

नन्दाः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य—राक्षसके देखते २ नन्दवशीय पशुओंकी तरह मारे गये। (पश्यतो राक्षसस्य—अनादरषष्ठी है।)

दिनेषु गच्छत्सु सा कान्तिमपुष्यत्—ज्यों २ दिन बीतने लगे कान्तिको बढ़ाने लगी (दिनेषु गच्छत्सु—सतिसप्तमी है)।

पत्तने विद्यमाने ग्रामे रत्नपरीक्षा—नगरके रहनेपर गावमें परीक्षा। (पत्तने विद्यमाने—सतिसप्तमी है)।

एषा देवी सखीभ्यां पर्युपास्यमाना तिष्ठति—यह रानी दो सखियों सेवित होती हुई बैठी है।

अभ्युदयमिच्छद्भिरुद्यमः सर्वथा सेव्यः—उन्नति चाहनेवालोंको प्रकारसे उद्योगका सेवन करना चाहिये।

चिन्तयन्त्यपि खलु नास्य कारणमवगच्छामि—सोचती हुई भी इसका कारण नहीं समझती।

परस्मैपदी धातुओंका वर्तमान कृदन्त रूप इस प्रकार बनता है —

भ्वादि—भू—भवत्, भू+अ=भो+अ=भव, भव+त्=भवत् दिवादि—पुष—पुष्यत्, पुष्+य=पुष्य, पुष्य+त्=पुष्यत्, तुदादि विश्—विशत्, विश+अ=विश, विश+त्=विशत्, चुरादि—चुर् चोरयत्, चुर्+अय=चोर्+अय=चोरय, चोरय+त्=चोरयत्

।दादि—अश्—अत, अश्+अत=अ (वर्तमानके प्र पु मे व व की
।कृति)+अत=अत, अदादि—या—यात, या+अत=या (वर्त
। पु व व की प्रकृति)+अत=यात।

धातुको विकरण लगाओ यदि प्रकृति अकारान्त हो तो त लगाओ,
और यदि वह अकारान्त न हो तो वर्तमानके प्रथमपुरुषके बहुवचनकी
जो प्रकृति होती है उसे अत लगाओ।

आत्मनेपदी धातुओंके वर्तमान कृदन्तके रूप इस प्रकार बनते है —
भ्वादि—वृत्—वर्तमान, वृत+अ=वर्त+अ=वर्त, वर्त+मान
=वर्तमान, भ्वादि—सेव्—सेवमान, सेव+अ=सेव, सेव+मान=
सेवमान, दिवादि—विद्—विद्यमान, विद+य=विद्य, विद्य+मान=
विद्यमान, मृ—म्रियमाण, मृ+अ=म्रिय+अ=म्रिय, म्रिय+मान=
म्रियमाण, चुरादि—आमन्त्—आमन्त्रयमाण, आमन्त्+अय=आमन्त्रय,
=आमन्त्रय+मान=आमन्त्रयमाण।

वर्तमान यह शब्द स्वयं वर्तमान कृदन्त है और वह यह दिखाता है
कि वृत् इत्यादि धातुओंके वर्तमान कृदन्त किस प्रकार बनाये जाते है।

धातुको विकरण लगाओ। यदि प्रकृति अकारान्त हो तो मान
लगाओ, और यदि वह अकारान्त न होतो वर्तमानके प्र पु के
बहुवचन में जो प्रकृति रहती है उसे आन लगाओ। आनके उदाहरण
आगे आवेंगे। (२५ वा पाठ कर्मणि वत० कृ० देखो।)

भू—भूयमान	चुर्—चोर्यमाण
कृ—क्रियमाण	तड—ताड्यमान।
पुष—पुष्यमाण	कृ (प्रे.)—कार्यमाण

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके वर्तमान कृदन्त कर्मणि तथा भावे
प्रयोगकी प्रकृतिको मान लगानेसे बनते हैं।

	गच्छत्—पु			गच्छत्—न		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र	गच्छन्	गच्छन्तौ	गच्छन्तः	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ति
द्वि	गच्छन्तम्	,,	गच्छतः	,,	,,	,,
तृ	गच्छता	गच्छद्भ्याम्	गच्छद्भिः	शेष रूप पुंलिङ्गके समान।		
च	गच्छते	,,	गच्छद्भ्यः			
प	गच्छतः	,,	,,			
ष	,,	गच्छतोः	गच्छताम्			
स	गच्छति	,,	गच्छत्सु			
स	गच्छन्	गच्छन्तौ	गच्छन्तः			

ये रूप भगवत् वा वत् में समाप्त होनेवाले शब्दोंके समान होते हैं केवल पुंलिङ्गके प्रथमाके एकवचनमें भेद है। उसपर ध्यान दो।

भ्वादि, गच्छत्—स्त्री—गच्छन्ती।
दिवादि, कुप्यत्—स्त्री—कुप्यन्ती।
चुरादि, लालयत्—स्त्री—लालयन्ती।
प्रेर भावयत्—स्त्री—भावयन्ती।
तुदादि, क्षिपत्—स्त्री—क्षिपती-न्ती।
अदादि, स्नात्—स्त्री—स्नाती-न्ती।

वर्तमान कृदन्तके स्त्रीलिङ्गके रूप ई के जोड़नेसे बनते हैं। भ्वादि, दिवादि, चुरादि, तथा प्रेरणार्थक धातुके रूपोंमें इस ईके पूर्व न् लगता है, और तुदादिगणके तथा अदादि आकारान्त धातुओंमें न् विकल्पसे लगता है।

इच्छत् नपु प्र, द्वि, स—इच्छत् इच्छती-न्ती इच्छन्ति
यात् ,, ,, ,, ,,—यात् याती-न्ती यान्ति

नपुंसकके प्र, द्वि, तथा सम्बोधनके द्विवचनके रूप स्त्रीलिङ्गकी प्रकृतिके समान होते हैं।

वर्तमान—स्त्री—वर्तमाना—आत्मनेपदके वर्तमान कृदन्तके स्त्रीलिङ्ग-
रूप आ के जोड़नेसे बनते हैं।

नन्दा पश्यत इव पश्यतो राक्षसस्य—यह अनादरमें षष्ठी वा षत-
मी का उदाहरण है। इसका अर्थ है—'राक्षसके देखतेर' 'पश्यतो राक्षसस्य'
अर्थ—'राक्षसस्य पश्यत सत' है। यह सत षष्ठी इस लिये कहाती है
। इसका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये सत्का षष्ठीका एकवचन सत —
योग किया जाता है।

पत्ने विद्यमाने और हिमेषु गच्छत्सु—सतिसप्तमीके उदाहरण हैं।
का अर्थ है—पत्ने विद्यमाने सति, हिमेषु गच्छत्सु सत्सु।

एव निघ्नन् प्रहरन् कथ न लज्जसे।
कायमेव प्रतापता व सहस्रधा न दीर्यमाणया जिह्वया।
अपि कुशला तातस्य? लेशमस्माकम्। युष्माकं च कुशलम्?
इदानीं विशेषतो भवद्दर्शनात।
अद्य परा कोटिमधिरोहति प्रमोद पौराणाम्।
नाधि श्रुतस्त्वय्यशुभ प्रजानाम्।
उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यो भूतिमिच्छता।
वक्रे विधौ वद कथ व्यवसायसिद्धि।
यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहव सोऽत्र जीवति।
सता सद्भि सङ्ग कथमपि हि पुण्येन भवति।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीक
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त।
मूर्धे तपत्यावरणाय दृष्टे
कल्पेत लोकस्य कथ तमिस्रा।
त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदय द्वितीय
त्व कौमुदी नयनयोरमृत त्वमङ्गे।

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥
अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम् ।
अमृतं[1] राजसम्मानममृतं क्षीरभोजनम् ॥
उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥
कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥

क्या ऐसा होगा कि मैं काशी जाऊँ और गङ्गाके तटपर रहूँ ?
जो लोग अपना कर्तव्य नहीं करते, नष्ट होते हैं ।
इन सभाने पण्डितोंका बहुत आदर किया ।
हम वैयाकरणोंको न्यायसे क्या काम है ?
राजाने कहा, "रानी, क्या यह दुःख तुमसे सहा जा सकता है ?
क्या तुमको झूठ कहते लज्जा नहीं आती ?
जब वह राजा था, बली लोग दुर्बलोंको नहीं सताते थे ।
(सतिसप्तमीका प्रयोग करो) ।
यद्यपि गुरु देख रहा था, तथापि शिष्यसे अपराध किया गया ।
(सत षष्ठीका प्रयोग करो) ।

संज्ञाशब्द ।

अङ्ग (अङ्गम्) न —शरीर	अवसर (अवसरः) पु.—योग्य स
अभ्युदय (अभ्युदयः) पु —उन्नति	आवरण (आवरणम्) न —ढक
अशुभ (अशुभम्) न —अशुभ	कविताशाखा (कर्मधा०, कवित

१। मान तथा संमान पुलिङ्ग है, परन्तु यहां न० में आया है।
मानम् = परिमाण माप अथवा प्रमाण।

स्त्री, शाखा स्त्री)—कविता—
। स्त्री शाखा
ान्ति (स्त्री)—सुन्दरता
ारण (कारणम्) न – हेतु
शल (कुशलम्) न —सुख
ोटि (स्त्री और कोटी)—
चरम सीमा
ौमुदी (स्त्री)—चान्दनी
ीर (क्षीरम्) न —दूध
ेम (क्षेम —मम) पु , न —कुशल
ुण (गुण) पु गुण, उपयोग
न्द्रकान्त (चन्द्रकान्त) पु —एक
मणि, जो चन्द्रकिरणोंसे सम्बन्धसे
पसीजता है।
ामिनी (स्त्री)—रात
ातपाद (तातपादा) पु (तात,
पु पिता, + पाद—पु चरण,
यह एक आदरार्थक शब्द है,
जो बहुवचनमें प्रयोग किया
जाता है)—पूज्य पिता।
ापस (तापस) पु —तपस्वी
शन (दर्शनम्) न —देखना
ार (दारा —पु यह संज्ञा व ब
ही में प्रयोग किया जाता है)
—स्त्री
िवस (दिवस) पु —दिन

दृष्टि (स्त्री)—दृष्टि, नजर
देवी (स्त्री)—रानी
नन्द (नन्द) पु —पाटलिपुत्रका
राजा। नन्द नौ भाइ थे
नाथ (नाथ) पु —प्रभु
पतङ्ग (पतङ्ग) पु —मय
परीक्षा (स्त्री)—परीक्षा
पशु (पु)—पशु [कमल
पुण्डरीक (पुण्डरीकम्) न —श्वेत
पुण्य (पुण्यम्) न —पुण्य
पौर (पौर) पु —नगरवासी
प्रमोद (प्रकृष्टश्चासौ मोदश्च, प्रादि-
समा०, प्र=बड़ा + मोद—पु
=हर्ष)— पु बड़ा हर्ष
भूति (स्त्री)—ऐश्वर्य
भोजन (भोजनम्) न —भोजन
राक्षस (राक्षस) पु —नन्द राजाका
मन्त्री
वह्नि (पु)—अग्नि
वाल्मीकिकोकिल (वाल्मीकि-
कोकिल) पु वाल्मीकि मुनि
+ कोकिल पु, कोयल—
वाल्मीकिरूपी कोयल
विधि (पु)—परमेश्वर, ब्रह्मा, दैव
शिशिर, शिशिर -रम) पु., न—
जाड़ेका ऋतु, माघ तथा
फाल्गुन मास

सखी (स्त्री)—सहेली
सङ्ग (सङ्ग) पु —साथ
सङ्कट (सङ्कट) पुं—विपत्ति
सम्मान (सम्मान) पु —आदर
साधन (न)—साधन

हिमरश्मि (पु) बहु०, हिम, न हिम, विशे० ठण्डा+रश्मि: किरण, वह जिसके किरण ठण्डे हैं, चन्द्रमा

विशेषण।

अपकारिन्— अपकार वा बुराई करनेवाला
उपकारिन्—भलाई करनेवाला
उपेक्ष्य—अनादरणीय
चिन्त्यमान (कर्म वर्तमा कृ चिन्त्—चु)—जिसकी चिन्ता की जाती है
दीर्ण (दृ+चु पर +त)—फटा हुआ
नूतन तथा नूत—नया
पर (सर्वना)—१ दूसरा २ बड़ा
पर्युपास्यमान (स्त्री० पर्युपास्यमाना, परि + उप + आस् का वर्त कृ) —सेवित होती हुई
प्रतीक्षमाण (प्रति + ईक्ष्—भ्वा आ का वर्त कृ) बाट जोहता हुआ, आसरा देखता हुआ
बहु—बहुत
भवत् (सर्वना प्रथम पुरुष) आप
वक्र—टेढ़ा
सत् (अस्—अ का वर्त कृ) होता हुआ, अच्छा
साधु—अच्छा
सेव्य (सेव् + य)—सेवाके योग्य

धातु।

अधि + रुह् (अधिरोहति) (भ्वा पर)—चढ़ना
उद् + स्था (तिष्ठ्) (उत्तिष्ठते) भ्वा आ)—उन्नत होना
कूज् (कूजति)(भ्वा पर)—चहचहाना
क्लृप् (कल्पते (भ्वा आ)—यह चतुर्थीके साथ जाता है)—समर्थ होना।

द्रु (द्रवति) (भ्वा पर)—गलना, पिघलना
प्र+लप् (प्रलपति) (भ्वा पर)—अस्पष्ट बोलना
लस्ज् (लज्जते) (तु आ)—लजाना
वि+कस् (विकसति) (भ्वा पर)—खिलना

अव्यय।

एवम्—ऐसा
कथमपि—किसी प्रकार, बड़ी कठिनतासे
निर्घृणम् (बहु०, निर्=निकल—निकल गया हुआ+घृणा स्त्री दया, निर्गता घृणा यस्मात् कर्मणो यथा स्यात्तथा)—जिससे दया निकल गयी है, निर्दय
मधुराक्षरम्—(बहु०, मधुर विशे० मीठा+अक्षर—न वर्ण, मधुराण्यक्षराणि यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा)—मीठे शब्दोंमें
विशेषत—अधिक
सहस्रधा—हजार प्रकारसे

पाठ २२।

वस् तथा ईयस् में अन्त होनेवाले शब्द।

विद्वान् लिखति=विद्वाँल्लिखति—पण्डित लिखता है।
न किमपि विदुषामगम्यम्—पण्डितोंको कोई वस्तु अगम्य नहीं है।
मतिरेव बलाद् गरीयसी—बुद्धि ही बलसे बड़ी है।
२द्वारकामध्युषितो जनस्य या सम्पदस्ताःजनयोऽप्यसुरपि—द्वारकामें

१। नपु हि एकवचनान्त विशेषणका रूप क्रियाविशेषणकी तरह प्रयोग किया जाता है। विग्रह दिखानेमें यस्मात् कर्मणो यथा स्यात्तथा, वा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा कहा जाता है, जिससे इसका क्रियाके साथ सम्बन्ध मालूम होता है।

२ उप, अनु, अधि, आ पूर्वक वस धातुका आधार कर्म होता है।

रहनेवाले लोगोंकी जो सम्पत्तियां थीं वे मनको भी अगम्य हैं (अर्था[त्]
उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती) (जन बहुवचनके अर्थमें है)।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते—विद्वान् सब ठौर पूजित होता है।

विद्वद्भिरत्र निर्णयः कार्यः—इस विषयमें पण्डितोंसे निर्णय कि[या] जाना चाहिये।

इस पाठमें वस् तथा ईयसन्त शब्द दिये गये हैं।

विद्वस्—पु०।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वि	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तृ	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
च	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
प	विदुषः	,,	,,
ष	,,	विदुषोः	विदुषाम्
स	विदुषि	,,	विद्वत्सु
सं	विद्वन्	विद्वांसौ	विद्वांसः

सेदिवस्—पु०।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	सेदिवान्	सेदिवांसौ	सेदिवां
द्वि	सेदिवांसम्	,,	सेदुषः
तृ	सेदुषा	सेदिवद्भ्याम्	सेदिवद्भि
च	सेदुषे	,,	सेदिवद्भ्य
प	सेदुषः	,,	,,
ष	,,	सेदुषोः	सेदुषाम्
स	सेदुषि	,,	सेदिव
सं	सेदिवन्	सेदिवांसौ	सेदिवांस

विद्वस्—न।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र, द्वि, स	विद्वत्-द्	विदुषी	विद्वांसि

शेष पु० के समान।

सेदिवस्—न।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र, द्वि, स	सेदिवत्-द्	सेदुषी	सेदिवांसि

शेष पु० के समान।

विदुषी स्त्री (नदीके समान) सेदुषी स्त्री (नदीके समान)

श्रेयस्—पु०।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
द्वि	श्रेयांसम्	,,	श्रेयसः

		ए व	द्वि व	ब व
...	तृ	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभि
...	स	श्रेयसि	श्रेयसो	श्रेय सु—श्रेयस्सु

श्रेयस्—न०।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र, द्वि, स	श्रेय	श्रेयसी	श्रेयांसि

तत् + लिखति = तल्लिखति, ग्रन्थान् + लिखति = ग्रन्थांल्लिखति—जब दन्त्यस्थानीय वर्णके बाद ल् होता है, तो उसको ल् होता है, और यदि वह दन्तस्थानीय अनुनासिक हो तो उसको अनुनासिक ल् होता है।

लघु छोटा—लघुतर—लघीयस् = उससे छोटा—लघुतम—लघिष्ठ = सबसे छोटा।

गुरु—बड़ा—गुरुतर—गरीयस् = उससे बड़ा—गुरुतम-गरिष्ठ = सबसे बड़ा।

(ईयस् और इष्ठके पूर्व गुरुको गर् होता है)

महत्—महीयस्—महिष्ठ।—

विशेषणोंको ईयस् तथा इष्ठ प्रत्यय लगानेसे आपेक्षिक रूप बनते हैं। तर तथा तम भी इसी अर्थके दूसरे प्रत्यय हैं। ईयस् तथा इष्ठ पर रहनेपर अन्तिम स्वर वा उपान्त्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता है।

स्त्री गरीयसी, गरिष्ठा, गुरुतरा, गुरुतमा।

बलवत् बलिन्, बलीयस् बलिष्ठ—ईयस् तथा इष्ठके लगनेपर वत्, तथा इन् इत्यादि मत्वर्थीय (स्वामित्ववाचक) प्रत्ययोंका लोप हो जाता है।

ऊपरके रूपोंसे देखनेसे ये नियम निकलते हैं —

विद्वस् + स = विद्वन् स् स् = विद्वान् स् = विद्वान्—

१। अन्तिम व्यञ्जनके पूर्व सर्वनामस्थानमें न् आता है और न् के पूर्वके स्वरको दीर्घ होता है।

विद्वस् + औ = विद्वन्स् + औ = विद्वान्स् + औ = विद्वांसौ।

२। न्, जब पदके अन्तमें न हो, और उसके आगे श्, ष्, स् हो, तो अनुस्वारमें बदल जाता है।

विद्वस् + अस् = विदुष् + अस् = विदुषः,

सेदिवस् + अस् = सेदिउस् + अस् = सेदुस् + अस् = सेदुषः

३। भ अङ्ग के अन्तके वस्को उस् होता है। वस्के पूर्वके लोप होता है।

विद्वस् + भ्याम् = विद्वद् + भ्याम् = विद्वद्भ्याम्,

विद्वस् + सु = विद्वत् + सु = विद्वत्सु।

४। यदि कोई अघोष वर्ण आगे हो, तो पदके अन्तके स्को होता है, और यदि कोई घोष वर्ण आगे हो तो पदके अन्तके स् होता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि नपुंसकके प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन के ए व की प्रकृति पद है, नपुंसकके प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन के द्वि व की प्रकृति भ-अङ्ग है, तथा नपुंसकके प्र द्वितीया, और सम्बोधनके बहुवचनके प्रत्यय सर्वनामस्थान है। वह जिसको स्त्री प्रत्यय ई लगाया जाता है, भ-अङ्ग है।

एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

आर्य! दृश्यताम्। द्रष्टव्यमेतत्।

आर्ये! यदि नेपथ्यविधानमवसितं तर्हीतस्तावदागम्यताम्।

हे विद्वन्! किं वस्तु त्वया गुरवे प्रदेयमिति तमपृच्छद्राजा।

ज्ञानं विहाय समान्यत्र मम बुद्धिरेव नास्ति।

अथ सा तत्रभवतो हिमालयस्य राजर्षेः पत्नी?

प्रहित (प्र+हि—तु पर +त) —भेजा हुआ | लक्षित (लक्ष—चु. पर +त)— देखा गया
प्रदेय (प्र+दा का कृत्य)—देने योग्य | श्रेयस—अधिक प्रशंसाके योग्य
महात्मन् (बहु०, महत्+आत्मन् पुं)—जिसका मन बड़ा है, उदारचित्त, धार्मिक | स्वल्प (सु—बहुत+अल्प)—बहुत छोटा

धातु।

ईर्त (ईर—अ आत्म कर्म० ईर्यते)—बोलना | स्था (तिष्ठति—भ्वा पर)—[*] अव के साथ (आत्म)—खड़ा रहना
ग्रह (कर्म०, गृह्यते)—पकड़ना |

अव्यय।

अपरत्र—दूसरी जगह | विहाय (वि+हा का अव्यय भूत कृदन्त)—छोड़कर, बिना
तु—तो |

पाठ २३।

सङ्ख्यावाचक।

(१ से १० तक।)

विधवाया पुनरुद्वाह सशास्त्र इत्येके मन्यन्ते, अपरे पुनः शास्त्रप्रतिषिद्ध मिति—

कोई लोग विधवाका पुनर्विवाह शास्त्रसम्मत है ऐसा कहते है. और लोग तो वह शास्त्रसे निषिद्ध है ऐसा कहते है।

ऋग्यजुः सामानीति त्रयो वेदा त्रयाणा वेदानां बह्व्य शाखा सन्ति—ऋग्, यजुः और साम ऐसे तीन वेद है तीन वेदोंकी बहुतसी शाखायें है।

* धातु के पूर्व अव उपसर्ग लगनेसे आत्मनेपदी होता है।

संज्ञाशब्द।

अभिरुचि (स्त्री)—रुचि

अभिषेक (अभिषेक) पु राजगद्दी

अभूमि (स्त्री नञ्त०,)—अस्थान (मनसोऽप्यभूमि —मनको भी अगम्य)

आकार (आकार) पु —आकृति

आभरण (आभरणम्) न —भूषण

क्लेश (क्लेश) पु —दुख

क्षमा (स्त्री)—शान्ति

चित्त (चित्तम्) पु —मन

द्वारका (स्त्री)—द्वारका

निर्णय (निर्णय) पु—निश्चय

नेपथ्य (नेपथ्यम्) न —वस्त्र, नटका वेष, रङ्गभूमिके पीछेकी जगह, जहां नट लोग वेष बनाते हैं।

पटुता (स्त्री)—कुशलता

प्रायश्चित्त (प्रायश्चित्तम्) न (
=तप, उपवास+चित्त—न
इच्छा, मनका निश्चय) न प्रा
श्चित्त, पश्चात्ताप (चित्त श
शब्द आगे रहनेपर प्रायका प्रा
हो जाता है।)

भ्राष्ट्र (भ्राष्ट्र पुम्)पुं न भाड़,भड़

मुहूर्त (मुहूर्त नम्)पु,—न क्ष

युध् (स्त्री)—युद्ध, लड़ाई

विक्रम (विक्रम) पु —पराक्र

विधान (विधानम्) न करना, प्र

विभ्रम (विभ्रम) पु —सम्भ्र
मनका क्षोभ

व्यसन (व्यसनम्) न —सङ्क

व्रत (व्रतम्) न —सङ्कल्प

श्रेयस् (न)—कल्याण

सदस् (न)—सभा

विशेषण।

अगम्य—जानेको अशक्य

अधिजग्मिवस्—जो पा चुका

अध्युषिवस्—जो रह चुका

अवसित (अव+सो+त)—समाप्त

आशास्य—आशीर्वादसे पानेके योग्य

आहूत (आ+ह्वे भ्वा पर+त)—बुलाया हुआ

किमाख्य (बहु०, किं+आख्
स्त्री —नाम, का आख्या य
किमाख्य)—किस नामक

तप्त (तप्—भ्वा पर +त)—

द्रष्टव्य (दृश्का कृत्य)—देखने

प्रक्षिप्त (प्र+क्षिप्—तु पर
—भेजा हुआ

प्रहित (प्र+हिश—तु पर+त) —भेजा हुआ	लक्षित (लक्ष—चु पर+त)—देखा गया
प्रदेय (प्र+दा का कृत्य)—देने योग्य	श्रेयस्—अधिक प्रशंसाके योग्य
महात्मन् (बहु०, महत्+आत्मन् पु)—जिसका मन बड़ा है, उदारचित्त, धार्मिक	स्वल्प (सु—बहुत+अल्प)—बहुत छोटा

धातु।

ईक्ष (ईक्षते—भ्वा आत्म कर्म० ईक्ष्यते)—देखना	स्था (तिष्ठति—भ्वा पर)—अव के साथ (आत्म)—खड़ा रहना
गृह (कर्म०, गृह्यते)—पकड़ना	

अव्यय।

अपरत्र—दूसरी जगह	विहाय (वि+हा का अव्यय
तु—तो	भूत कृदन्त)—छोड़कर, बिना

पाठ २३।

सङ्ख्यावाचक।

(१ से १० तक।)

विधवाया पुनरुद्वाहं सशास्त्रं इत्येके मन्यन्ते, अपरे पुनः शास्त्रप्रतिषिद्धम् इति—

* कोई लोग विधवाका पुनर्विवाह शास्त्रसम्मत है ऐसा कहते है, और लोग तो वह शास्त्रसे निषिद्ध है ऐसा कहते है।

ऋग्यजुः सामानीति त्रयो वेदाः त्रयाणां वेदानां बहवः शाखाः सन्ति—ऋक्, यजु और साम ऐसे तीन वेद है तीन वेदोंकी बहुतसी शाखायें है।

* [illegible]

आप इसको अपवित्र क्यों समझते हैं ?
मैंने फलोंको पांच बार गिननेके लिये उसे कहा।
रघुवंशके दससे अधिक सर्ग हैं।
आदिमें केवल चार वर्ण थे।

संज्ञाशब्द।

अग्रजन्मन् पु (बहु०, अग्र-विशे०, उत्तम, जन्मन् न जन्म)—जिसका जन्म उत्तम है, ब्राह्मण
अध्यापन (अध्यापनम्) न —पढ़ाना
अयन (अयनम्) न —मार्ग
अरोगिता (स्त्री)—आरोग्य
आश्रम (आश्रम) पु —जीवनकी एक अवस्था। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, तथा सन्यास जीवनकी चार अवस्थायें हैं।
आस्वाद (आस्वाद) पु —स्वाद
उरस् (न) छाती, हृदय
ऋच (स्त्री) ऋग्वेद
कल्प (कल्प) पुं —एक वेदका अङ्ग
कार्तिकेय (कार्तिकेय) पु —शिवपुत्र, जिसको ६ मुख हैं।
काव्य (काव्यम्) न —कविता
कैकेयी (स्त्री) दशरथकी स्त्री, भरतकी माता
कौसल्या (स्त्री) दशरथकी स्त्री रामकी माता
चय (चय) पु —समूह
छन्दसां चय —छन्द शास्त्र
जानु (न) घुटना
जीवलोक (जीवलोक) (पु, तत्०।
जीव पु प्राणी, लोक पु जगत्
प्राणियोंका जगत्
ज्योतिष् (न) तारा (ज्योतिषामयन
—ज्योतिष - शास्त्र, जिस
ताराओंकी गति वर्णित है)
तनु तनू (स्त्री) शरीर
ताम्र (ताम्रम्) न —तांबा
दर्शन (दर्शनम्) न —शास्त्र
दान (दानम्) न —देना
देवदत्त (देवदत्त) पु.—किसीका
देश (देश) पु —देश
द्विजाति (पु -बहु०, द्वि-दो, जाति स्त्री, जन्म) जिसके दो ज
—ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वै
द्विरेफ (द्विरेफ —पु बहु०, रेफौ यस्य स। भ्रमरशब्दे रेफौ स्तः) भ्रमर

क्त (निरुक्तम्) न —शब्द—व्युत्पत्तिशास्त्र
(न्याय) पु —गौतमकृत तर्कशास्त्र
द्वाह (पुनरुद्वाह)-पु पुनर्-फिर, उद्वाह पु -विवाह)—पुनर्विवाह
ाम (प्रणाम) पु —नमस्कार
ाग्रह (प्रतिग्रह) पु —लेना
(बलम्) न —१ शक्ति, २ सैन्य
ांसा (स्त्री) जैमिनिकृत, षड्दर्शनोंमें एक दर्शन
दक (मोदक) पु —एक प्रकारकी मिठाइ
न (यजनम्) न —याग
ुष्_(न) यजुर्वेद
ाश (यशस्म्) न —यश
ा (योग) पु —षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, पतञ्जलिकृत
(रङ्ग रङ्गम्) पु, न —रागा
(रस) पु —पारा
न (रुपाम्) न —चादी
ावण्य (लावण्यम्) न —शोभा, अङ्गकान्ति
ोह (लोहम्) न —लोहा
ण (वर्ण) पु —१ जात, २, अक्षर

विधवा (स्त्री, बहु०, वि उपसर्ग विना, धव पु -पति) स्त्री, जिसका पति मृत है
विषवृक्ष (विष-न + वृक्ष पु, तत्पु०) विषयुक्त पेड़
वेदाङ्ग (वेदाङ्गम्) न —(तत्पु०, वेद पु वेद + अङ्ग न भाग) वेदका एक भाग
वेदान्त (वेदान्त) पु —वेदान्त-दर्शन, षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, व्यासकृत
वैशेषिक (न) षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, कणादकृत
व्याकरण (व्याकरणम्) न —शब्दशास्त्र
शाखा (स्त्री)—वेदकी एक शाखा
शिक्षा (स्त्री)—वर्णोच्चारणशास्त्र
शिरस्_(न)—सिर
शङ्ख (शङ्ख) पु —साप
साख्य (साख्यम्) न —षड्दर्शनोंमे एक दर्शन, कपिलकृत
सामन् (न)—सामवेद
सीस (सीसम्) न —सीसा
सुजन (सुजन) पु, प्रादिसमास, सुष्ठु जन)—सज्जन
सुमित्रा (स्त्री)—लक्ष्मणकी माता
स्वर्ण (स्वर्णम्) न —सोना

विशेषण ।

अर्थकर (स्त्री अर्थकरी) द्रव्य उत्पन्न करनेवाला
एक एक, (बहु व में) कुछ
गरीयस्—(अधिक बड़ा)
प्रपन्न (प्र+पद्—द् का न+त) प्राप्त
प्रियवादिन् (स्त्री प्रियवादिनी)—मधुर बोलनेवाला
बलीयस् (स्त्री बलीयसी) अधिक शक्तिमान्)
रसवत्—स्वादयुक्त
वश्य—वशमें रहनेवाला
विद्वस्—जाननेवाला, पण्डित
शास्त्रप्रतिषिद्ध (तत्पु०, शास्त्र+प्रतिषिद्ध = प्रति+ सिध् पर+त)—शास्त्रसे निषिद्ध
सशास्त्र (बहु०, स=साथ, शास्त्र)—शास्त्रसमत
साष्टाङ्ग (बहु०, स+अष्टन् अङ्ग, न)—आठ अङ्गोंके स
सेदिवस्—जो बैठ चुका

धातु ।

रुच् (रोचते—भ्वा आ)—पसन्द करना (यह चतुर्थीके साथ आता है) पसन्द करनेवालेमें चतुर्थी होती है। तुभ्य रो° —तुमको पसन्द है।

अव्यय ।

अध्यासितुम् (अधि+आस्+तुम्)—बैठना
इदानीम्—अब
केवलम्—केवल
नित्यम्—सर्वदा

पाठ २४ ।

अनियत सत्तावाचक ।

अत्याहार कार्य —आग्रहसे खाना ।
सखासि सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव—इस लिये तुम मित्र हो, जो मेरा है, वह तुम्हारा ही है।

ो भावेन परिणत क्षीरमेतत्—दहीके रूपमें बदला हुआ यह दूध है।
सेवा स्त्रीणां परमो धर्मः—पतिकी सेवा स्त्रियोंका परम कर्तव्य है।
श्री रूपगर्विताया श्रियः प्रत्यादेश =कन्यकी रूपसे गर्वित लक्ष्मीको दबानेवाली है।
जना कीर्ति सर्वासु दिक्षु प्रसरति—सज्जनोंका यश सब दिशाओंमें फैलता है।
वाले पन्थान सन्तु—तुम्हारे मार्ग सुखजनक हों।
ा पाठमें पति, सखि, श्री, स्त्री, अर्चि, पथिन्, तथा दिश् शब्दके रूप दिये गये हैं।

१। पति शब्दके तृ, च, प, ष, तथा सप्तमीके एकवचनके रूप क्रम—पत्या, पत्ये, पत्यु, पत्यु, तथा पत्यौ होते हैं, शेष रूप हरिके समान होते हैं।

२। भूपतये, भूपते, इत्यादि—भूपति महीपति, इत्यादिमें समासके तमें रहनेवाले पतिशब्दके रूप नियतरूपसे होते हैं।

सखि—पु।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	सखा	सखायौ	सखाय
द्वि	सखायम्	,,	सखीन्
तृ	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभि
च	सख्ये	,,	सखिभ्य
प	सख्यु	सखिभ्याम्	सखिभ्य
ष	,,	सख्यो	सखीनाम्
स	सख्यौ	,,	सखिषु
स	सखे	सखायौ	सखाय

३। सखिके पहिले पांच रूप—सखा, सखायौ, सखाय, सखायम ाये हैं, शेष रूप पतिके समान होते हैं।

स्त्री—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय,
द्वि	स्त्रीम्—स्त्रियम्	,,	स्त्री—स्त्रिय
तृ	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि
च	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्य
प	स्त्रिया	,,	,,
ष	,,	स्त्रियो,	स्त्रीणाम्
स	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु
स	स्त्रि	स्त्रियौ	स्त्रिय

४। स्वरादि प्रत्यय आगे रहनेपर स्त्रीके ईको इय् होता है। इस द्वितीयाके एकवचनमें स्त्रीम् वा स्त्रियम्, तथा बहुवचनमें स्त्री स्त्रिय होता है।

श्री—स्त्री । भू—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र	श्री	श्रियौ	श्रिय	भू	भुवौ	भुव
द्वि	श्रियम्	,,	,,	भुवम्	,,	,,
तृ	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि	भुवा	भूभ्याम्	भूभि
च	श्रियै-श्रिये	,,	श्रीभ्य	भुवे-भुवै	,,	भूभ्य
प	श्रिय श्रिया	,,	,,	भुव -भुवा	भूभ्याम्	भूभ्य
ष	,, ,,	श्रियो	श्रियाम्-श्रीणाम्	,, ,,	भुवो	भुवाम्-भूणाम्
स	श्रियि श्रियाम्	,,	श्रीषु	भुवि भुवाम्	,,	भूषु
स	श्री	श्रियौ	श्रिय	भू	भुवौ	भुव

५। *श्री, धी, ह्री, भू, तथा भ्रू इत्यादि शब्दोंके रूपोंमें अधोलिखित वर्तन होते हैं।

(अ) प्रथमाके ए व में स् का लोप नहीं होता।

(ब) स्वरादि विभक्तियोंके पूर्व ई को इय्, तथा ऊ को उव् होता है।

(क) च, प, ष, तथा सप्तमीके एकवचनमें और ष के बहुवचनमें २ रूप होते हैं। एक नियतरूपसे प्रत्ययोंके जोड़ने पर बनते हैं, र दूसरे नदी तथा वधूके समान चलते हैं।

अक्षि—न।   दिश—स्त्री।

ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	दिक् ग्	दिशौ	दिशः
,,	,,	,,	दिशम्	,,	,,
अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
अक्ष्णे	,,	अक्षिभ्यः	दिशे	,,	दिग्भ्यः
अक्ष्णः	,,	,,	दिशः	,,	,,
,,	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्	,,	दिशोः	दिशाम्
अक्ष्णि अक्षणि	,,	अक्षिषु	दिशि	,,	दिक्षु
अक्षि अक्षे	अक्षिणी	अक्षीणि	दिक् ग्	दिशौ	दिशः

६। तृतीयाके एकवचनसे लेकर स्वरादि प्रत्यय पर रहनेपर अस्थि, धि, सक्थि, तथा अक्षिको अस्थन्, दधन्, सक्थन् तथा अक्षन् समझना चाहिये।

---

* अवीलक्ष्मीतरीतन्त्रीधीह्रीश्रीणामुदाहृत।
सप्तानामेव शब्दानां सुलोपो न कदाचन॥

ईकारान्त शब्दोंमें अवी (रजस्वला स्त्री) लक्ष्मी, तरी (नौका), तन्त्री (एक वाद्य), की, तथा श्रीके प्रथमाके एकवचनमें स का लोप नहीं होता।

दिक्, दिश्याम्, दिक्षु, दृक्, दृक्षु—

७। दिश् तथा सादृश्, त्वादृश्, इत्यादि दृश्में समास होनेसे शब्दोंका अन्तिम श्, व्यञ्जनादि प्रत्यय पर रहनेपर, क्में बदल जाता है।

पथिन्—पु।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	पन्था	पन्थानौ	पन्थान
द्वि	पन्थानम्	,,	पथ
तृ	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि
च	पथे	,,	पथिभ्य
प	पथ	,,	,,
ष	,,	पथो	पथाम्
स	पथि	,,	पथिषु
स	पन्था	पन्थानौ	पन्थान

८। पथिन्के पहिले पांच रूप—पन्था, पन्थानौ, पन्थान, पन्थानम्, पन्थानौ—है। इसका भ अङ्ग पथ् है।

९। स्वर्गपथ—स्वर्गका मार्ग। समासके अन्तमें पथिन्को होता है।

भ्रुवोर्भङ्ग क्रोध सूचयति।
अयं पन्था साकेतमुपतिष्ठते।
स्त्रीभि कस्य न खण्डित भुवि मन।
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा।
अनिर्वेद श्रियो मूलम्।

दुग्ध च शर्करा चैव घृत दधि तथा मधु इति पञ्चामृतमिदम्।

आ पाप! कथमेव गदतो मामुत्तमाङ्गे न ते निपतित वज्रमथवा सहस्रधा न जिह्वा विद्गलिता गता वा न वाणी नष्टानि वा नाक्षराणि।

…न्त (वसन्त) पुं—वसन्त ऋतु, चैत और वैशाख
…णी (स्त्री) बोली
…स्फुट (न वि+स्फुट+त)—अस्पष्ट वाणी
…च्छा (स्त्री)—खेलनेवालेकी इच्छा
…व्याकुलता (स्त्री) व्याकुलता
…रा (स्त्री)—चोरी
…री (स्त्री) लक्ष्मी
…खि (पु)—मित्र
…माज (समाज) पु—समाज
…र्वभौम (सार्वभौम) पु—सम्राट्
साधु (पु)—सज्जन
सितशर्करा (स्त्री) मिसरी
सूनु (पु)—पुत्र
ससर्ग (संसर्ग) पु—साथ
सन्धिता (स्त्री)—सन्धि वा अक्षरोंका जोड़
सम्पर्क (सम्पर्क) पु—साथ
साकेत (साकेत) पु—अयोध्या
सेवा (स्त्री)—सेवा
स्त्री (स्त्री)—स्त्री
स्वभाव (पु)—प्रकृति
ह्री (स्त्री)—लज्जा

विशेषण।

अध्रुव—अनिश्चित
अनुविद्ध (अनु+व्यध् नि-पर+त)—मिला हुआ
अन्वित (अनु+इ+त)—युक्त
अवशीर्ण (अनु+शॄ+त)—कटा हुआ
असत्—बुरा
काण—काना
…—किस प्रकारका
…काला
…टूटा हुआ
गदत् (गद्—ऋश पर का वर्तमा कृ)—बोलता हुआ
गर्वित (गर्व+त) गर्वित
जीर्ण (जॄ-नि पर+त)—पुराना
त्वादृश—तुम्हारे ऐसा
ध्रुव—निश्चित
निपतित—(नि+पत्+त)—गिरा हुआ
निवसत् (नि+वस्का वर्त कृ)—रहता हुआ

मैंने देखा कि उस पात्रका दूध दहीमें बदल गया।
विपद्में जो मित्र वही यथार्थ मित्र है ।

संज्ञाशब्द ।

अनिर्वेद (अनिर्वेद पु नञ्स०, अ + निर्वेद-पु -वैराग्य)—वैराग्यका अभाव , उत्साह
अमृत (अमृतम्) न —अमृत
उत्तमाङ्ग (उत्तमाङ्गम्) न —(उत्तम-विशे० + अङ्ग-न) उत्तम अवयव, सिर
उपसर्ग (उपसर्ग) पु —उपसर्ग
उर्वशी (स्त्री)—स्वर्गकी एक अप्सराका नाम
कीर्त्ति (स्त्री)—यश
कोटर (कोटर स्म्) पु ,न —खोखला
क्षीर (क्षीरम्) न —दूध
घृत (घृतम्) न —घी
छल (छलम्) न —कपट
जाया (स्त्री)—स्त्री
त्वदनुस्मृति† (स्त्री तत्पु त्वत् + अनुस्मृति)—तुम्हारा स्मरण
दधि (न)—दही
दिश् (स्त्री)—दिशा
दुग्ध (दुग्धम्) न —दूध
धी (स्त्री धी)—बुद्धि
धीर (पु)—बुद्धिमान्
पति (पु)—पति
पथिन् (पुं)—मार्ग
परमार्थ (परमार्थ पु कर्मधा० परम विशे० उत्तम + अर्थ पु वस्तु)—यथार्थ वस्तु
परमार्थेन—सचमुच
परिहास (परिहास) पु —हंसी
पिक (पिक) पु —कोकिल
प्रत्यादेश (प्रत्यादेश) पु —दूसरेको दबानेवाला
भङ्ग (भङ्ग) पु —चढाना (भ्रूभङ्ग—भौंह चढाना)
भू (स्त्री)—पृथ्वी
भ्रू (स्त्री)—भौंह
भेद (भेद) पु —भेद
मूल (मूलम्) न —जड़, कारण
रुत (रुतम् न रु + त)—शब्द

† समासमें ए व के अर्थमें युष्मद् तथा अस्मद् को त्वत् तथा मत् होता है ।

'न्त (वसन्त) पु —ऋषन्त ऋतु, चैत्र और वैशाख
णी (स्त्री) बोली
जल्पित (न त्रि + जल्प् + त)— अस्पष्ट वाणी
वता (स्त्री) —बोलनेवालेकी इच्छा
ाहलता (स्त्री) व्याकुलता
र्करा (स्त्री)—चीनी
ी (स्त्री) लक्ष्मी
खि (पु)—मित्र
माष (समास) पु —समास
ार्वभौम (सार्वभौम) पु —सम्राट्
साधु (पु)—सज्जन
सितशर्करा (स्त्री) मिसरी
सूनु (पु)—पुत्र
ससर्ग (संसर्ग) पु —साथ
सन्हिता (स्त्री)—सन्धि वा अक्षरोंका जोड
सम्पर्क (सम्पर्क) पु —साथ
साकेत (साकेत) पु —अयोध्या
सेवा (स्त्री)—सेवा
स्त्री (स्त्री)—स्त्री
स्वभाव (पु)—प्रकृति
ह्री (स्त्री)—लज्जा

विशेषण।

ाध्रुव—अनिश्चित
नुविद्ध (अनु + व्यध् ि-पर + त)—मिला हुआ
न्वित (अनु + इ + त)—युक्त
वशीर्ण (अनु + शॄ + त)—फटा हुआ
असत्—बुरा
काण—काना
कीदृश—किस प्रकारका
कृष्ण—काला
खण्डित—टूटा हुआ
गदत् (गद्—बोलना का वर्तमान कृ)—बोलता हुआ
गर्वित (गर्व + त) गर्वित
जीर्ण (जॄ-ि पर + त)— पुराना
त्वादृश—तुम्हारे ऐसा
ध्रुव—निश्चित
निपतित—(नि + पत् + त)—गिरा हुआ
निवसत् (नि + वस्का वर्त कृ)— रहता हुआ

नित्य—आवश्यक
परिणत (परि+नम्+त)—बदला हुआ
पश्चिम—अन्तिम (पश्चिम वय वृद्धता)
पाप—पापी
पावन (स्त्री पावनी)—पवित्र
मञ्जु—मनोहर
युक्त (युज्+त)—मिला हुआ
वृद्ध (वृध्—भ्वा आ+त) बूढ़ा
शिव—सुखजनक
समुपायात (सं+उप+आ+या पर+त)—आया हुआ

धातु।

अप+ईक्ष् (अपेक्षते—भ्वा आ)—चाहना, आशा करना, भरोसा करना
उप+स्था (उपतिष्ठते—भ्वा आ)—सेवना
प्र+सृ (प्रसरति—भ्वा पर)—फैलना
प्र+वि+चल् (प्रविचलति—भ्वा पर)—हिलना
परि+सेव् (परिषेवते—भ्वा आ) (परिषेव्)—सेवन व आश्रय लेना

अव्यय।

कियत्—कितना अधिक?
वक्तुम् (वच्+तुम्)—बोलना
विधिवशात्—दैववश

पाठ २५।

स्वादि तथा तनादिगणके धातु।

सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि—सब प्रकारसे सार्वभौम पुत्र पावो।

शृणु मे सावशेषं वचः—मेरी सब (जिसमें शेष है) बात सुनो।

सखि ! अत्रागच्छ पुष्पाणि चिनवावहे—सखी ! यहां आओ हम दोनों फूल बटोरें।

जगन्नाथ ! न वयं ते महिमानं स्तोतुं शक्नुमः—हे जगन्नाथ ! हम लोग तुम्हारी महिमाकी स्तुति नहीं कर सकते।

अध्वर्यवो यज्ञे सोममसुन्वन्—अध्वर्युओंने यज्ञमें सोमको कूटा।

त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु—तुम भी अपने कामको अशून्य बनाओ।—तुम भी अपना काम करो (अशून्य कुरु=पूरा करो)।

क्रमेण च तस्या वपुषि यौवनं पदमकरोत्—क्रमसे यौवनने उसके शरीरमें स्थान किया।

ईश्वरकृपया विना दुष्कराणि कार्याणि जनाः कथं साध्नुयुः—ईश्वरकी कृपाके बिना लोग कठिन कामोंको कैसे सिद्ध करें !

इस पाठमें स्वादि तथा तनादि गणके रूप दिये गये हैं।

चि—स्वा पर, वर्त।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
म पु	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
उ पु	चिनोमि	चिनुवः-चिन्वः	चिनुमः चिन्मः

आप्—स्वा पर।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
म पु	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
उ पु	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः

तन्—तना पर लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
म पु	तनु	तनुतम्	तनुत
उ पु	तनवानि	तनवाव	तनवाम

आप्—स्वा पर लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म पु	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ पु	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

तन्—तना पर लङ्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म पु	अतनो	अतनुतम्	अतनुत
उ पु	अतनवम्	अतनुव न्व	अतनुम-न्म

आप्—स्वा पर लङ्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्[illegible]
म पु	आप्नो	आप्नुतम्	आप्[illegible]
उ पु	आप्नवम्	आप्नुव	आप्[illegible]

चि—स्वा पर लिङ्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयु
म पु	चिनुया	चिनुयातम्	चिनुयात
उ पु	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

चि—आ पर लिङ्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वी[illegible]
म पु	चिन्वीथा	चिन्वीयाथाम्	चिन्वी[illegible]
उ पु	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वी[illegible]

तन्—आ लङ्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म पु	अतनुथा	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्

चि आ लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वत[illegible]

तन्—लट् आ वर्त्त।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म पु	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ पु	तन्वे	तनुवहे न्वहे	तनुमहे न्महे

तन्—आ लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वता[illegible]
म पु	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्व[illegible]
उ पु	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

इन रूपोंके देखनेसे ये नियम तुम्हारे ध्यानमें आवेंगे —

१। नु स्वादिका, तथा उ तनादिगणका विकरण है।

गण दो वर्गोंमें विभक्त हैं। पहिलेमें भ्वादि, दिवादि, तुदादि, तथा चुरादि ये गण आते हैं, जिनमें प्रकृति अकारान्त होती है (क्योंकि अ, य,

या अथ इनके विकरण हैं), और दूसरे वर्गमें अन्य गणके धातु हैं, जिनमें प्रकृति अकारान्त नहीं होती।

२। कुछ प्रत्यय ऐसे हैं कि जो पर रहनेपर अन्तिम स्वर तथा न्त्य ह्रस्व स्वरको गुण वा वृद्धि होती है, और कुछ ऐसे हैं, कि जिनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इनमें पहिले प्रकारके विकारक, तथा दूसरे प्रकार के अविकारक प्रत्यय कहाते हैं।

३। परस्मैपद—विधिलिङ्के एकवचन, तथा लोट्के मध्यमपुरुषके वचनके सिवा और सब एकवचन विकारक हैं। लोट्के उत्तम पुरुषके वचन तथा बहुवचनके सिवा और सब द्विवचन तथा बहुवचन विकारक हैं।

४। आत्मनेपद—लोट्के उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचन—विकारक, तथा शेष अविकारक हैं।

५। केवल विधिलिङ्के सिवा इतर दूसरे वर्गके परस्मैपदके प्रत्यय प्रथम वर्गके गणोंके समान होते हैं। विधिलिङ्के प्रत्यय इस प्रकार हैं —

प्र पु	यात्	याताम्	युः
म पु	याः	यातम्	यात
उ पु	याम्	याव	याम

६। तनु—आप्नुहि—हि लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका प्रत्यय है। तनादिगणके सब धातुओंमें तथा स्वादिगणके स्वरान्त धातुओंमें इसका लोप होता है।

७। आत्मनेपदमें प्रथमपुरुषके बहुवचनके अनुनासिकका लोप होता है, और इते, इते, इताम्, तथा इताम् की आते, आते, आथाम्, तथा आताम् होता है।

८। चिनव न्त, आप्नुव—वकार तथा मकारादि प्रत्ययोंके पूर्व

विकरणके उ का विकल्पसे लोप होता है, यदि इसके पूर्व कोई दूसरा व्यञ्जन न हो।

९। चिन्वन्ति, आप्नुवन्ति—यदि विकरणके उसे पूर्व कोई संयुक्त व्यञ्जन हो तो उसको अविकारक प्रत्ययोंके पूर्व उव् होता है।

कृ—उभ।

	पर. वर्तमान।			आत्म वर्त।		
	एव	द्वि व	ब व	एव	द्वि व	ब व
प्र. पु	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म पु	करोषि	कुरुथः	कुरुथ	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ. पु	करोमि	कुर्वः	कुर्मः	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

	पर—लोट्।			आत्म—लोट्।		
प्र पु	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म पु	कुरु	कुरुतम्	कुरुत	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ. पु	करवाणि	करवाव	करवाम	करवै	करवावहै	करवामहै

	पर लङ्।			आत्म लङ्।		
प्र पु	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म पु	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ पु	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

	पर विधिलिङ्।			आ विधिलिङ्।		
प्र पु	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्

१०। कृकी विकारक प्रकृति कर्, तथा अविकारक प्रकृति कुर् है।

११। वकारादि तथा मकारादि प्रत्ययोंके पूर्व, तथा विधिलिङ्के परस्मैपद प्रत्ययोंके पूर्व कृके विकरण अर्थात् उका लोप होता है।

साधु कृतमनेन विद्यापरिग्रहार्थं पुत्रान् काशीं प्रहिण्वता ।
तात ! शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव वनं प्रवेष्टुं न शक्नुमः ।
विदुषां यशांसि दिशः कवयः प्रतन्वन्ति ।
अहो ! देवी भानुमती सखीभ्यां शिंमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति । भवतु ताज्ञालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विस्रम्भालापम् ।
अद्य पौर्णमासीति मया चन्द्रपूजा साय कर्तव्या । तस्मात् पूजार्थं ख्या उद्याने पुष्पाण्यवचिन्वाताम् ।
दुष्टध्याना परं न दृष्टं मयातस्तस्य फलं नैवाप्नवम् ।
एकदा पुत्रमाहूय अब्रूत् हनुमदपरिमितबलानुयात् विरक्तैरमात्यैमहा-मन्त्रैश्च कृत्वा साभिसारमुत्तरापथं प्राहिण्वम् ।

निर्बला अरिणो युद्धं न कदापि धृष्णुयुः ।
भगवति सरस्वति ! तव चरणं शरणं करवाणि ।

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥
कुलीनैः सह सम्पर्कं पण्डितैः सह मित्रताम् ।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो न विनश्यति ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥

यह लड़की बगीचेमें पेड़ोंसे फूल चुनती है ।
उद्योगसे कौन अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकता ?

उन्होंने पुस्तक लानेके लिये उसे काशी भेजा ।

जो कार्य्य करते हैं, अपने उद्योगका फल पाते हैं ।

अब हमलोग गुरुके उपदेशको सुने ।

तुमलोगोंको एक एक अरबी आना चाहिये दो दो नहीं ।

हे नाथ! मैं आपकी शरण आया हूं मेरी रक्षा कीजिये ।

यद्यपि वह दुर्बल था, तथापि उसने उस बली पुरुषको अपने साथ लडनेके लिये ललकारा, और पराजित हुआ ।

शब्दाशब्द ।

अध्वर्यु (पु)—एक ऋत्विज्

अमात्य (अमात्य) पु—मन्त्री (अमा—अव्य०, साथ, त्य—प्रत्यय)

उत्तरापथ (उत्तरापथ) पु—उत्तरका मार्ग

उद्यान (उद्यानम्) न—बगीचा

कृपा (स्त्री)—दया

कुलीन (कुलीन) पु—अच्छे कुलमें उत्पन्न

क्रम (क्रम) पु—क्रम

खल (खल) पु—खल, दुष्ट

गर्व (गर्व) पु—घमंड

चक्षुःफल (चक्षुःफलम् न तत्पु चक्षुस् न आंख+फल—न) —आंखका फल, देखने योग्य वस्तुका देखना

चन्द्रपूजा (स्त्री तत्पु०, चन्द्र+पूजा)—चन्द्रमाकी पूजा

ज्ञाति (पु)—बान्धव

धनुर्धर (धनुर्धर) पु—धनुर्धारी

निमेष (निमेष) पु—पलक गिरना (निमेषात्—क्षणमें)

नियोग (पु)—किसीके अधीन किया हुआ काम

नीति (स्त्री)—नीति, सद्व्यवहार

परपीडन (परपीडनम्) न कर्म०, पर विशे० अत्यन्त+पीडन न)—बहुत दुःख देना

पार्थ (पार्थ) पु—पृथाका पुत्र, अर्जुन

पौर्णमासी (स्त्री)—पूर्णिमा

बल (बलम्) न—सेना

ब्रह्मपद ब्रह्मपदम् (न ब्रह्मन् न ब्रह्म + पद न स्थान)—ब्रह्माका स्थान
भानुमती (स्त्री)—दुर्योधनकी रानीका नाम
भूति (स्त्री)—ऐश्वर्य
मद (मद) पु—गर्व
महिमन् (पु)—बड़ापन
मेल (मेल) पु—साथ
यत्न (यत्न) पु—यत्न
योगेश्वर (योगेश्वर) पु—योगकी प्रभु, कृष्ण
लताजाल (लताजालम्) न (लता-स्त्री + जाल न) लताओंका समूह
वपुस् (न)—शरीर
विजय (विजय) पु—जय
विश्रम्भालाप (विश्रम्भालाप) पु तत्पु, विश्रम्भ पु विश्वास + आलाप—पु श्वास) विश्वाससे बातचीत
विवाद (विवाद) पु - वाद
सरस्वती (स्त्री)—वाणी
सामन्त (सामन्त) पु—माण्डलिक राजा
सोम (सोम) पु—सोमरस

विशेषण।

अनुयात (अनु + या—अ पर + त)—अनुसृत
अन्तरित (अन्तर् + इ + त)—छिपा हुआ
अपरिमित (नञ्तत्पु०, अ + परिमित = परि + मा + त)—बहुत
चक्रवर्तिन्—सार्वभौम
चिरन्तन—पुराना
दुष्कर—करनेको अशक्य
दृश्य—देखने योग्य
निर्बल (बहु)—जिससे बल निकल गया, अशक्त
पर* (सर्वना)—दूसरा
बलिन्—शक्तिमान्
मायामय—(माया—स्त्री अविद्या, मय प्रत्यय है जिसका अर्थ—बना हुआ है)—असत्य
विपरीत (वि + परि + इ + त)—उलटा
विरहित (वि + रह् + त)—बिना

* जब यह साकाङ्क्ष होता है तब इसके ये दो रूप होते हैं—परे - पराः, परस्मात् - परात्, परस्मिन् - परे।

साभिसार (बहु०, स+अभिसार—पु सेवक)—सेवकोंके साथ

सावशेष (बहु०, स+अवशेष—पु)—सशेष, पूर्ण

धातु।

अशून्यम्+कृ (तना उभय.)—पूर्ण करना

आप् (आप्नोति-स्वा पर)—पाना, प्र या अवके साथ—पाना

कृ (करोति, कुरुते—तना उभ.)—करना

चि (चिनोति, चिनुते—स्वा उभ) चुनना, एकट्ठा करना, वि, सम्,वा अवके साथ—एकट्ठा करना

तन् (तनोति, तनुते) (तना उभ)—फैलाना, प्र, वि, या समूके साथ—फैलाना

धृष् (धृष्णोति) (स्वा पर)—ललकारना

मन्त्र् (मन्त्रयते) (चु आ)—सलाह करना, विचार करना

शक् (शक्नोति—स्वा पर)—सकना

शरण कृ (तना उभ)—शरणागत होना

श्रु (शृ) (शृणोति—स्वा पर)—सुनना

साध् (साध्नोति—स्वा पर)—सिद्ध करना

सु (सुनोति, सुनुते—स्वा उभ)—कूटना

हि (हिनोति—स्वा पर)—भेजना, प्र के साथ—(प्रहिणोति)—भेजना

अव्यय।

आहूय (आ+ह्वे का अव्य भू कृ)—पुकारकर

एकदा—एकबार

प्रवेष्टुम् (प्र+विश्+तुम्)—प्रवेश करने के लिये

विदित्वा (विद्+त्वा)—जानकर

विद्यापरिग्रहार्थम् (तत्पु चतुर्थी के अर्थमें चतुर्थीके साथ अर्थ शब्दका समास होता है। यह चतुर्थीतत्पुरुष है। यह

[1]नित्य होता है विकल्पसे नहीं। विद्यायाः परिग्रहः विद्यापरिग्रहः विद्यापरिग्रहाय इदं यथा स्यात्तथा)—विद्याप्राप्तिके लिये
साधु—अच्छा
सायम्—सायङ्कालमें
स्तोतुम् (स्तु+तुम्)—स्तुति करनेके लिये
हन्तुम् (हन्+तुम्)—मारनेके लिये
हित्वा (हा का अव्यय भू कृ)—छोड़कर

पाठ २६।

क्र्यादिगणके धातु।

प्रायः आकृतिमनुवर्तन्ते गुणाः—प्रायः गुण रूपका अनुसरण करते हैं।

त्वदर्थं महाजवमश्वमक्रीणाम्—तुम्हारे लिये मैंने बहुत तेज घोड़ा खरीदा है।

प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रः—जो अपने सच्चरित्रोंसे पिताको प्रसन्न करता है वह पुत्र है।

पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे—हम लोग पवित्र आश्रमके दर्शनसे अपनेको पवित्र करें (तावत् वाक्यालङ्कारके लिये है)।

इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः—इस शिलाकी एक ओर मित्र कृपा करे (बैठे)। इतः=इदम्।

शतं मुष्णाति देवदत्तम्—वह देवदत्तसे सौ रुपया चुराता है (मुष्-को दो कर्म होते हैं)। यह द्विकर्मक धातु है।

हे राजन्! एतां क्षितिधेनुं दोग्धुमिच्छसि चेद्वत्समिवामुं लोकं पुषाण—हे महाराज! यदि आप इस पृथ्वीरूपी गौको दुहा चाहते हैं तो वत्सके समान इस लोकका पोषण करो।

इस पाठमें क्र्यादिगणके रूप दिये गये हैं।

१। नित्यसमासके विषयमें इस पुस्तकके अन्तमें व्याकरणके टिप्पणियोंमें दशनार्थम की टिप्पणी, या ३२ वें पाठमें देखो।

क्री—क्रय कर ।

	पर वर्त ।			आत्म वर्त ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म पु	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ पु	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

	पर लोट् ।			आत्म लोट् ।		
प्र पु	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म पु	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ पु	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

पर लङ् ।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म पु	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ पु	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

आ लङ् ।

प्र पु	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म पु	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ पु	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

पर विधिलिङ् ।

प्र पु	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
म पु	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ पु	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

आत्म विधिलिङ् ।

प्र पु	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म पु	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ पु	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

१। ऊपरके रूपोंके देखनेसे यह मालूम होगा कि क्र्यादिगणका विकरण ना है, और अविकारक व्यञ्जनादि प्रत्यय पर रहनेपर ना को नी, तथा अविकारक स्वरादि प्रत्यय पर रहनेपर न् होता है ।

२। पुषाण, मुषाण—पुष्, मुष्, इत्यादि व्यञ्जनान्त धातुओंके लोटके मध्यमपुरुषके एकवचनका रूप विकरणके बिना आन लगानेसे बनता है ।

३। बन्ध्—बध्नाति, ग्रन्थ्—ग्रथ्नाति—उपान्त्य अनुनासिकका लोप होता है ।

४। पू—पुनाति, लुनाति, धुनाति, स्तृणाति, कृणाति—पू, लू, धू, स्तॄ, कॄ, तथा और कुछ धातुओंके अन्तिम स्वरको विकरण आगे रहनेपर ह्रस्व होता है ।

सूत ! चोदयाश्वान् । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे ।
वाचयतु सर्वमनुक्रमेण । सैनमन्तरा प्रतिबध्नीतम् ।
मूढः खल्वयं दुरात्मा सुयोधनो वासुदेवं भगवन्तं स्वेन रूपेण कथं जानातु ।
अहो कल्याणपरंपरा सत्योऽयं जनप्रवादो यद् विपद्विपदं सम्पत्सम्पदम् अनुबध्नाति ।
पितृवधस्यादार्यमाणक्राव्यानोऽपि तावदस्योत्कण्ठाकारणम् ।
अन्तरा त्वां मां च कमण्डलु ।
न च प्रमीलनमन्तरा चापश्च स्वप्नेऽपि चेष्टते ।
हरिमन्तरेण न सुखम् ।
तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् ।

अनुदिवसं परिहीयसेऽङ्गैः ।
श्रोत्रियतया न परिहीयते अच्चा कर्कशो ।
आरोग्यकाम पथ्यमश्नीयात् ।
अनेन बलिना सार्धं कथं विगृह्णीयाम् ?
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः ।
मार्मिकः को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ।

इच्छया कुरुते देहमिच्छया वितनुर्भवेत् ।
क्रीडते भगवाँल्लोके बालः क्रीडनकैरिव ॥
[1]मति बधान सुग्रीवे राक्षसेन्द्रं गृहाण वा ।
अथवा भरताद् भोगान् लक्ष्मण प्रगृहाण वा ॥
सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं विचिन्वन्ति नरास्त्रयः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥
गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ।
सुस्वादुतोयाः प्रभवन्ति नद्यः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥
परकृतेऽदीन् व्यगृह्णीम समुद्रसतरम च ।
सा हृतेति प्रश्नः रामस्तुपातिप्रन्ससस्तुत ॥
यावदेव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः ।
अभयं कुरु तावदाशु मे गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥

ज्ञानकी सम्पत्ति बहुत कल्याणको बढ़ाती है ।
पुत्रको चाहिये कि वह अपने अच्छे कामोंसे पिताको प्रसन्न करे ।
देवोंने समुद्रसे अमृतको मथा ।

---

१ । रावणके मारने बाद यह रामकी सीताके प्रति उक्ति है ।

मेरे यह पुस्तक बड़े दामसे खरीदी है।

जब वह अपना वृत्तान्त कह रही है, उसे बीचमें मत रोको।

"आवत्तिया अकेली नहीं आती" इस कहावतकी सचाई आज मुझे मालूम पड़ी।

बलमें भीम दुर्योधनसे कम नहीं था।

तुमको प्रतिदिन क्षीण होते देख मैं खिन्न हूं।

संज्ञाशब्द।

अनुक्रम (अनुक्रम) पु—क्रम

अन्तक (अन्तक) पु—यम

अभय (अभयम्) न—निर्भयता

उत्कण्ठाकारण (न) (तत्पु० उत्कण्ठा—स्त्री—चिन्ता+कारण—न)—चिन्ताका कारण

एकदेश (एकदेश) पु—भाग

ओजस्विता (स्त्री)—तेज

कमण्डलु (पु, न)—कमण्डलु

कल्याणपरम्परा (स्त्री तत्पु०, कल्याण—न सुख+परम्परा स्त्री पंक्ति)—सुखोंकी पंक्ति

क्रीडनक (क्रीडनकम्) न—खिलौना

क्षिति (स्त्री)—पृथ्वी

क्षीरनिधि (पु तत्पु०)—दुग्ध-समुद्र

चाणक्य (चाणक्य) पु—चन्द्रगुप्तके मन्त्रीका नाम

जनप्रवाद—(पु तत्पु०, जन—पु+प्रवाद—पु उक्ति)—लोगोंकी उक्ति, कहावत

जव (जव) पु—वेग

तिल (तिल) पु—तिल

तोय (तोयम्) न—जल

दोष (दोष) पु—अपराध

भरत (भरत) पु—भरत

भुजङ्गपाश (पु)—कर्मधा०, भुजङ्ग—पु—सर्प, पाश—पु)—सर्पोंका फंदा

भोग (भोग) पु—उपभोग, सुख

मधुव्रत (मधुव्रत) पु (बहु०, मधु—न शहद+व्रत)—भ्रमर

मरन्द—पुष्परस
मरुत्सुत (पु, तत्पु०, मरुत्—पु वायु + सुत — पु —पुत्र)— वायुका पुत्र, हनुमान्
माणवक—(माणवक.) पु —किसी पुरुषका नाम (यहां विदूषकका नाम)
माष (माष) पु —उरदी
मूल्य (मूल्यम्) न —दाम
राक्षसेन्द्र (राक्षसेन्द्र पु तत्पु, राक्षस —पु + इन्द्र—पु उत्तम, राजा) —राक्षसोंका राजा, विभीषण
लक्ष्मण (लक्ष्मण) पु —लक्ष्मण
वत्स (वत्स) पु —गौका वत्स
वासुदेव (वासुदेव) पु —वसुदेवका पुत्र, कृष्ण
शची (स्त्री)—इन्द्रकी स्त्री
शिलातल—(पु, न तत्पु०, शिला स्त्री —पत्थर + तल—पु, न) पत्थरका तल
सुग्रीव (सुग्रीव) पु —सुग्रीव
सुचरित (न कर्मधा, सुष्ठु चरितम्) सच्चरित्र
सुधा (स्त्री)—अमृत
सुयोधन (सुयोधन) पु —दुर्योधन
स्वप्न (स्वप्न) पु —स्वप्न

विशेषण ।

अपेय—पीनेसे अयोग्य
आरोग्यकाम (बहु०, आरोग्य—न नीरोगता + काम—पु इच्छा) —नीरोगता चाहनेवाला
आर्य्य—पूज्य
कृतविद्य (बहु०, कृत—की हुई— + विद्या—स्त्री)—जिसने विद्या प्राप्त की, पण्डित
गतजीव (बहु०, गत = गम् + त + जीव—पु)—मृत
[1]गुणज्ञ (उपपदस०, गुणं जानातीति गुणज्ञः)—गुणोंको जाननेवाला
दुरात्मन् (बहु०, दुर् खराब + आत्मन् —पु)—दुष्ट
निर्गुण (बहु०, निर्गता गुणा यस्मात् स निर्गुणः)—गुणहीन

---

[1] यह एक तत्पुरुषका प्रकार है, जो उपपदस० कहाता है, यह संज्ञा तथा धातुजन्य होता है ।

बलिन्—बलवान्
मार्मिक—वस्तुके तत्त्वको अच्छी तरह जाननेवाला
वितनु (बहु०, विगता तनुयस्य स वितनु, वि+तनु—स्त्री शरीर) शरीरहीन
समारब्ध—सम्+आ+रभ्—भ्वा आ+त)—आरब्ध
सुवर्णपुष्पित (तत्पु०)—सुवर्णके फूलोंसे युक्त
सुस्वादु—अतिस्वादयुक्त

अव्यय।

अनुदिवसम् (अव्य)—प्रतिदिन
अन्तरा—१ बीचमें, २ बिना (यह द्वितीयाके साथ आता है)
अन्तरेण—बिना (यह द्वितीयाके साथ आता है)
आशु—शीघ्र
आसाद्य (आ+सद् का प्रेर०—क्त्वा अथवा ल्यप्)—पाकर
एव—केवल
यद्—जो
यत्कृते (तत्पु०, यस्य कृते, यद्—जो +कृते अव्य लिये)—जिसके लिये
सहसा—अकस्मात्
सेवितुम् (सेव्—भ्वा आ +तुम्) —सेवा करनेके लिये

धातु।

अश् (अश्नाति, क्रया पर)—खाना
उप+स्था (उपतिष्ठति—भ्वा पर) —पास रहना
क्री ([1]क्रीणाति,—णीते क्रया उभ) —खरीदना, विके साथ (आत्म)—बेचना

१। विक्रीणीते परिक्रीणीते, अवक्रीणीते—परि, वि, अवपूर्वक क्री धातु आत्मनेपद होता है। उभयपदी धातुओंमें जब क्रियाका फल कर्तामें होनेवाला हो तब आत्मनेपद, तथा जब वह अन्यमें होनेवाला हो तो परस्मैपद होता है। परि, वि, अवपूर्वक क्री धातु क्रियाका फल अन्यगामी होनेपर भी आत्मनेपदी होता है।

नु पर ।

	वर्त ।				लङ् ।	
प्र पु	नौति	नुत	नुवन्ति	प्र पु	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
म पु	नौषि	नुथ	नुथ	उ पु	अनवम्	अनुव	अनुम

नियम —

२। नौति, अनवम्—व्यञ्जनादि विकारक प्रत्ययोंसे पूर्व नु के उ को वृद्धि होती है।

३। नुवन्ति, अनुवन्—स्वरादि अविकारक प्रत्ययोंसे पूर्व अन्तिम उ वा ऊ को उव् होता है।

इ—पर ।

	वर्त ।				लोट् ।		
प्र पु	एति	इत	यन्ति	प्र पु	एतु	इताम्	यन्तु
म पु	एषि	इथ	इथ	उ पु	अयानि	अयाव	अयाम

	लङ् ।			विधिलिङ् ।		
प्र पु	ऐत्	ऐताम्	आयन्	इयात्	इयाताम्	इयुः
उ पु	आयम्	ऐव	ऐम			

आ+इ+अन्=आ+य्+अन् (यन्)=आयन्। आ+इ+अम्=आ+ए+अम्=आ+अयम्=आयम्।

नियम —

४। स्वरादि अविकारक प्रत्ययसे पूर्व इ धातुके इको य् होता है।

अधि इ—आ ।

	वर्त ।			लोट् ।		
प्र पु	अधीते	अधीयाते	अधीयते	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
उ पु	अधीये	अधीवहे	अधीमहे	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ् । विधिलिङ् ।

प्र पु अध्यैत अध्यैयाताम् अध्यैयत

उ पु अध्यैयि अध्यैवहि अध्यैमहि अधीयीय अधीयीवहि अधीयीमहि

अधीयते—इ + अते = इयते, अधि + इयते = अधीयते ।

अधयै—इ + ऐ = ए + ऐ = अयै, अधि + अयै = अधयै ।

अध्यैयि—आ (आगम) + इ + इ = आ + इयि = ऐयि,
अधि + ऐयि = अध्यैयि ।

अधीयीय—इ + ईय = इयीय, अधि + इयीय = अधीयीय ।

नियम —

१ । स्वरादि अविकारक प्रत्ययके पूर्व अधि + इ के इ को इय् होता है ।

ब्रू—उभ वर्त ।

पर । आत्म ।

प्र पु ब्रवीति ब्रूत ब्रुवन्ति ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते

पर । लोट् आ ।

म पु ब्रूहि ब्रूतम् ब्रूत उ पु ब्रवै ब्रवावहै ब्रवामहै

लङ् ।

पर । आत्म ।

प्र पु अब्रवीत् अब्रूताम् अब्रुवन् अब्रूथा अब्रुवाथाम् अब्रूध्वम्

उ पु अब्रवम् अब्रूव अब्रूम अब्रुवि अब्रूवहि अब्रूमहि

विधिलिङ्—प्र पु ए व ब्रूयात्—ब्रुवीत ।

नियम —

—। ब्रवीति, ब्रवीतु, अब्रवम्—व्यञ्जनादि विकारक प्रत्ययके पूर्व ई आगम होता है ।

वर्त्त ।

प्र पु	आह	आहतुः	आहुः
म पु	आत्थ	आहथुः	

७। एक दुष्ट धातु के, जिसका अर्थ 'कहना' है, ऊपर लिखे हुए पांच रूप होते हैं। पाणिनि इनको ब्रू के रूप कहते हैं।

शी—आत्म ।

	वर्त्त ।			लोट् ।		
प्र पु	शेते	शयाते	शेरते	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
उ पु	शये	शेवहे	शेमहे	शयै	शयावहै	शयामहै

	लङ् ।			विधिलिङ् ।		
प्र पु	अशेत	अशयाताम्	अशेरत	शयीत	शयीयाताम्	शयीर

नियम —

८। सब सार्वधातुक लकारोंमें शीके ई को गुण होता है, विधि लिङ्को छोड़कर इतर सब सार्वधातुक लकारोंमें प्र पु के बहुवचनमें र् आगम होता है, अर्थात् रते, रताम्, तथा रत—ये प्रत्यय हैं।

सू—आत्म ।

	वर्त्त ।			लोट् ।			
	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।		ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
उ पु	सुवे	सूवहे	सूमहे	उ पु	सुवै	सुवावहै	सुवामहै

	लङ् ।				विधिलिङ् ।		
प्र पु	असूत	असुवाताम्	असुवत	प्र पु	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्

नियम —

९। सुवै, सुवावहै, सुवामहै—सू धातुके लोट्के उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके प्रत्यय अविकारक हैं।

किं ब्रूय—कुतोऽद्यापि ते तात इति । [illegible]

प्रलपता च सहस्रधा न दौर्मनस्या [illegible]

तमेव (परमात्मानम्) वि'दित्वातिमृत्युमेति [illegible]

अत्यस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्,

विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥

महदपि परदु:खे शीतलं सम्यगाहुः ।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।

कपिलो यदि सर्वज्ञः कणादो नेति का प्रमा ।

यस्याः कुसुमशय्याऽपि कोमलाङ्ग्या रुजाकरी ।

साऽधिशेते कथं देवी हुताशनमयीं चिताम् ॥

किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।

इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा ॥

सरस्वतीं सदा वन्दे यदुपास्ति समुच्छ्रिता ।

काव्यानि कुसुमानीव गुम्फते कविषट्पदः ॥

कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम् ।

चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥

१। पति पति के साथ अन्वित है

श्रुति पाया है । प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें

विपरीतेषु कालेषु परिक्षीणेषु बन्धुषु ।
[1]त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतवत्सल ॥
नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥

वह आश्रम धन्य है जिसका वह प्रभु है ।
हे भगवन् ! मुझ पापीको भयानक नरकसे छुड़ाओ ।
हमलोगोंको प्रातःकाल उठना चाहिये और काव्योंको पढ़ना चाहिये ।
कहिये मुझे किस मार्गसे पञ्चवटीको जाना चाहिये ।
मुनिने कहा, "महाराज, हम लोग इस अवस्थामें सुखी हैं" ।
योग्य समयपर आरम्भ किये गये काम सफल होते हैं ।
वाह ! यह खूब कहा गया है कि दूसरोंका दुःख हम लोगोंका दुःख नहीं है ।
तुमने व्याकरण पढ़नेके लिये अपने लड़केको काशी भेजकर अच्छा काम किया ।

संज्ञाशब्द ।

अङ्गुलीयक (अङ्गुलीयकम्) न—अंगुठी	अब्ज (अब्ज अम्) पु, न—शङ्ख
अग्रहस्त (अग्रहस्तः) पु—हाथका आगेका भाग (कर्मधा०, अग्रश्चासौ हस्तश्च अग्रहस्तः)	अयन (अयनम्) न—मुक्ति
	अर्जुन (अर्जुनः) पु—अर्जुन
	उपास्ति (स्त्री)—उपासना

१। त्राहि यह आर्षप्रयोग है। यह 'त्रायस्व' के लिये आया है।

णाद (कणाद) पु—वैशेषिक दर्शनके कर्ता
पिल (कपिल) पु—कपिलमुनि
श्रेष्ठ (तत्पु) कवि-पु+इन्दु पु श्रेष्ठ)—कवियोंमें श्रेष्ठ
रणवामन (तत्पु०, कारण न + वामन—पु विष्णु, जिसने कारण वश वामनावतार धारण किया।
रणकेसर (किरणकेसर-रम् पु, न कर्म०, किरणा एव केसराणि, किरण-पु केसर-पु, न)— किरणरूपी केसर
ण (गण) पु—गण
ङ्गा (स्त्री)—गङ्गा
रुणी (स्त्री)—स्त्री
चिर (गोचर) पु—मार्ग
क्र (चक्रम्) न—पहिया
ता (स्त्री)—नयायन
रुषोत्तम (पुरुषोत्तम पु तत्पु, पुरुषोंमें उत्तम, पुरुष—पु + उत्तम)—विष्णु

प्रग्रह (प्रग्रह) पु—लगाम
प्रत्युषस् (न)—प्रात काल
प्रभाव (प्रभाव) पु—बड़ापन, बल
प्रमा (स्त्री)—यथार्थज्ञान, वस्तु-तत्त्वज्ञान
भृत्य (भृत्य) पु—नौकर
महीभुज् (पु)—पृथ्वीपालक, राजा
मुनि (पु)—ऋषि
रथिन् (पु)—सारथि
राजर्षि (पु) (राजन्-पु+ऋषि)—ऋषितुल्य राजा
विक्रम (विक्रम) पु—पराक्रम
विषय (विषय) पु—इन्द्रियोंका विषय
शय्या (स्त्री)—बिछौना
शरण (शरणम्) न—रक्षक
शार्ङ्ग (शार्ङ्गम्) न—विष्णुका धनु
सन्देह (सन्देह) पु—संशय
समर (समर) पु—युद्धक्षेत्र
हय (हय) पु—घोड़ा
हेतु (पु)—कारण

विशेषण।

मित (नञ्स०, अ+मित=मा+त)—अपरिमित

अर्ह—योग्य
अल्प—थोड़ा

आयुष्मत्—चिरजीवी
उद्भिन्न (उद्+भिद्+त) खुला हुआ, प्रकट
कुसुमित—पुष्पित
कोमलाङ्गी स्त्री (बहु कोमल—विशे० + अङ्ग—न कोमल-शरीरवाली
क्षुद्र—नीच
ज्वलत् (स्त्री ज्वलन्ती—ज्वल् भ्वा पर का वर्त कृ) चमकता हुआ
धर—पकड़नेवाला, धारण करनेवाला
परन्तप—शत्रुओंको ताप देनेवाला
परिक्षीण (परि+क्षि+त)—नष्ट

भीरु—डरपोक
मित (मा+त) परिमित
रामायणी (स्त्री)—रामायणकी
दुःखाकर (स्त्री करी) (दुःखा करो दुःख) दुःख देनेवाला
वत्सल—दयालु, प्रेमी
विचारमूढ़ (तत्०)—मूर्ख
व्यतीत (वि+अति+इ+त)—बीता हुआ
शान्त (शम्+त)—जितेन्द्रिय
शीतल—ठंढा, सर्द
समुच्छ्रित (सम्+उद्+श्रि+त) आश्रित
सर्वज्ञ (उपपद स०, सर्वं जानाती) सब जाननेवाला

अव्यय।

सम्यक्—अच्छीतरह
सुखम्—अनायाससे

हा—हाय!
हातुम् (हा+तुम्) छोड़नेके लिये

धातु।

अधि+इ (अधीते-अ आ)—पढ़ना
इ (एति अ पर)—जाना, उपके साथ—जाना
चिन्त् (चिन्तयति—चु पर)—सोचना, सम्‌के साथ—सोचना

नु (नौति अ पर)—स्तुति करना
ब्रू (ब्रवीति-ब्रूते अ उभ)—बोलना
भा (भाति अ पर)—मालूम होना, प्रतिके साथ—मालूम होना
विद् (वेत्ति अ पर)—जानना

शी (शेते—अ आ)—लेटना ; अधिके साथ—सोना
(सूते-अ आ)—जन्म देना

हन् (हन्ति—अ पर)—मारना, नष्ट करना

पाठ २८।

अदादिगणके धातु।

माणवकं धर्मं शास्ति गुरु—गुरुजी माणवकको धर्मका उपदेश ते हैं (शास् द्विकर्मक है)।

अश्रूणि प्रमृड्ढि मङ्गलकाले रोदितुं नोचितं ते—आंसू पोंछो मङ्गलके य तुमको रोना उचित नहीं है।

हे दुराचारेन्द्रजित्! यदि काकुत्स्थं नेडिषे तर्हि न प्राणिषि याना च नेशिषे—रे दुष्ट इन्द्रजित्! यदि तुम रामकी स्तुति न करोगे न जियोगे और न कपटोंके प्रभु होगे।

किमिति तूष्णीमाध्वे—तुमलोग चुप क्यों बैठे हो?

हे राजन्! भवन्तं सर्वाः प्रजाः स्तुवन्ति—हे महाराज! आपकी व प्रजायें स्तुति करती हैं।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्—मैं आपका शिष्य हूं, मुझ रणागतको पढ़ाइये।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः—भागुरि अव तथा अपि इन दो पसर्गों के अ का लोप चाहते हैं। अत एव अकारका लोप विकल्पसे होता। इस लोगोंको दोनो प्रकारके रूप मिलते हैं। जैसे अपिधानम् वा धानम् (ढाकना), अवगाह वा वगाह (स्नान)।

---

११ अधिपूर्वक शी, स्था, तथा आस् का आधार कर्म होता है।

इस पाठमें कुछ और अदादिगणके धातु दिये गये हैं।

	ईश्—आ ।			ईड्—आ ।		
		वर्त			लोट् ।	
प पु	ईष्टे	ईशाते	ईशते	ईष्टाम्	ईडाताम्	ईडताम
म पु	ईशिषे	ईशाथे	ईशिध्वे	ईडिष्व	ईडाथाम्	ईडिध्व
		लङ्			लङ् ।	
म पु	ऐष्ठा	ऐशाथाम्	ऐड्ढ्वम	ऐड्ठा	ऐडाथाम्	ऐड्ढ्वम

नियम ,—

१। ईशिषे, ईडिध्वे, ऐड्ढ्वम्—ईश् तथा ईड् धातुओंमें स् त
ध्व् से आरम्भ होनेवाले प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है, पर ध
(लङ् म पु ब व) के पूर्व नहीं होता।

सृज्+त=सृष् त=सृष+ट=सृष्ट, सृज+त=सृष्+त=
+ट=सृष्ट, यज्+तुम्=यष्+तुम्=यष्+टुम्=यष्टुम्, ईश्+
=ईष्+ते=ईष्+टे=ईष्टे, परन्तु ईश्+ध्वे=ईश्ध्वे—

(अ) सृष्ट, दृष्ट्वा, यष्टुम्—व्रश्च् भ्रस्ज, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्र
तथा शकारान्त और छकारान्त धातुओंके अन्तिम वर्णको, अनुनासि
या अन्तःस्थको छोड कोई व्यञ्जन आगे रहनेपर, अथवा पदके अन्त
होनेपर, ष् होता है।

यह एक सामान्य नियम है। ऐसे २ सामान्य नियम बड़े उपयो
हैं और अनेक रूपोंके बनानेमें सहायता देते हैं। वे (अ), (आ
इत्यादिसे चिन्हित हैं।

आ+ईश्+ध्वम्=आ+ईष्+ध्वम्=आ+ईड्+ध्वम्=आ
ईड्+ढ्वम्=ऐड्ढ्वम्।

(आ) पदका अनुनासिक या अन्तःस्थके सिवा कोई व्यञ्जन, वर्ग

ीय वा चतुर्थ वर्ण आगे रहने पर, अपने वर्गके तृतीय वर्णमें बदल जाता, ऐसी अवस्थामें घ् को ङ् होता है।

(१२ वे पाठमें घुष्य इत्यादि रूपोंको देखो।

रुद्—पर वर्त। जक्ष्—पर लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
पु	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु

स्वप्—पर लङ्।

पु	अस्वपत् पीत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
पु	अस्वप पी	अस्वपितम्	अस्वपित

जक्ष्—पर लङ्।

पु	अजक्षत् क्षीत्	अजक्षिताम्	अजक्षु
पु	अजक्ष -क्षी	अजक्षितम्	अजक्षित

श्वस्—पर विधि। प्र+अन्—पर विधि।

प्र पु श्वस्यात्—इत्यादि। प्र पु प्राण्यात्—इत्यादि।

२१। रुद्, स्वप्, श्वस्, अन्, तथा जक्ष् धातुमें विधिलिङ्के सिवा
ता सब वलादि प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है। लङ्में प्र पु के
ए व में अनुनासिकका लोप होता है, तथा लङ्के प्र पु के ब व में
स् लगता है।

स्तु—उभ।

पर—वर्त।

प्र पु	स्तौति स्तवीति	स्तुतः स्तुवीतः	स्तुवन्ति

आत्म।

प्र पु	स्तुते स्तुवीते	स्तुवाते	स्तुवते

नियम —

४। शिन्ध, शिप्प —अजनादि अविकारक प्रत्ययोंके पूर्व शासके आ को इ होता है। शाधि लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका रूप है।

(क) शिष्ठ, उषित —शास्, वस्, तथा घस् के स् को ष् होता है यदि अ वा आ को छोड़ उसके पूर्व कोई स्वर वा कवर्गीय वर्ण हो। घस्का उदाहरण परोक्षभूतमें आवेंगे।

५। शासति, अशासु —शास्, जक्ष्, चकास्, जागृ, और दरिद्रा धातु वर्तमान तथा लोट्के प्र पु, के बहुवचनमें अनुनासिकका लोप होता है और लङ्के प्र पु के ब व में उस् होता है।

६। अद्विषन्-अद्विषु, अयान्-अयु —द्विष् तथा आकारान्त धातुके के लङ्के प्र पु के ब व में विकल्पसे उस होता है।

७। अजागरु, अयु —उस्के पूर्व धातुके अन्त्यस्वरको गुण होता है, और आकारान्त धातुओंके आकारका लोप होता है।

(क) आध्वे, अवध्वम्—धकारादि प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके अन्तिम स्का लोप होता है।

(ख) अचका —कात् द्, अचकात्-द्—धातुके अन्तिम स्को लङ्के म पु के ए व में विकल्पसे तथा लङ्के प्र पु के ए व में नित्य त वा द् होता है।

दरिद्रा—पर ।

	वर्त ।			लोट् ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	दरिद्राति	दरिद्रित	दरिद्रति	दरिद्रातु	दरिद्रिताम्	दरिद्रतु

लङ् । विधिलिङ् ।

प्र पु अदरिद्रात्, अदरिद्रिताम् अदरिद्रु, प्र पु दरिद्रियात्—इत्यादि

नियम —

८। दरिद्राके अन्तिम आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने पर इ होता है, तथा स्वरादि विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है।

अद्—पर।

वर्त।				लोट्।		
प्र पु	अत्ति	अत्त	अदन्ति	म पु	अद्धि	अत्तम्	अत्त

लङ्।

प्र पु	आदत्	आत्ताम्	आदन्	म पु	आदः	आत्तम्	आत्त

विधि।

प्र पु अद्यात्—इत्यादि।

नियम —

९। आदः, आदत्—अद्को प्र पु तथा म. पु के एकवचनमें अ आगम होता है।

वच्—पर। लोट्।

वर्त।

प्र पु	वक्ति	वक्त	रूप नहीं होता	वक्तु	वक्ताम्	वचन्तु
म पु	वक्षि	वक्थ	वक्थ	वग्धि	वक्तम्	वक्त

लङ्।

प्र पु	अवक् ग्	अवक्ताम्	अवचन्
उ पु	अवचम्	अवच्व	अवच्म

विधि।

प्र पु वच्यात्—इत्यादि।

१०। वच् एक दोषी धातु है। कुछ लोगोंके अनुसार इसके वर्तमान-में प्र पु के ब व का रूप नहीं होता, औरोंके मतके अनुसार सब

इन्द्रजित् (पु)—रावणका पुत्र, रावणि
इतिहास (इतिहास) पु—इतिहास
कथा (स्त्री)—किस्सा
काकुत्स्थ (काकुत्स्थ) पु—ककुत्स्थ राजाका वंशज, राम
कोविदार (कोविदार) पु—एक वृक्ष
गाण्डीव (गाण्डीवम्) न—अर्जुनका धनु
गार्गी (स्त्री)—गार्ग्यकी स्त्री
[१]गिर् (स्त्री)—वाणी
जठर (जठर—रम्) पुं, न—पेट
जनन (जननम्) न—जन्म
जननी (स्त्री)—माता
जन्मान्तर (जन्मान्तरम्) (न, कर्म०, अन्तरका अर्थ अन्य है, अन्य-ज्जन्म जन्मान्तरम्) दूसरा जन्म
जाति (स्त्री)—वर्ण
तारका (स्त्री) नक्षत्र
दल (दलम्) न—पत्ता
देव (देव) पु—राजा
धृतराष्ट्र (धृतराष्ट्र) पु—कौरवोंके पिता
नलिनी (स्त्री) कमलकी लता
निबन्धन (निबन्धनम्) न—आश्रय
पितामह (पितामह) पु—पिताके पिता (मह प्रत्यय है)
मत्सर (मत्सर) पु—डाह
माया (स्त्री)—कपट
मुरारि (पु मुर-पु एक दैत्य+अरि-शत्रु)—मुर दैत्यका शत्रु, श्रीकृष्ण
मोक्ष (मोक्ष) पु—मुक्ति
वदतो व्याघात (वदतो व्याघात) (पु वदत वदत्—वद्के वर्तमान कृ की षष्ठीका ए व, बोलनेवालेका+व्याघात पु विरोध)—एक दोष है, जो वक्ता जब अपनी कही हुई बातके विरुद्ध कहने लगता है तब होता है।
विकर्षण (विकर्षणम्) न—खींचना
वियद्द्रुम (पु कर्म०, वियदेव द्रुम

१। म ए व गी, त द्वि व गीर्भ्याम्, स न ब गीर्षु पु, पूर्भ्यं, पूर्षु, धूर्भ्यं, धूर्षु—व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर गिर्, पुर्, तथा धुर्के इ तथा उ को दीर्घ होता है। आशीर्भि, आशीःषु वा आशीष्षु—आशिस्के उपान्त्य इ को भी इसी प्रकार दीर्घ होता है।

वियद्द्रुम, वियत् न आकाश + द्रुम-पु पेड) आकाशरूपी पेड
विश्वासभूमि (स्त्री)(तत्पु०, विश्वास पु + भूमि स्त्री) विश्वासका स्थान, विश्वस्त मनुष्य
व्याधि (पु)—रोग
शयन (अयनम्) न—सोना
शिष्य (शिष्य) पु—छात्र
सलिल (सलिलम्) न—जल
सव्यसाचिन् (पु)—अर्जुनका नाम (सव्य-विशे० बाया + साचिन्—सच् भ्वा उभ =धनुषर चढाना। अर्जुन बाये हाथसे भी वाण छोड सकता था)

विशेषण।

अकरुण (बहु०, नास्ति करुणा यस्य सोऽकरुण, अ + करुणा—स्त्री दया)—निर्दय
अक्षर—अनश्वर
अध्यासित (अधि + आस् अ आ + त)—बसा हुआ
अनुकम्पित (अनु + कम्प भ्वा आ + त)—अनुगृहीत
अपार (बहु०)—जिसका अन्त नहीं, अनन्त
अपुत्र (बहु)—जिसको लडका नहीं वह
अर्हत् (अर्ह्-भ्वा पर का वर्त कृ) —योग्य, पूज्य,
अशरण (स्त्री-अशरणा, बहु०, अ + शरण—न आश्रय) अनाथ
उत्कृष्ट (उद + कृष + त)—उत्तम
उचित—योग्य
उभ—दो (सर्वदा द्वि व में)
एकाकिन्—अकेला
कृपण—नीच, अविचारी
ग्रस्त (ग्रस् + त)—खाया गया हुआ, नष्ट
चपल—चञ्चल
तरल—चञ्चल
दक्षिण—दहना, कुशल
दुराचार (बहु०, दुष्ट आचारो यस्य स दुराचार, दुर् खराब, बुरा + आचार—पु व्यवहार) बुरे व्यवहारका

रिच्—उभ।

वर्त पर। आत्म।

प्र पु रिणक्ति रिङ्क्तः रिञ्चन्ति म पु रिङ्क्षे रिञ्चाथे रिङ्ग्ध्वे

लोट्-पर। आत्म।

म पु रिङ्ग्धि रिङ्क्तम् रिङ्क्त म पु रिङ्क्ष्व रिञ्चाथाम् रिङ्ग्ध्वम्
उ पु रिणचानि रिणचाव रिणचाम रिणचै रिणचावहै रिणचामहै

लङ्-पर

म पु अरिणक्-ग् अरिङ्क्ताम् अरिञ्चन्

आत्म।

म पु अरिङ्क्थाः अरिञ्चाथाम् अरिङ्ग्ध्वम्

विधि पर। आत्म।

प्र पु रिञ्च्यात्—इत्यादि रिञ्चीत—इत्यादि

रिच् + ध्वम् = रिन् च् + ध्वम् = रिन्ग् + ध्वम् (पाठ १३ वां निय. २) = रिङ्ग्ध्वम् (नीचेके २ रे नियमके अनुसार न् को ङ हुआ)।

२। पदके बीचमें न् तथा म् को उसके आगे रहनेवाले व्यञ्जनके (श् ष्, स् के सिवा) वर्गका अनुनासिक होता है (२२ वें पाठका २रा नियम देखो)।

भिद्—उभ।

वर्त पर। आत्म।

म पु भिनत्सि भिन्त्थः भिन्त्थ प्र पु भिन्ते भिन्दाते भिन्दते

लोट् पर।

उ पु भिनदानि भिनदाव भिनदाम

आत्म।

प्र पु भिन्ताम् भिन्दाताम् भिन्दताम्

लङ —पर।

प्र पु	अभिनत्-द्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
म पु	अभिन-नत्-द	अभिन्तम्	अभिन्त

आत्म।

प्र पु	अभिन्त	अभिन्दाताम्	अभिन्दत
म पु	अभिन्था	अभिन्दाथाम्	अभिन्द्ध्वम्

विधि—पर।

प्र पु भिन्द्यात्—इत्यादि।

आत्म।

प्र पु भिन्दीत—इत्यादि

भिद+हि=भिनद्+हि=भिनद्+धि (२० वा पाठ, १५ वा नियम)=भिन्धि।

हिस्—पर।

वर्त।			लोट्।		
प्र पु हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति	म पु हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त

लङ्।			विधि।
प्र पु अहिनत्-द्	अहिंस्ताम्	अहिंसन्	हिंस्यात्—इत्यादि।
म पु अहिन-नत्-द्	अहिंस्तम्	अहिंस्त	

३। हिंस्+मि = हिस्+मि=हिनस्+मि =हिनस्मि—यदि धातुमें अनुनासिक हो तो रुधादिगणके विकरणके पूर्व उसका लोप होता है।

४। अहिन—नत्,-अहिनत्—लङ् के म पु के ए व में धातुके अन्तिम स् को विकल्पसे त् होता है, तथा लङ् के प्र पु के ए व में नित्य।

हिंस्+हि=हिस्+हि=हिनस्+हि=हिनस+धि=हिन्+धि (२८ वा पाठ, नियम ८)=हिन्धि।

रिच्—उभ ।

वर्त पर । आत्म ।

प्र पु रिणक्ति रिङ्क्त रिञ्चन्ति प्र पु रिङ्क्ते रिञ्चाते रिञ्चते

लोट्-पर । आत्म ।

म पु रिङ्ग्धि रिङ्क्तम् रिङ्क्त म पु रिङ्क्ष्व रिञ्चाथाम् रिङ्ग्ध्वम्

उ पु रिणचानि रिणचाव रिणचाम रिणचै रिणचावहै रिणचामहै

लङ्-पर

म पु अरिणक्-ग् अरिङ्क्ताम् अरिङ्क्त

आत्म ।

म पु अरिङ्क्थाः अरिञ्चाथाम् अरिङ्ग्ध्वम्

विधि पर । आत्म ।

प्र पु रिञ्च्यात्—इत्यादि रिञ्चीत—इत्यादि

रिच्+ध्वम्=रिन् च्+ध्वम्=रिन्ग्+ध्वम् (पाठ १३ वां निय २)=रिङ्ग्ध्वम् (नीचेके २ रे नियमके अनुसार न् को ङ हुआ)।

२। पदके बीचमें न् तथा म्को उसके आगे रहनेवाले व्यञ्जनके (श्, ष्, स् के सिवा) वर्गका अनुनासिक होता है (२२ वें पाठका २रा नियम देखो)।

भिद्—उभ ।

वर्त पर । आत्म ।

प्र पु भिनत्ति भिन्त्तः भिन्दन्ति प्र पु भिन्ते भिन्दाते भिन्दते

लोट् पर ।

उ पु भिनदानि भिनदाव भिनदाम

आत्म ।

प्र पु भिन्ताम् भिन्दाताम् भिन्दताम्

लङ्—पर ।

प्र पु	अभिनत्-द्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
म पु	अभिन -नत्-द	अभिन्तम्	अभिन्त

आत्म ।

प्र पु	अभिन्त	अभिन्दाताम्	अभिन्दत
म पु	अभिन्था	अभिन्दाथाम्	अभिन्द्ध्वम्

विधि—पर ।

प्र पु भिन्द्यात्—इत्यादि ।

आत्म ।

प्र पु भिन्दीत—इत्यादि

भिद + धि = भिनद् + हि = भिन्द् + धि (२७ वां पाठ, १५ वां नियम) = भिन्द्धि ।

हिंस्—पर ।

वर्त । लोट् ।

प्र पु हिनस्ति हिंस्तः हिंसन्ति म पु हिन्धि हिंस्तम् हिंस्त

लङ् । विधि ।

प्र पु अहिनत्-द् अहिंस्ताम् अहिंसन् हिंस्यात्—इत्यादि ।

म पु अहिन -नत्-द् अहिंस्तम् अहिंस्त

३ । हिंस् + ति = हिस् + ति = हिनस् + ति = हिनस्ति—यदि धातुमें अनुनासिक हो तो रुधादिगणके विकरणके पूर्व उसका लोप होता है ।

४ । अहिन —नत्,-अहिनत्—लङ् के म पु और ए व में धातुके अन्तिम स् को विकल्पसे त् होता है, तथा लङ्के प्र पु और ए व में नित्य ।

हिंस् + हि = हिस + हि = हिनस् + हि = हिनस + धि = हिन् + धि (२८वां पाठ, नियम ६) = हिन्धि ।

लिह्—अ उभ ।

	वर्त. पर. ।				आत्म ।	
प्र पु	लेढि	लीढ	लिहन्ति	म. पु	लिक्षे	लिहाथे	लीढ्वे
म पु	लेक्षि	,,	लीढ	उ पु	लिहे	लिह्वहे	लिह्महे

लोट्—पर । आत्म ।

म पु लीढि लीढम् लीढ उ पु लेहै लेहावहै लेहामहै

लङ्—पर ।

प्र पु अलेट्-ड् अलीढाम् अलिहन्

आत्म ।

म पु अलीढा अलिहाथाम् अलीढ्वम्

विधि पर । आत्म ।

प्र पु लिह्यात्—इत्यादि । लिहीत—इत्यादि ।

लिह् + ति = लेह् + ति = लेढ् + ति = लेढ् + धि = लेढ् + ढि = लेढि, लिह् + से = लिढ् + से = लिक् + से [२८ वां पाठ, नि (ए)] = लिक् = षे = लिक्षे, लिह् + ध्वे = लिढ् + ध्वे = लिढ् + ढ्वे = लीढ्वे

अलिह् + त् = अलेह् + त् = अलेह् + अलेढ् = अलेट्—ड् ।

लिह् + त (भूत कृ प्रत्यय) = लिढ् + त = लिढ् + ध = लिढ् + ढ = लीढ ।

लेढुम् (तुम्), लीढ्वा (अव्य भू कृ)

लेढि, लीढ—

(अ) अनुनासिक वा अन्त स्थको छोड कोई व्यञ्जन आगे होनेपर, वा पदको अन्तमें होनेपर धातुको अन्तिम ह् को ढ् होता है ।

(आ) वर्गके चतुर्थ वर्णके बाद आनेवाले प्रत्ययसम्बन्धी त तथ थ को ध होता है ।

(इ) ढ् आगे रहने पर ढ् का लोप होता है और उसके पूर्व रहने- वाले स्वरको (ऋ के सिवा) दीर्घ होता है, यदि वह ह्रस्व हो।

दुह—उभ।

वर्त पर।				आत्म।		
पु	धोक्षि	दुग्ध	दुग्ध	म पु	दुग्धे	दुहाते	दुहते
पु	दोह्मि	दुह्व	दुह्म	म पु	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे

लोट्—पर। आत्म।

पु, दुग्धि दुग्धम् दुग्ध धुक्ष्व दुहाथाम् धुग्ध्वम्

लङ्—पर। आत्म।

पु अधोक्‌ग् अदुग्धाम् अदुहत म पु अदुग्धा अदुहाथाम् अधुग्ध्वम्

विधि—दुह्यात्—दुहीत।

दुह्+त=दुघ्+त=दुघ्+ध=दुग्ध (भू कृ), दुह्+तुम्= ह्+तुम्=दोघ्+तुम्=दोघ्+धुम्=दोग्धुम्, दुह्+त्वा=दुग्ध्वा ग्ध्व भू कृ)—

(ई) दोग्धि, दुग्धे—दकारादि धातुओंके अन्तिम ह् को घ् होता , यदि उसके आगे अनुनासिक वा अन्त स्थके सिवा कोई व्यञ्जन हो, वा सके अन्तमें हो।

मुह्+त=मुढ्—घ्+त=मुढ्—घ्+ध=मुढ्+ढ, तथा मुघ्+ध =मूढ तथा मुग्ध, वह्+त=वढ्+त=वढ्+ध=वढ्+ढ= ढ, नह्+त=नध्+त=नध्+ध=नद्ध, उपानह् (जूता)— पानत्-द्—उपानद्भ्यो—उपानह—उपानद्भ्याम्—उपानत्सु—

(उ) मूढ, मुग्ध—द्रुह्, मुह्, स्नुह्, तथा स्निह्के अन्तिम ह् को वा घ् होता है, यदि उसके बाद अनुनासिक वा अन्त स्थको छोड कोई ञ्जन हो, वा पदके अन्तमें हो। इसी प्रकार नद्धमें नह् के ह को ध् आ है।

(क) धोक्षि, अधोक्षुम्—ह् आगे रहने पर जब ह् का लोप होता है तो सह् तथा वह् धातुओंमें उसके पूर्व रहनेवाले स्वरको ओ होता है।

दुह्+सि=दोह्+सि=दोघ्+सि (इ)=धोघ्+सि (ए. नीचे)=धोक+सि=धोक्+षि=धोक्षि।

अदुह+स्=अदोह्+स्=अदोह्=अदोघ्। (ई)=अधोघ् (ए)=अधोक्-ग्।

(ए) धोक्षि—जब धातुका कोई अवयव ब, ग्, ड्, या द् में आरम्भ होता हो और वर्गके चतुर्थ वर्णमें समाप्त होता हो तो ब, ग्, ड, तथा द् को क्रमसे भ्, घ्, ढ् तथा ध् होते हैं, जब उसके आगे स् वा ध्व हो, वा वह पदके अन्तमें हो।

तृह—ह पर।

वर्त।			लोट्।		
प्र पु तृणेढि	तृण्ढः	तृहन्ति	उ पु तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम

५। अतृणेट्-ड्, अतृणहम्—तृह् धातुमें व्यञ्जनादि विकारक प्रत्यय आगे रहने पर अन्तिम वर्णके पूर्व न के बदले ने विकरण लगता है।

सुकरेऽरण्ययाने पिता मा प्रायुङ्क्त दुष्करे राज्ये पुनस्त्वामिति रामो भरतमब्रवीत्।

नियतमानस सन् योगी सदात्मान युञ्ज्नवास्ते।

सूनृता वाक् कामान् दुग्धेऽलक्ष्मीं विप्रकर्षति कीर्ति सूते दुष्कृत छिनत्ति च।

पृच्छ तरलिका त्वत्कृते मया यानुभूतावस्था। युगसहस्रमिवाचरन् कृच्छ्रेण नीतो दिवस प्रदोष। सकृदप्यालप। ईषदपि विलोकय। पूरय मे मनोरथम्। आर्तास्मि भक्तास्म्यनुरक्तास्म्यनाथास्मि बालास्म्यगतिकास्मि। कथय किमपराद्ध, किं वा नानुष्ठित मया, कस्या वा नाज्ञायामादृत, कस्मिन् वा त्वदनुकूले नाभिरत, येन कुपितोऽसि।

लिका (स्त्री)—एक स्त्रीका नाम
॥ (तृणम्) न—घास
व् (स्त्री)—स्वर्ग
र्मसूनृता (स्त्री)—बहुत धीरे २ काम करना
ष्कृत (दुष्कृतम्) न—पाप
वत (दैवतम्) न—देवता
व्य (द्रव्यम्) न—बहुमूल्य वस्तु
थ्य (पथ्यम्) न—आरोग्यके लिये हितकारी वस्तु
ाण्डु (पु.)—पाण्डवोंका पिता
पण्ड (पिण्ड) पु—खानेकी वस्तु
ालिश्यता (स्त्री)—मूर्खता
ूति (स्त्री)—सम्पत्ति, उन्नति
ेषज (भेषजम्) न—औषध
न्त्र (मन्त्र) पु—सलाह
ानस (मानसम्) न—मन
यज्वन् (पु)—यागकर्त्ता
यवन (यवन) पु—यवन, म्लेच्छ
युग (युगम्) न—सत्य, द्वापर, त्रेता, कलि, इन चार युगोंमें एक युग
योगिन् (पु)—योगी
लव (लव) पु—रामका पुत्र
शील (शीलम्) न—सद्वृत्त
सहस्र (सहस्रम्) न—हजार
साचिव्य (साचिव्यम्) न—मन्त्रीका पद
सारमेय (सारमेय) पु—सरमाका पुत्र, कुत्ता
सौख्य (सौख्यम्) न—सुख
हरीतकी (स्त्री)—हर्रा
हर्म्य (हर्म्यम्) न—महल
हविस् (न)—होमद्रव्य
हृद (हृद) पु—गहिरा स्थान

विशेषण।

हु०, नास्ति गतिर्यस्या
+
अनाथ (बहु०, अ+नाथ पु)—बिना स्वामीका
अनुकूल—योग्य

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मि ।
तत्रावगाह कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥

कोई भी पशुओंको न मारे । यह एक बड़ा धार्मिक कर्तव्य है ।
शत्रुकी सेनाने उस नगरको घेर लिया ।
उसने उससे पूछा, "क्या तुम अच्छे हो ?"
भ्रमर फूलोंका रस चाटते हैं ।
उसने गायको दुहा और दूध पिया ।
मैंने कौनसा अपराध किया है जिससे आप मुझपर कोप करते हैं ।
तुम्हारे निमित्त हमने बहुत हानि सही ।
विपद्में एक दिन हजार युगोंके समान मालूम पड़ता है ।
मैं अनाथ हूं । मुझे कोई आश्रय नहीं । कृपाकर मेरी सहाय कीजिये ।

शब्दाशब्द ।

अरण्ययान (तत्पु०, अरण्य न वन + यान—न जाना)—वनमें जाना
अन्तरात्मन् (तत्पु०, अन्तर—विशे०, भीतरी + आत्मन् पु)—भीतरी आत्मा
अभूमि (स्त्री नञ्स०) अस्थान, अयोग्य स्थान
अलक्ष्मी (स्त्री) दरिद्रता
अवगाह (अवगाह) पु —स्ना
अवस्था (स्त्री)—स्थिति
इन्द्र (इन्द्र) पु —इन्द्र
ऊर्मि (पु , स्त्री)—तरङ्ग, लह
गति (स्त्री)—मरनेके बाद जाने जगह
गो (पु , स्त्री)—बैल , गाय
चार (चार) पु —चर
तन्द्री (स्त्री)—आलस्य

धातु।

+ऊह् (अपोहति—भ्वा पर) —नष्ट करना

+लप् (आलपति—भ्वा पर) —बोलना

+इ (उपैति, अ पर)—पास जाना

द् (छिनत्ति छिन्त्ते रु उभ)—काटना, उद्के साथ—काटना

(तपति, भ्वा पर)—तपना

(दोग्धि, दुग्धे-अ उभ) —दुहना

(पूरयति चु पर)—भरना

द् (भिनत्ति-भिन्त्ते-रु उभ)—तोड़ना

ज् (भुनक्ति-रु पर)—रक्षण करना, उपभोग करना, (भुङ्क्ते रु आ)—खाना[1]

(मृष्यति-ते, मर्षयति-ते-दि, चु उभ)—क्षमा करना

(युनक्ति-युङ्क्ते-रु उभ)—जोड़ना, अनुके साथ—पूछना; निके साथ—नियोग करना

च् (रिणक्ति-रिङ्क्ते रु उभ)—खाली होना, अतिके साथ (कर्मणि)—बढ़कर होना, किसीसे बड़ा होना

रुध् (रुणद्धि रुन्द्धे-रु उभ)—रोकना, सम्के साथ—रोकना

लिह् (लेढि लीढे-अ उभ)—चाटना, प्र तथा अव के साथ —चाटना

वि+विच् (विविनक्ति वुङ्क्ते—रु उभ)—विचार करना

वि+प्र+कृष् (विप्रकर्षति, भ्वा पर)—दूर ले जाना

वि+लुक् (विलोकयति-चु पर) —देखना

व्रज् (व्रजति भ्वा पर)—जाना

शुध् (शुध्यति-दि पर)—पवित्र होना

सद् [सीद्] (सीदति, भ्वा पर) —नष्ट होना

सेव् (सेवते—भ्वा आ)—सेवा करना

हिंस् (हिनस्ति—रु पर)—नष्ट करना

१। जब भुज का अर्थ रक्षण करना वा उपभोग करना नहीं है तब यह आ है।

अनुभूत (अनु+भू+त)—जाना हुआ

अनुरक्त (अनु+रञ्ज्[1]) भ्वा, दि उभ रजति रजते, रज्यति-ते+त)—अनुरागी

अनुष्ठित (अनु+स्था+त)—कृत

अपराद्ध (अप+राध्—णि+त) —अपराधी

अभिरत (अभि+रम्—भ्वा आ त)—अनुरक्त

आदृत (आ+दृ, तु आ)—आदर किया गया

आप्त—विश्वस्त

कटु—कड़ुवा

किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु (स्तुत्य या घृण्य)

कियत्—कितना

दुष्कर—करनेमें कठिन

नियत (नि+यम् [यच्छ्]+त) नियन्त्रित

नियुक्त (नि+युज्+त)—लगा हुआ

प्रदेय (प्र+दा+य)—देने योग्य

प्रवृत्त (प्र+वृत्—भ्वा आ+त —लगा हुआ

प्रोज्झित (प्र+उज्झ्+त)—त

भक्त (भज्+त)—भक्त

रिक्तहस्त (बहु०, रिक्त, रिच्+त खाली+हस्त हाथ)—खाली हाथ

सन्नियोजित (सं+नि+युज् प्रेर० त)—लगाया गया हुआ

संभावित (सं+भू—प्रेर०+त) प्रतिष्ठित

सुकर—करनेमें सुगम

सूनृत—सत्य तथा मधुर वाणी

सेवित (सेव्—भ्वा आ + —आश्रित

हातव्य (हा+तव्य)—छोड़ने योग्य

१। रज्यति, सजति, स्वजते, रजति ते, रज्यति ते—दंश् पर, सञ्ज् पर, स्वञ्ज् पर, रञ्ज उभ इन धातुओंके अनुनासिकका, विकरण आगे रहनेपर, लोप होता है।

धातु ।

प+ऊह् (अपोहति—भ्वा पर) —नष्ट करना

आ+लप् (आलपति—भ्वा पर) —बोलना

उप+इ (उपैति, अ पर)—पास जाना

छिद् (छिनत्ति-छिन्ते रु उभ)— काटना, उद्‌के साथ—काटना

तप् (तपति, भ्वा पर)—तपना

दुह् (दोग्धि, दुग्धे-अ. उभ) —दुहना

पूर् (पूरयति चु पर)—भरना

भिद् (भिनत्ति-भिन्ते-रु उभ)— तोड़ना

भुज् (भुनक्ति-रु पर)—रक्षण करना, उपभोग करना, (भुङ्क्ते रु आ)—खाना

मृष् (मृष्यति-ते, मर्षयति-ते-दि, चु उभ)—क्षमा करना

युज् (युनक्ति-युङ्क्ते-रु उभ)— जोड़ना, अनुके साथ—पूछना, निके साथ—नियोग करना

रिच् (रिणक्ति-रिङ्क्ते रु उभ)— खाली होना, अतिके साथ (कर्मणि)—बढ़कर होना, किसीसे बड़ा होना

रुध् (रुणद्धि-रुन्द्धे-रु उभ)— रोकना, सम्‌के साथ—रोकना

लिह् (लेढि-लीढे-अ उभ)— चाटना, आ तथा अव के साथ —चाटना

वि+विच् (विविनक्ति विङ्क्ते—रु उभ)—विचार करना

वि+प्र+कृष् (विप्रकर्षति, भ्वा पर)—दूर ले जाना

वि+लुक् (विलोकयति-चु पर) —देखना

व्रज् (व्रजति-भ्वा पर)—जाना

शुध् (शुध्यति-दि पर)—पवित्र होना

षद् [सीद्] (सीदति, भ्वा पर) —नष्ट होना

सेव् (सेवते—भ्वा आ)—सेवा करना

हिंस् (हिनस्ति—रु पर)—नष्ट करना

१। जब भुज का अर्थ रक्षण करना वा उपभोग करना नहीं है तब यह आ है।

अनुभूत (अनु+भू+त)—जाना हुआ

अनुरक्त (अनु+रञ्ज्[1]) भ्वा, दि उभ रजति रजते, रज्यति-ते+त)—अनुरागी

अनुष्ठित (अनु+स्था+त)—कृत

अपराद्ध (अप+राध—दि+त) —अपराधी

अभिरत (अभि+रम्—भ्वा आ त)—अनुरक्त

आदृत (आ+दृ, तु आ)—आदर किया गया

आप्त—विश्वस्त

कटु—कडुवा

किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु (स्तुत्य वा घृण्य)

कियत्—कितना

दुष्कर—करनेमें कठिन

नियत (नि+यम् [यच्छ्]+त) नियन्त्रित

नियुक्त (नि+युज्+त)—ल[illegible] हुआ

प्रदेय (प्र+दा+य)—देने योग[illegible]

प्रवृत्त (प्र+वृत्—भ्वा आ+ [illegible] —लगा हुआ

प्रोज्झित (प्र+उज्झ्+त)—[illegible]

भक्त (भज्+त)—भक्त

रिक्तहस्त (ब्रहु०, रिक्त, रिच्+त—खाली+हस्त हाथ)—खाली हाथ

सन्नियोजित (स+नि+युज् प्रे०+त)—लगाया गया हुआ

सम्भावित (सं+भू—प्रे०+त)—[illegible] प्रतिष्ठित

सुकर—करनेमें सुगम

सूनृत—सत्य तथा मधुर वाणी

सेवित (सेव्—भ्वा आ. +त[illegible] —आश्रित

हातव्य (हा+तव्य)—छोड़[illegible] योग्य

१। दशति, मजति, स्वजते, रजति ते, रज्यति ते—दंश् पर, सञ्ज् पर, स्वञ्ज्, [illegible] रञ्ज उभ इन धातुओंके अनुनासिकका, विकरण आगे रहनेपर, लोप होता है।

धातु।

प+ऊह् (अपोहति—भ्वा पर) —नष्ट करना

+लप् (आलपति—भ्वा पर) —बोलना

+इ (उपैति, अ पर)—पास जाना

छिद् (छिनत्ति छिन्त्ते रु उभ)—काटना, उद्के साथ—काटना

प् (तपति, भ्वा पर)—तपना

ह्[1] (दोग्धि, दुग्धे-अ उभ) —दुहना

(पूरयति चु पर)—भरना

भिद् (भिनत्ति-भिन्त्ते-रु उभ)—तोड़ना

भुज् (भुनक्ति-रु पर)—रक्षण करना, उपभोग करना, (भुङ्क्ते रु आ)—खाना

प् (क्षाम्यति-ते, मर्षयति-ते-दि, चु उभ)—क्षमा करना

युज् (युनक्ति-युङ्क्ते-रु उभ)—जोड़ना, अनुके साथ—पूछना, नि के साथ—नियोग करना

रिच् (रिणक्ति-रिङ्क्ते रु उभ)—खाली होना, अतिके साथ (कर्मणि)—बढ़कर होना, किसीसे बड़ा होना

रुध् (रुणद्धि-रुन्द्धे-रु उभ)—रोकना, सम्के साथ—रोकना

लिह् (लेढि-लीढे-अ उभ)—चाटना, प्र तथा अव के साथ —चाटना

वि+विच् (विविनक्ति विङ्क्ते—रु उभ)—विचार करना

वि+प्र+कृष् (विप्रकर्षति, भ्वा पर)—दूर ले जाना

वि+लुक् (विलोकयति-चु पर) —देखना

व्रज (व्रजति भ्वा पर)—जाना

शुध् (शुध्यति-दि पर)—पवित्र होना

षद्ऌ [सीद्] (सीदति, भ्वा पर) —नष्ट होना

सेव् (सेवते—भ्वा आ)—सेवा करना

हिंस् (हिनस्ति—रु पर)—नष्ट करना

१। जब भुज का अर्थ रक्षण करना वा उपभोग करना नहीं है तब यह आ है।

अनुभूत (अनु+भू+त)—जाना हुआ

अनुरक्त (अनु+रञ्ज्[1] भ्वा, दि उभ रजति रजते, रज्यति-ते+त)—अनुरागी

अनुष्ठित (अनु+स्था+त)—कृत

अपराद्ध (अप+राध्—दि +त)—अपराधी

अभिरत (अभि+रम्—भ्वा आ त)—अनुरक्त

आदृत (आ+दृ, तु आ)—आदर किया गया

आप्त—विश्वस्त

कटु—कड़ुवा

किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु (स्तुत्य वा घृण्य)

कियत्—कितना

दुष्कर—करनेमें कठिन

नियत (नि+यम्[यच्छ्]+त) नियन्त्रित

नियुक्त (नि+युज्+त)—ल[illegible] हुआ

प्रदेय (प्र+दा+य)—देने योग्य

प्रवृत्त (प्र+वृत्—भ्वा आ+त)—लगा हुआ

प्रोज्झित (प्र+उज्झ्+त)—त[illegible]

भक्त (भज्+त)—भक्त

रिक्तहस्त (बहु०, रिक्त, रिच्+त—खाली+हस्त हाथ)—खाली हाथ

सन्नियोजित (स+नि+युज् प्रे०+त)—लगाया गया हुआ

सम्भावित (स+भू—प्रे०+त)—प्रतिष्ठित

सुकर—करनेमें सुगम

सूनृत—सत्य तथा मधुर वाणी

सेवित (सेव्—भ्वा आ +त)—आश्रित

हातव्य (हा+तव्य)—छोड़[illegible] योग्य

१। रञ्जति, सजति, स्वजते, रजति ते, रज्यति ते—दंश् पर, सञ्ज् पर, स्वञ्ज्[illegible] रञ्ज उभ इन धातुओंके अनुनासिकका, विकरण आगे रहनेपर, लोप होता है।

मगणमें ३ गुरु, तथा नगणमें ३ लघु होते हैं। भगणमें आदि गुरु (और दूसरे दो लघु), यगणमें आदि लघु (और दूसरे गुरु), जगणमें मध्य गुरु (और दूसरे दो लघु), रगणमें मध्य लघु (और दूसरे दो गुरु), सगणमें अन्त्य गुरु (और दूसरे दो लघु), तथा तगणमें अन्त्य लघु (और दूसरे दो गुरु) होते हैं।

ह्रस्वको लघु, तथा दीर्घको गुरु कहते है। यदि संयोग आगे हो तो पूर्व ह्रस्व गुरु समझा जाता है। पादके अन्तका अक्षर लघु होनेपर भी गुरु कहता है।

ल=लघु, ग=गुरु।

छन्दमें कुछ अक्षरोंके बाद यति या विराम होता है। मालिनीमें ८ तथा ७ अक्षरोंपर यति है।

संस्कृतमें उसी छन्दके पादमें प्राय छन्दका लक्षण कहा जाता है। इस प्रकार मालिनीके पादका यह लक्षण हुआ —

| I I I I I I S S S I S S I S S
न न म य य यु ते य॥ मा लि नी भो गि लो कै ॥

। चिन्ह लघुका, ऽ गुरुका, तथा ॥ यतिका चिन्ह है।

इस पाठमें जुहोत्यादि गणके धातुओंका वर्णन किया गया है। इस गणमें प्रत्यय लगानेसे पूर्व धातुओंको द्वित्व होता है। लिट् या परोक्ष—भूतमें भी धातुओंको द्वित्व होता है।

द्वित्वके सामान्य नियम।

अट्—अ अट्, ऋ—ऋ ऋ, भी—भी भी, पच्—प पच।

नियम :—

१। स्वरादि धातुओंमें स्वरको, तथा व्यञ्जनादि धातुओंमें प्रथम स्वरके साथ व्यञ्जनको द्वित्व होता है।

त्यज्—तत्यज क्री—कीक्री, स्मृ स्स्मृ। नियम :—

अव्यय ।

ईषत्—थोड़ा
उत्सृज्य (उद्+सृज् का अव्य भू सृ)—छोड़कर
कदाचित्—कभी
कृच्छ्रेण (कृच्छ्र न की तृ ए व)—कठिनतासे
तदर्थम् (च तत्पु०, तस्मै इद यथा स्यात्तथा, क्रियाविशे० उसके लिये
त्वत्कृते (तत्पु०, तव कृते, त्व॰ सर्व०, +कृते—अव्य) ७ निमित्त
सकृत्—एक वार

पाठ ३० ।

जुहोत्यादि गण ।

देहि मे प्रतिवचनम्—इसको उत्तर दो ।
मृत्योर्न बिभेत्यय वीर —यह वीर मरणसे नहो डरता ।
पावके हविर्जुहुधि—अग्निमें होमद्रव्यका होम करो ।
लोकस्य कोलाहल उदजिहीत—लोगोंका कोलाहल उठा ।
अवधत्ता देवो देवी च—महाराज और महारानी ध्यान दें ।

न न म य य युतेय मालिनी भोगिलोकै—न, न, म, य, तथा इन गणोंसे युक्त मालिनी, सप तथा लोकोंसे (७ तथा ८ अक्षर, क्योंकि सप तथा ८ लोक हैं)=जिसमें न, न, म, य, तथा य, ये गण हों, ७ ८ अक्षरोंपर यति वा विराम हो, उसे मालिनी-छन्द कहते हैं ।

मालिनी एक छन्द है । तीन अक्षरोंका एक गण होता है । अधोलिखित आठ गण होते हैं—

म स्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरु पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्य सोऽन्तगुरु कथितोऽन्तलघुस्त ॥

मगणमें ३ गुरु, तथा नगणमें ३ लघु होते हैं। भगणमें आदि गुरु (और दूसरे दो लघु), यगणमें आदि लघु (और दूसरे गुरु), जगणमें मध्य गुरु (और दूसरे दो लघु), रगणमें मध्य लघु (और दूसरे दो गुरु), सगणमें अन्त गुरु (और दूसरे दो लघु), तथा तगणमें अन्त लघु (और दूसरे दो गुरु) होते हैं।

ह्रस्वको लघु, तथा दीर्घको गुरु कहते हैं। यदि संयोग आगे हो तो पूर्व ह्रस्व गुरु समझा जाता है। पादके अन्तका अक्षर लघु होनेपर भी गुरु कहाता है।

ल=लघु, ग=गुरु।

छन्दमें कुछ अक्षरोंके बाद यति या विराम होता है। मालिनीमें ८ तथा ७ अक्षरोंपर यति है।

संस्कृतमें सभी छन्दके पादमें प्रायः छन्दका लक्षण कहा जाता है। इस प्रकार मालिनीके पादका यह लक्षण हुआ —

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
न न म य य यु ते य॥ मा लि नी भो गि लो कैः ॥

। चिन्ह लघुका, ऽ गुरुका, तथा ॥ यतिका चिन्ह है।

इस पाठमें जुहोत्यादि गणके धातुओंका वर्णन किया गया है। इस गणमें प्रत्यय लगानेके पूर्व धातुओंको द्वित्व होता है। लिट् या परोक्ष—भूतमें भी धातुओंको द्वित्व होता है।

द्वित्वके सामान्य नियम।

अट्—अ अट्, ऋ—ऋ ऋ, भी—भी भी, पच्—प पच्।

नियम :—

१। स्वरादि धातुओंमें स्वरको, तथा व्यञ्जनादि धातुओंमें प्रथम स्वरके साथ व्यञ्जनको द्वित्व होता है।

त्यज्—तत्यज् क्री—कीक्री, स्पृ-स्पस्पृ। नियम :—

२। संयोगादि धातुओंमें स्वरसहित पूर्ववर्णको द्वित्व होता है। स्तृ—तृस्तृ, स्पृश्—पृस्पृश्, स्तै—तैस्तै।

नियम —

३। यदि धातुके आदिमें संयोग हो जिसका प्रथम वर्ण श, ष, स् हो और द्वितीय वर्ण अघोष हो, तो स्वरसहित उस अघोष वर्ण द्वित्व होता है।

४। द्वित्वके पूर्व भागको अभ्यास कहते हैं—
जि—जिजि, कृ—कृकृ, आप्—आ आप।

अभ्यासमें परिवर्त्तन।

(अ) भी—भीभी—भिभी, नी—नीनी—निनी, धा ध
धधा।

(आ) कृ—कृकृ—ककृ, स्तृ—स्तृस्तृ—सस्तृ।

(इ) खन्—खखन्—कखन्, छिद्—छि छिद्—चिछिद—
[1]चिच्छिद्, भी—भीभी—भिभी—बिभी, धा—धाधा—धधा—दधा

(ई) कृ-कृकृ-ककृ चकृ; खन्-खखन्-कखन्-चखन, गाण् गाण
जगाण्।

(उ) हृ-हृहृ-हहृ-जहृ, ह्री ह्रीह्री-हिह्री-जिह्री।

१। स्वच्छ, स्वच्छाया, शिवच्छाया, अच्छिनत्, विच्छेद (छिद्—प्र वा उ पु ए व) जब छ्के पूर्व ह्रस्व स्वर रहता है तो उसको च्छ होता है। चेच्छिद्यते (यङन्त—वर्त—प्र पु ए व)—यदि छ् के पूर्व दीर्घ हो तो भी उसको च्छ् होता है। लक्ष्मीछाया—छाय पर आच्छादयति, मा च्छिदत्—लक्ष्मीका ई पदके अन्तमें है। क्योंकि समासके अवयव पद समझे जाते हैं, और अन्तिमके सिवा सब पदोंको विभक्तियोंका लोप होता है। तथा मा भी पद है, क्योंकि अव्ययोंके बाद विभक्ति आकर उसका लोप होता है। पूर्व यदि दीर्घ हो और वह पदके अन्तमें हो तो विकल्पसे, पर आ तथा मा यदि पूर्व हो नित्य च्छ होता है।

नियम —

५। (अ) पू-पूपू-पुपू, मील् मीमील् मिमील्, ना—नाना-ना—अभ्यासके दीर्घको ह्रस्व होता है।

(आ) तृ-तृत तृतृ ततृ—अभ्यासके ऋ को अ होता है।

(इ) फल् फफल्—पफल्, भज् भभज-बभज—वर्गके द्वितीय वर्णको प्रथम वर्ण, तथा चतुर्थको तृतीय वर्ण होता है।

(ई) गद्-गगद् जगद्, खम्-खखम् चखम्—कवर्गीय वर्णको उसी स्थानका चवर्गीय वर्ण होता है।

(उ) हन् हहन्-जहन् ह् को ज् होता है।

भृ धा।

	पर, वर्त।			आत्म।		
प्र पु	बिभर्ति	बिभृत	बिभ्रति	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म पु	बिभर्षि	बिभृथ	बिभृथ	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ पु	बिभर्मि	बिभृव	बिभृम	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

	लङ-पर।			आत्म।		
प्र पु	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत

	लोट्-पर।				आत्म।	
प्र पु	बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	उ पु	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

विधि पर। आ।

प्र पु बिभृयात्—इत्यादि। प्र पु बिभ्रीत—इत्यादि।

ह्री—पर।

	वर्त।				लोट्।		
प्र पु	जिह्रेति	जिह्रीत	जिह्रियति	उ पु	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम

लङ् । विधि ।

म पु अजिह्रेत अजिह्रीताम् अजिह्रयु. जिह्रीयात्—इत्यादि।

हा—पर ।

म पु जहाति जहित —जहीत जहति

लोट् ।

प्र पु जहातु जहिताम्-हीताम् जहतु

म पु जहाहि जहिहि जहीहि जहितम् हीतम् जहित हीत

लङ् । विधि ।

प्र पु अजहात् अजहिताम्-हीताम् अजहु. जह्यात्—इत्यादि।

नियम :—

६ । बिभर्ति इत्यादि—सार्वधातुक लकारोंमें भृको द्वित्व होकर बिभ होता है ।

७ । बिभ्रति, बिभ्रतु—पर प्र पु व व में न् का लोप होता है।

८ । अबिभरु —लङ के पर प्र पु के व व का प्रत्यय उस् है उस् आगे रहने पर धातुके अन्तिम स्वरको गुण होता है और आ का लो होता है ।

९ । जहित —हीत , जहति, जह्यात्—त्यागार्थक पर हा के आगे व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इ या ई होता है, त स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने पर और विधिलिङ्में उस आ व लोप होता है । लोटके म पु के ए व में तीन रूप होते है—जहाहि जहिहि, जहीहि ।

जिह्री+अति—ई को इय् होता है । क्योंकि उसके पूर्व संयुक्ता है=जिह्रियति ।

भी—पर।

वर्त।

प्र पु बिभेति बिभित—बिभीत बिभ्यति

लोट्।

म पु बिभिहि बिभीहि बिभितम्-बिभीतम् बिभित बिभीत

लङ्।

प्र पु अबिभेत् अबिभिताम्-अबिभीताम् अबिभयु

विधि।

प्र पु बिभियात्—बिभीयात्।

नियम—

१०। व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर भीके स्वरको विकल्पसे ह्रस्व होता है।

मा—आत्म। हा—आत्म।

वर्त। वर्त।

प्र पु मिमीते मिमाते मिमते जिहीते जिहाते जिहते
उ पु मिमे मिमीवहे मिमीमहे जिहे जिहीवहे जिहीमहे

लङ्। लङ्।

प्र पु अमिमीत अमिमाताम् अमिमत अजिहीत अजिहाताम् अजिहत

लोट्। लोट्।

म पु मिमीष्व मिमाथाम् मिमीध्वम् जिहीष्व जिहाथाम् जिहीध्वम्

विधि। विधि।

प्र पु मिमीत—इत्यादि। प्र पु जिहीत—इत्यादि।

नियम —

११। मिमे, जिहे—मा तथा गमनार्थक हा आत्म धातुओंके सार्वधातुक लकारोंमें द्वित्व हो कर मिमा तथा जिहा होता है।

१२। मिमीते, मिमते, जिहीषे, जिहताम्—मा तथा गमनार्थक हा आत्म के आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ई होता है, तथा स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है।

हु—पर।

	वर्त।				लोट।	
प्र पु	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	म पु	जुहुधि	जुहुतम् जुहुत
	लङ्।				विधि।	
प्र पु	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः		जुहुयात्—इत्यादि।	

नियम —

१३। लोट्के मध्यम पुरुषके ए व का प्रत्यय धि है। २० वे पाठ १५ वा नियम देखो।

दा—उभ।

	पर वर्त।			आत्म।		
प्र पु	ददाति	दत्तः	ददति	दत्ते	ददाते	ददते
म पु	ददासि	दत्थः	दत्थ	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
	लोट्—पर।			आत्म।		
म पु	देहि	दत्तम्	दत्त	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ पु	ददानि	ददाव	ददाम	ददै	ददावहै	ददामहै
	लङ्—पर।			आत्म।		
प्र पु	अददात्	अदत्ताम्	अददुः	अदत्त	अददाताम्	अददत
उ पु	अददाम्	अदद्व	अदद्म	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधि ।

	पर	आत्म ।
पु	दद्यात्—इत्यादि ।	ददीत—इत्यादि ।

धा—उभ ।

	वर्त —पर ।			आत्म ।		
पु	दधाति	धत्तः	दधति	धत्ते	दधाते	दधते
पु	दधासि	धत्थः	धत्थ	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
पु	दधामि	दध्वः	दध्मः	दधे	दध्वहे	दध्महे

	लोट्—पर ।			आत्म ।		
पु	धेहि	धत्तम्	धत्त	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्

	लङ्—पर ।			आत्म ।		
पु	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	अधत्त	अदधाताम्	अदधत

विधि ।

पु दध्यात्—दधीत—इत्यादि ।

नियम —

१४ । (अ) दद्, दध्—व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दा तथा धाको दद् तथा दध् होता है ।

(आ) ददति, दधतु—स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनमे आका लोप होता है ।

(इ) धत्थ, धत्त—अनुनासिक वा अन्तस्थको छोड़ और किसी व्यञ्जनसे आरम्भ होनेवाला अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको धत् होता है ।

(ई) देहि तथा धेहि लोट्के म पु के ए व के रूप है ।

नियम —

११। मिमे, जिहे—मा तथा गमनार्थक हा आत्म धातुओंके सार्व धातुक लकारोंमें द्वित्व हो कर मिमा तथा जिहा होता है।

१२। मिमीते, मिमते, जिहीषे, जिहताम्—मा तथा गमनार्थक हा आत्म के आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ई होता है तथा स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है।

हु—पर।

	वर्त।				लोट्।	
प्र पु	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	म पु	जुहुधि	जुहुतम् जुहुत

	लङ्।			विधि।
प्र पु	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	जुहुयात्—इत्यादि।

नियम —

१३। लोट्के मध्यम पुरुषके एक व. का प्रत्यय धि है। २० वें पाठ १५ वां नियम देखो।

दा—उभ।

	पर वर्त।			आत्म।		
प्र पु	ददाति	दत्तः	ददति	दत्ते	ददाते	ददते
म पु	ददासि	दत्थः	दत्थ	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे

	लोट्—पर।			आत्म।		
म पु	देहि	दत्तम्	दत्त	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ पु	ददानि	ददाव	ददाम	ददै	ददावहै	ददामहै

	लङ्—पर।			आत्म।		
प्र पु	अददात्	अदत्ताम्	अददुः	अदत्त	अददाताम्	अददत
उ पु	अददाम्	अदद्व	अदद्म	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधि।

	पर	आत्म।
प्र पु	दद्यात्—इत्यादि।	ददीत—इत्यादि।

धा—धम।

	वर्त—पर।			आत्म।		
प्र पु	दधाति	धत्त	दधति	धत्ते	दधाते	दधते
म. पु	दधासि	धत्थ	धत्थ	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ पु	दधामि	दध्व	दध्म	दधे	दध्वहे	दध्महे

	लोट्—पर।			आत्म।		
म पु	धेहि	धत्तम्	धत्त	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्

	लङ्—पर।			आत्म।		
म पु	अदधात्	अधत्ताम्	अदधु	अधत्त	अदधाताम्	अदधत

विधि।

म पु दध्यात्—दधीत—इत्यादि।

नियम —

१४। (अ) दद्, दध्—व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दा तथा धाको दद् तथा दध् होता है।

(आ) ददति, दधतु—स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनके आका लोप होता है।

(इ) धत्थ, धत्त—अनुनासिक वा अन्तःस्थको छोड़ और किसी व्यञ्जनसे आरम्भ होनेवाला अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको धत् होता है।

(ई) देहि तथा धेहि लोट्के म पु के ए व के रूप हैं।

नियम —

११। मिमे, जिहे—मा तथा गमनार्थक हा आत्म धातुओंके सा धातुक लकारोंमें द्वित्व हो कर मिमा तथा जिहा होता है।

१२। मिमीते, मिमते, जिहीषे, जिहताम्—मा तथा गमनार्थक आत्म के आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ई होता तथा स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है।

हु—पर।

	वर्त।				लोट्।		
प्र पु	जुहोति	जुहुत	जुह्वति	म पु	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत

	लङ्।			विधि।
प्र पु	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	जुहुयात्—इत्यादि।

नियम —

१३। लोट्के मध्यम पुरुषके ए व का प्रत्यय धि है। २७ वे पाठ १५ वा नियम देखो।

दा—उभ।

	पर वर्त।			आत्म।		
प्र पु	ददाति	दत्त	ददति	दत्ते	ददाते	ददते
म पु	ददासि	दत्थ	दत्थ	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे

	लोट्—पर।			आत्म।		
म पु	देहि	दत्तम्	दत्त	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ पु	ददानि	ददाव	ददाम	ददै	ददावहै	ददामहै

	लङ्—पर।			आत्म।		
प्र पु	अददात्	अदत्ताम्	अददुः	अदत्त	अददाताम्	अददत
उ पु	अददाम्	अदद्व	अदद्म	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधि।

	पर	आत्म
प्र पु	दद्यात्—इत्यादि।	ददीत—इत्यादि।

धा—धर।

	वर्त—पर			आत्म		
प्र पु	दधाति	धत्तः	दधति	धत्ते	दधाते	दधते
म पु	दधासि	धत्थ	धत्थ	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ पु	दधामि	दध्व	दध्म	दधे	दध्वहे	दध्महे

	लोट्—पर			आत्म		
म पु	धेहि	धत्तम्	धत्त	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्

	लङ्—पर			आत्म		
प्र पु	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	अधत्त	अदधाताम्	अदधत

विधि।

प्र पु दध्यात्—दधीत—इत्यादि।

नियम—

१४। (अ) दद्, दध—व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दा तथा धाको दद् तथा दध् होता है।

(आ) ददति, दधतु—स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनके आका लोप होता है।

(इ) धत्थ, धत्त—अनुनासिक वा अन्तस्थको छोड़ और किसी व्यञ्जनसे आरम्भ होनेवाला अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको धत् होता है।

(ई) देहि तथा धेहि लोट्के म पु के ए व के रूप हैं।

निज्—उभ

वर्त पर ।				आत्म लोट् ।		
प्र पु	नेनेक्ति	नेनिक्तः	नेनिजति	उ पु नेनिजै	नेनिजावहै	नेनिजामहै

लङ् पर ।				आत्म ।	
प्र पु	अनेनेक्-ग्	अनेनिक्ताम्	अनेनिजुः	अनेनिक्त	अनेनिजाताम्	अनेनिजत
उ पु	अनेनिजम्	अनेनिज्व	अनेनिज्म	अनेनिजि	अनेनिज्वहि	अनेनिज्महि

विधि ।

प्र पु नेनिज्यात्, नेनिजीत-इत्यादि ।

इसी प्रकार वेवेक्ति, वेवेष्टि इत्यादि ।

१५ । नेनेक्ति, नेनिजे—निज्, विज्, तथा विष् धातुमें अभ्यासके स्वरको गुण होता है, स्वरादि विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इन धातुओंके उपान्त्य स्वरको गुण नहीं होता ।

अधारात् सधारान्मन उद्विजते ।
कर्णौ पिधाय शान्तं पापं शान्तं पापमित्यब्रवीत् ।
हरिशब्दोऽत्र विष्णुमेवाभिधत्ते ।
बहुधा भयमाऽधानाश्छाया अत्रारण्ये चरन्ति ।
अथ पुत्रकृतको मृगस्ते पदवीं न जहाति पश्य ।
रघुर्धनुष्यमोघं सायकं समधत्त ।
अनेन समयेन परिणतो दिवसः ।
वेवेष्टि व्याप्नोति विश्वमिति विष्णुः ।
गुरोः पादाववानेनिजम् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ।

जठरं को न बिभर्ति घोरम्
प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तो-
र्भवद्धया भगवती भवितव्यतैव ॥

अविनीत! किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि? हन्त! प्रीतोऽस्मि ते वत्स! स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि। पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि मुनीनाम्। किं पुनर्दर्शनानि? धन्यमिदमाश्रमपदम्यत्राधिपतिर्वसु। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरिमितलेनासन मुखारविन्दमवलोकयन्ति स्थलदृष्टय पुण्या कथा शृण्वन्ते समुपासते।

श्रीष्मेऽत्यावत् मा वीह ददासि मेऽपि शर्म च।
सुखं वा नो ददास्यौष्णं पतितामपि नो हरि॥

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
भार्येव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
कीर्तिं च दिक्षु विमलां वितनोति लक्ष्मीं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥

ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो
वयमपि तदभावाद्गालिदानेऽसमर्थाः।
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

प्रकृत्येव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥

रामके इच्छानुसार लक्ष्मणने सीताको निर्जन वनमें छोड़ा ।

रे पापी ! क्या तुझे यह खराब वचन कहते लज्जा नहीं आती ?

यागकर्ताओंने अग्निमें आहुति दी ।

हे प्रभो ! कृपा कर मुझे बुद्धि दीजिये ।

हम लोगोंको चाहिये कि आये हुए अतिथिका आसन तथा वस्त्रसे सत्कार करें ।

तुमको अपने भीतरी शत्रुओंके साथ लड़नेके लिये तैयार होना चाहिये

मेरा मित्र मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय था ।

यहां देवशब्द राजाका बोध कराता है ।

दूध स्वयं मधुर है, फिर चीनी मिलानेपर क्या पूछना है (किं पुनः)

उस आश्रमके लोग मुनिको अपने पुत्रोंसे किसीप्रकार भिन्न न ('अपत्यनिर्विशेष'का प्रयोग करो) ।

शब्दार्थ ।

अधिपति (पु)—स्वामी

अवलोकन (अवलोकनम्) न —दृष्टि

आश्रमपद (आश्रमपदम् न तत्पु०, आश्रम-पु + पद—न स्थान) —तपोवन

कल्पलता (स्त्री मध्यमपदलोपी समा०, कल्पपूरिका लता)—एक लता जो सब मनोरथोंको पूर्ण करती है

कोलाहल (कोलाहल) पु —शोर

गालि (स्त्री)—गाली

छाया (स्त्री)—छाया

जन्तु (पु)—प्राणी

नलिनासन (नलिनासन —पु बहु० नलिन-न कमल + आसन न) —कमल जिसका आसन है, ब्रह्मदेव

नामधेय (नामधेयम्) न —नाम (धेय एक प्रत्यय है जो अर्थमें कोई भेद नहीं करता, नाम एव नामधेयम्)

पद्धती (स्त्री)—मार्ग

परिकर (परिकर) पु—कमरबन्द
(बद्ध परिकरस्तेन = उसने कमर बांधी)
पावक (पावक) पु—अग्नि
पुत्रकृतक (पुत्रकृतक) पु—दत्तक पुत्र
प्रकृति (स्त्री)—स्वभाव
प्रतिवचन (प्रतिवचनम्) न—उत्तर
प्रियभाव (प्रियभाव) पु—प्रिय होना
प्रीतियोग (प्रीतियोग) पु—प्रेमका बन्धन
भवितव्यता (स्त्री)—होनहार
मृत्यु (पु)—मरण
रथ (रथ) पु—बल
विषाण (विषाणम्) न—सींग
शशक (शशक) पु—खरहा
संरम्भ (संरम्भ) पु—क्रोध
सत्त्व (सत्त्वम्) न—जीव
सर्वदमन (पु)—दुष्यन्तके पुत्रका नाम (जो सबको दबाता है वह)
सायक (सायक) पु—बाण

विशेषण।

अमोघ (नञ्०, अ+मोघ निष्फल)—सफल
असार (बहु०)—नि सार, तुच्छ
धन्य—भाग्यवान्
निश्चल—अचल, स्थिर
निर्विशेष (बहु०, निर्गत विशेष येभ्यस्तानि, निर्विशेषाणि, निर्+विशेष—पु भेद)—भेदरहित, समान
पुण्यभाज्—पुण्यवान्
सर्वदम (स्त्री—मा)—सबको दबानेवाला

धातु।

अप+नी (अपनयति-ते भ्वा उभ)—हटाना
उद्+विज् (उद्विजते—तु आत्म)—घबड़ाना
दा (ददाति दत्ते जु उभ)—देना, आके साथ (आत्म)—लेना
धा (दधाति धत्ते-जु उभ)—पकड़ना, रखना, आके साथ—रखना, करना, उत्पन्न करना, अपिके साथ—बन्द करना, अभिके साथ—कहना, प्रकट करना, अवके साथ—ध्यान

रामसे इच्छानुसार लक्ष्मणने सीताको निर्जन वनमें छोड़ा।

रे पापी! क्या तुझे यह खराब वचन कहते लज्जा नहीं आती?

यागकर्ताओंने अग्निमें आहुति दी।

हे प्रभो! कृपा कर मुझे बुद्धि दीजिये।

हम लोगोंको चाहिये कि आये हुए अतिथिका आसन तथा जलसे सत्कार करें।

तुमको अपने भीतरी शत्रुओंके साथ लड़नेके लिये तैयार होना चाहिये।

मेरा मित्र मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय था।

यहां देवशब्द राजाका बोध कराता है।

दूध स्वयं मधुर है, फिर चीनी मिलानेपर क्या पूछना है (किं पुन)?

उस आश्रमके लोग मुनिको अपने पुत्रोंसे किसीप्रकार भिन्न नहीं ('अपत्यनिर्विशेष'का प्रयोग करो)।

शब्दार्थ।

अधिपति (पु)—स्वामी

अवलोकन (अवलोकनम्) न—दृष्टि

आश्रमपद (आश्रमपदम्_न तत्पु०, आश्रम-पु + पद—न स्थान) —तपोवन

कल्पलता (स्त्री मध्यमपदलोपी समा०, कल्पपूरिका लता)—एक लता जो सब मनोरथोंको पूरा करती है

कोलाहल (कोलाहल) पु—शोर

गालि (स्त्री)—गाली

छाया (स्त्री)—छाया

जन्तु (पु)—प्राणी

नलिनासन (नलिनासन—पु बहु०, नलिन-न कमल + आसन न) —कमल जिसका आसन है, ब्रह्मदेव

नामधेय (नामधेयम्_) न—नाम (धेय एक प्रत्यय है जो अर्थमें कोई भेद नहीं करता, नाम एव नामधेयम्)

पदवी (स्त्री)—मार्ग

रिकर (परिकर) पु—कमरबन्द (बद्ध परिकरस्तेन = उसने कमर बाँधी)

ावक (पावक) पु—अग्नि

पुत्रकृतक (पुत्रकृतक) पु—दत्तक पुत्र

कृति (स्त्री)—स्वभाव

तिवचन (प्रतिवचनम्) न—उत्तर

प्रियभाव (प्रियभाव) पु—प्रिय होना

ीतियोग (प्रीतियोग) पु—प्रेमका बन्धन

भवितव्यता (स्त्री)—होनहार

मृत्यु (पु)—मरण

रस (रस) पु—जल

विषाण (विषाणम्) न—सींग

शशक (शशक) पु—खरहा

संरम्भ (संरम्भ) पु—क्रोध

सत्त्व (सत्त्वम्) न—जीव

सर्वदमन (पु)—दुष्यन्तके पुत्रका नाम (जो सबको दबाता है वह)

सायक (सायक) पु—बाण

विशेषण ।

अमोघ (नञ्०, अ+मोघ निष्फल)—सफल

असार (बहु०)—निःसार, तुच्छ

धन्य—भाग्यवान्

निश्चल—अचल, स्थिर

निर्विशेष (बहु०, निर्गत विशेष

षाणि, निर्विशेषाणि, निर्+विशेष—पु भेद)—भेदरहित, समान

पुण्यभाज्—पुण्यवान्

सर्वङ्कष (स्त्री—षा) — सबको दबानेवाला

धातु ।

अप+नी (अपनयति-ते भ्वा उभ) —हटाना

उद्+विज् (उद्विजते—तु आत्म) —घबराना

दा (ददाति-दत्ते जु उभ)—देना, आके साथ (आत्म)—लेना

धा (दधाति धत्ते-जु उभ)—पकड़ना, रखना, आके साथ—रखना, करना, उत्पन्न करना, अपिके साथ—बन्द करना, अभिके साथ—कहना, प्रकट करना, अवके साथ—ध्यान

देना, वि के साथ—करना, सम् के साथ—मिलाना

निज् (नेनेक्ति-नेनिक्ते-जु उभ)—धोना, अव के साथ—धोना

भृ (बिभर्त्ति, बिभृते-जु उभ)—भरना

विज् (वेवेक्ति, वेविक्ते-जु उभ)—अलग करना

वि+प्र+कृ (विप्रकरोति—कुरुते-तना उभ)—बिगाड़ना

विष् (वेवेष्टि-वेविष्टे-जु उभ)—घेरना, व्याप्त करना

सम्+उप+आस् (समुपास्ते—अ आ)—पूजा करना

साध् (साधयति चु पर)—सिद्ध करना

हा (जिहीते-जु आ)—जाना उद् के साथ—चढ़ना, उठना

हु (जुहोति-जु पर)—होम करना

ह्री (जिह्रेति—जु पर)—लजाना

अव्यय।

अहर्निशम्—दिनरात

उत्स्रष्टुम् (उद्+सृज्+तुम्)—छोड़नेके लिये, देनेके लिये

किं पुनः—कितना अधिक? (इससे अवधि तथा अतिशयका बोध होता है।)

पश्चात्—अनन्तर

बहुधा—अनेक प्रकारसे

शान्तं पापम्—पाप शान्त हो

सहस्रगुणम्—(बहु०, सहस्रं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्) सहस्र = हजार+गुण-गुना—हजारगुना

स्थाने—योग्य है

हन्त—हाय! वाह! (यह खेद वा हर्षमें आता है।)

पाठ ३१।

विशेषण तथा क्रियाविशेषण।

एकादश रुद्रा द्वादशादित्या—ग्यारह रुद्र और बारह सूर्य हैं।

माणवको ब्राह्मणाना विंशतये दक्षिणामयच्छत्—माणवकने बीस ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी।

रघुवंशे कुमारसम्भवे च यथाक्रममेकोनविंशतिः सप्तदश च सर्गाः—रघुवंश तथा कुमारसम्भवमें क्रमसे उन्नीस तथा सत्रह सर्ग हैं।

जालान्तर्गते रश्मौ यत् सूक्ष्मं रजो दृश्यते तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः कथ्यते—झरोखेसे आनेवाले किरणमें जो सूक्ष्म कण दिखाई देता है उसका तीसवां हिस्सा परमाणु कहाता है।

सीता प्राणेभ्योऽपि प्रेयसी रामस्य—सीता रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी।

कच्चित् कामप्रवेदने—(अव्यय) 'कच्चित्' अपनी इच्छा प्रकाश करनेमें प्रयोग किया जाता है। अर्थात्—"मैं आशा करता हूं" इस अर्थ-में आता है।

कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः—मैं आशा करता हूं कि मृगीके बच्चे दुःखरहित अर्थात् सुखी हैं।

अपि के समान कच्चित् भी प्रश्न पूछनेमें आता है, पर यह उस प्रश्न-में आता है जहां अपनी इच्छा प्रकट करनी हो। इसका अर्थ 'मैं आशा करता हूं,' 'मैं समझता हूं' है। कभी कभी यह केवल प्रश्न पूछनेमें प्रयोग किया जाता है।

दिष्ट्या प्रतिहता युष्माकं विघ्नाः—सुदैवसे तुमलोगोंके विघ्न नष्ट हुए—मैं विघ्नोंके नष्ट होनेपर आपका अभिनन्दन करता हूं। 'दिष्ट्या' यह दिष्टि का तृ त य है।

स्थाने खल्वत्र चित्रे सज्जति मे दृष्टिः—यह योग्य ही है कि मेरी दृष्टि इस चित्रमें लग रही है। स्थाने=युज्यते—यह योग्य है।

काममेतद्दुर्लभं मनस्त्वस्मिन्नुत्सुकम्—मान लिया कि यह दुर्लभ है, पर मेरा मन तो इसके लिये उत्सुक है। कामम्=जितना कोई चाहे उतना, चाहे जितना अधिक।

स्वयं रोपितेषु तरुषूत्पद्यते स्नेहः किं पुनरङ्गसम्भवेष्वपत्येषु—स्वयं लगाये हुए पेड़ोंपर भी प्रेम उत्पन्न होता है, अपने शरीरसे उत्पन्न लड़कों पर कितना अधिक होगा।

किं पुनः, किमुत तथा किमु 'कितना अधिक' इस अर्थमें आते हैं। उनका अर्थ है—इति का वार्ता, इति किं वक्तव्यम् (स्वयं रोपितेषु तरुषु स्नेह उत्पद्यते तर्हि अङ्गसम्भवेष्वपत्येषु उत्पद्यते इति किं वक्तव्यम्) इसको कैमुतिकन्याय कहते हैं।

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि—एक गुणवान् पुत्र अच्छा, सौ मूर्ख अच्छे नहीं।

वरम् के प्रयोगपर ध्यान दो अथवा वरमिह—न च अथवा न तु न पुनः —ऐसी रचना है।

यथा यथा यौवनमत्यक्रामत् तथा, तथाऽस्या अङ्गानि लावण्यमपुष्यन्—ज्यों २ जवानी आचली त्यों २ उसके अङ्ग शोभा बढ़ाने लगे।

यथा यथा—तथा तथा = ज्यों २ अधिक त्यों २ अधिक, ज्यों २ कम त्यों २ कम।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः—सूर्यवंश कहां और मेरी बुद्धि, जिसके विषय छोटे हैं, कहां?—इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। दो क्व (उव क्व) बड़ा अन्तर दिखाते हैं (द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः)।

पक्षपातिनावहं देवी च—हम और रानी दोनों पक्षपाती (तरफदार) हैं।

यदि विशेषणसे विशेषित सञ्ज्ञाशब्द भिन्न लिङ्गके अर्थात् एक पु० तथा दूसरा स्त्री हो, तो विशेषण पु० में आता है।

स च सा च तौ, स च तच्च ते, सा च तच्च ते द्वे वस्तुनी—यदि एक सञ्ज्ञा शब्द पु० वा स्त्री हो और दूसरा नपु० हो तो विशेषण नपुं० होता है।

सत्यं धृतिः शमश्च तस्मिन् ध्रुवाणि—उसमें सत्य, धैर्य, तथा शान्ति स्थिर है।

यदि अनेक विशेष्य अनेक लिङ्गोंके हों तो विशेषण नपुंसकमें आता है।

तयैव देवतया तयो कुशलवाविति नामनी प्रभावथाख्यात'—उसी देवताने उनके कुश और लव इन नामों तथा शक्तिका वर्णन किया।

यहां आख्याते इस विशेषणका लिङ्ग तथा वचन उससे पूर्व रहनेवाले संज्ञाशब्दके ऐसा हुआ। इसका अन्य संज्ञाशब्दोंके साथ लिङ्गविपरिणामसे अन्वय होता है। नामनी आख्याते इति लिङ्गविपरिणामेनान्वय।

इस पाठमें विशेषण तथा क्रियाविशेषणोंका वर्णन किया गया है।

एकसे दसतकके संख्यावाचकोंका वर्णन २३वें पाठमें आ चुका है।

दसके गुणित संख्यावाचक नीचे दिये जाते हैं —

विंशति	(स्त्री)	बीस	शत	(न)	एक सौ
त्रिंशत्	,,	तीस	सहस्र	,,	हजार
चत्वारिंशत्	,,	चालीस	अयुत	,,	दस हजार
पञ्चाशत्	,,	पचास	लक्ष	,,	लाख
षष्टि	,,	साठ	प्रयुत	,,	दस लाख
सप्तति	,,	सत्तर	कोटि	स्त्री	करोड़
अशीति	,,	अस्सी			
नवति	,,	नब्बे			

त्रिंशतये ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणा ददाति नारायण—अथवा ब्राह्मणानां त्रिंशतये दक्षिणा ददाति नारायण। इस प्रकार विंशति इत्यादि संज्ञाशब्द हैं। जब वे विशेषण रहते हैं तो, किसी संज्ञा शब्दके साथ हों, एक व तथा स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग किये जाते हैं।

एकादशन्—ग्यारह		द्विसप्तति	बहत्तर
द्वादशन्—बारह		द्वासप्तति	
षोडशन्—सोलह		त्रिनवति	तिरानबे
त्रयोविंशति—तेईस		त्रयोनवति	
पञ्चविंशति—पचीस		षण्णवति—छानबे	
अष्टात्रिंशत्—अड़तीस		द्व्यशीति—बयासी	
द्विचत्वारिंशत्	बयालीस	त्र्यशीति—तिरासी	
द्वाचत्वारिंशत्		अष्टाशीति—अट्ठासी	
त्रिपञ्चाशत्	तिरपन	एकोनसप्तति	उनहत्तर
त्रयःपञ्चाशत्		एकान्नसप्तति	
अष्टषष्टि	अड़सठ	ऊनसप्तति	
अष्टाषष्टि			

नियम —१ विंशतिके बादके संख्यावाचकोंमें द्वि को द्वा, त्रि को त्रय, तथा अष्ट को अष्टा होता है। अशीति के साथ समास करनेमें ये परिवर्तन नहीं होते, तथा चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, तथा नवति के साथ समास करनेमें ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं। पञ्चन् इत्यादि शब्दोंसे न्का लोप होता है, जिस प्रकार समासमें इतर नकारान्त शब्दोंसे न्का लोप होता है।

एकोनसप्तति इत्यादि—एकेन ऊना सप्तति एकोनसप्तति; एकेन सप्तति एकान्नसप्तति, यहां एक को एकान् हुआ है।

एकादश—ग्यारहवां	सप्ततितम—सत्तरवां
विंश—विंशतितम—बीसवां	चतुःसप्तत-तितम—चौहत्तरवां
त्रिंश त्रिंशत्तम—तीसवां	अशीतितम—अस्सीवां
षष्टितम—साठवां	एकाशीत-तितम—एकासीवां
एकषष्ट-ष्टितम—एकसठवां	

नवतितम —९० वाँ	शततम —१०० वाँ
षण्णवतितम —९६ वाँ	सहस्रतम —१००० वाँ

नियम —

२। एकादशन् से नवदशन् तक शब्दोंके क्रमिक संख्यावाचक न् का लोप करनेसे बनते हैं।

३। विंशति से आगे क्रमिक संख्यावाचक तम लगानेसे, या अन्तिम स्वर का लोप कर या पूर्व स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जन का लोप कर अ लगानेसे बनते हैं। विंशति में ति का लोप होता है।

४। षष्टि, सप्तति, अशीति तथा नवति के क्रमिक संख्यावाचक केवल एकही प्रकार से—तम लगानेसे—बनते हैं।

सप्तदशोत्तर शतम्-वा सप्तदशाधिक शतम्=११७। त्रिसप्तत्यधिकनवशततमा विक्रमार्कसंवत्सरोऽयम्=संवत्—१९७३। अष्टाविंशत्युत्तराष्टशततम शालिवाहनवर्षमिदम् = शक १८२८। सप्तदशाधिकनवैकोनविंशतिशततम ख्रिस्ताब्दम्=इसवी सन १९१७।

५। ऊपरकी संख्या बतानेमें 'अधिक' लगाया जाता है।

तर तथा तम, ईयस् तथा इष्ठ आपेक्षिक तथा सर्वोत्कृष्टताद्योतक प्रत्यय हैं। उनका वर्णन पहिले आ चुका है। कुछ शब्दोंमें ईयस् तथा इष्ठ आगे होनेपर परिवर्तन होता है और इस प्रकार उनके रूप अनियत होते हैं। वे इस प्रकार हैं —

केवल	आपेक्षिक	सर्वोत्कृष्ट
प्रशस्य अच्छा	श्रेयस्	श्रेष्ठ
वृद्ध बूढ़ा	ज्यायस्-वर्षीयस्	ज्येष्ठ वर्षिष्ठ
अन्तिक पास	नेदीयस्	नेदिष्ठ
बाढ़-मजबूत	साधीयस्	साधिष्ठ

स्थूल-मोटा	स्थवीयस्	स्थविष्ठ
दूर-दूर	दवीयस्	दविष्ठ
युवन्-युवा	यवीयस्-कनीयस	यविष्ठ कनिष्ठ
ह्रस्व-छोटा	ह्रसीयस्	ह्रसिष्ठ
क्षिप्र फुर्तीला	क्षेपीयस्	क्षेपिष्ठ
क्षुद्र-नीच	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ
प्रिय-प्यारा	प्रेयस्	प्रेष्ठ
स्थिर-निश्चल	स्थेयस्	स्थेष्ठ
उरु-चौड़ा	वरीयस्	वरिष्ठ
बहुल-मोटा	बंहीयस्	बंहिष्ठ
दीर्घ लंबा	द्राघीयस्	द्राघिष्ठ
अल्प-थोड़ा	अल्पीयस्-कनीयस्	अल्पिष्ठ कनिष्ठ
पृथु-बड़ा	प्रथीयस्	प्रथिष्ठ
मृदु-कोमल	म्रदीयस	म्रदिष्ठ
कृश दुबला	क्रशीयस्	क्रशिष्ठ
दृढ-मजबूत	द्रढीयस्	द्रढिष्ठ
बहु-बहुत	भूयस्	भूयिष्ठ

इन सभोंमें तर तथा तम भी लगते हैं। ये रूप अनियत नहीं हैं। प्रशस्यतर, युवतर (न् का लोप), दीर्घतर, प्रियतम, बहुतम, ह्रस्वतम।

ऊपर दी हुई सूची कण्ठाग्र करनेकी आवश्यकता नहीं।

६। सर्वनामोंसे अव्यय इस प्रकार बनते हैं —

(अ) सर्वत, कुत (किम् से, जिसको कु होता है), यत, तत, इत, अत—तस् लगानेसे (जो हर विभक्तिके अर्थमें आ सकता है, पर विशेषत पञ्चमी वा सप्तमीके अर्थमें आता है। सार्वविभक्तिकस्तसि।)

(आ) तत्र, अमुत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, अत्र, यत्र, कुत्र—त्र लगानेसे
सप्तम्यर्थ, स्थलवाचक)।

(इ) सर्वदा, एकदा, अन्यदा, यदा, तदा, कदा—दा लगानेसे
सप्तम्यर्थ, कालवाचक)।

(ई) यथा, तथा, सर्वथा, कथम् (किम् से—केन प्रकारेण)—था
लगानेसे (प्रकारवाचक)।

(उ) पूर्वेद्यु:, अन्येद्यु:, अपरेद्यु: (दूसरे दिन)—एद्यु: लगानेसे
(उस दिन)।

सुमहान् भेदोऽनयो: शिष्ययो:।

अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्।

सुहृत्तमोऽपि राजा तद्वृत्तान्तमाकर्ण्य यतिपुरतः क्षिप्रं राजधानीमगच्छत्।

अभिज्ञात खल्वस्य वचनम्। अथ वा चन्द्रादमृतमिति किमत्राश्चर्यम्।

नास्ति भवतोऽपराधः। अहमेवात्रापराद्धा।

क्व रघुनाथ एषः। दिष्ट्या सुप्रभातमद्य यदयं देवो दृष्टः।

तपस्विना प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या तु सह भवति किमुत
सकलभुवनवन्दितचरणानां मुनीनाम्।

जितावता सकलमेव शिरा इवीय।

कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।

कच्चिन्मयापराद्धमनेन वा येन चिरमदनुजीविना परिजनेन? अति
निपुणमपि चिन्तयन् न पश्यामि स्वापराधमल्पमप्यात्मनस्त्वद्विषये।

देव! दिष्ट्या वर्धसे। प्रतिहतास्ते शत्रवः। चिरं जीव। जय पृथिवीम्।

यदुत्तरायणं तदहर्देवानाम्। दक्षिणायनं रात्रिः। संवत्सरोऽहोरात्रः।

त्रिंशता मासः । मासा द्वादश वर्षम् । द्वादशवर्षशतानि दिव्यानि कलियुगम् । द्विगुणानि द्वापरम् । त्रिगुणानि त्रेता । चतुर्गुणानि कृतयुगम् । एवं द्वादश वर्षसहस्राणि दिव्यानि चतुर्युगम् । चतुर्युगानामेकसप्ततिर्मन्वन्तरम् । चतुर्युगसहस्रं च कल्पः । स च पितामहस्याहः । तावती चास्य रात्रिः । एवंविधेनाहोरात्रेण मासवर्षगणनया शतस्यैव ब्रह्मणः वर्षशतमायुः । ब्रह्मायुषा च परिच्छिन्नः पौरुषो दिवसः । तस्यान्ते महाकल्पः । तावत्येवास्य निशा । पौरुषाणामहोरात्राणामतीतानां संख्यैव नास्ति । न च भविष्यताम् । आद्यनन्तता कालस्य ।

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे ।
नरकात् क्षीयते पापं कुगृहात् परिवर्धते ॥
वरमसौ दिवसो न पुनर्निशा ननु निशैव वरं न पुनर्दिनम् ।
उभयमेतदुपैत्वथवा क्षयं प्रियजनेन न यत्र समागमः ॥
यथा यथा भोजयशो विवर्धते सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम् ।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते प्रियालकालीधवलत्वशङ्कया ॥
सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥
कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥
स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥

हे मुनि! मैं आशा करता हूं कि आपकी तपस्याएं निर्विघ्न हैं।

यह योग्य है कि कर्णाटकी सब स्त्रियोंमें अधिक सुन्दर कही जाती है।

राजा तथा रानी दोनों धार्मिक थे।

हे मित्र! इस सत्कार्यमें सफल होनेके लिये मैं तुझे अभिनन्दन करता हूं।

क्या तुमने वह किस्सा पढ़ा है जो इस पुस्तकके ११५ वें पृष्ठमें वर्णित है?

धन आदमीको गर्वी बनाता है। यदि उसके साथ कुछ विद्या और उन्नत पद हो तो फिर क्या पूछना है!

क्या तुमको काशीमें पवित्र गङ्गाजीके तटपर हमलोगोंके मकानकी याद है?

स्वयं अव्यय शब्दसे ही मालूम पड़ता है कि इसको लिङ्ग, वचन, विभक्ति नहीं लगते।

सञ्ज्ञाशब्द।

अकिञ्चनत्व (न अकिञ्चनत्वम् कर्म०, नास्ति किञ्चन यस्य सोऽकिञ्चन, (३२ वां पाठ देखो) तस्य भावाऽकिञ्चनत्वम् वा नत्वम्)—वह दशा जिसमें पास कोई वस्तु न हो, दरिद्रता

अनर्थ (अनर्थ) पु—विपद्

अनाद्यनन्तता (स्त्री, नास्त्यादिर्यस्य सोऽनादि [बहु०], नास्ति अन्तो यस्य सोऽनन्त [बहु०], अनादि-श्चासावनन्तश्च [कर्मधा वा विशेषणम०] अनाद्यनन्तस्तस्य भावस्तता) आदि-अन्तरहितता

अभिरूप (अभिरूप) पु—विद्वान्

अलकाली (स्त्री अलक पु केश+आली-स्त्री पंक्ति) घने और टेढ़े केशोंकी पंक्ति

अविवेकिता (स्त्री न विवेकी अविवेकी नञ्स०, तस्य भावस्तता)—अविचार

अहोरात्र (अहोरात्र) पु अहश्च रात्रि-श्चाहोरात्र, द्वन्द्व, अहन् को अह और रात्रि को रात्र)—दिनरात
आश्चर्य्य (न)—आश्चर्य्य
उत्तरायण[1] (उत्तरायणम्) न उत्तर सर्व +अयन-न जाना)—वे छ मास जिनमें सूर्य्य दक्षिणसे उत्तर घूमता है।
कल्प (कल्प) पु—ब्रह्माका दिन (जिसका अन्त होनेपर प्रलय होता है)
कलियुग (कलियुगम्) न —कलियुग
कृतयुग (कृतयुगम्) न —सत्ययुग
चतुष्टय (चतुष्टयम्) न —चारका समुदाय
जाल (जालम्) न —खिड़की
तारा (स्त्री)—नक्षत्र
त्रेता (स्त्री)—त्रेतायुग
दक्षिणायन (दक्षिणायनम्) दक्षिण-सर्व + अयन-न, जाना —वे छ मास जिनमें सू उत्तरसे दक्षिणमें घूमता है।
द्वापर (द्वापर) पु—द्वापरयुग
निशा (स्त्री)—रात
परमाणु (पु कर्म०, परम + अणु —सबसे छोटा कण
परिजन (परिजन) पु—सेवक
पितामह (पितामह) पु (मह है)—दादा
प्रवेदन (प्रवेदनम्) न —कहना
प्रसूति (स्त्री)—सन्तति
भोज (पु)—एक राजाका नाम
मन्वन्तर (मन्वन्तरम्) न — मनुका समय *
याच्ञा—मांगना, प्रार्थना

---

[1] उत्तरे वा, उत्तरस्मात् वा, उत्तरस्मिन् वा—ये उत्तरके वैकल्पिक रूप नियम —पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, जिनके उच्चारणसे 'किससे' आकाङ्क्षा अवश्य हो, स्व जिसका अर्थ ज्ञाति वा धन न हो, अन्तर जिसका अर्थ बाहरी पहिननेका वस्त्र हो, सर्वनाम हैं, और प्र व व, पचमी तथा सप्तमी के एकव विकल्पसे सब नामके ऐसे रूप होते हैं। जैसे—पूर्वस्यां पूर्वायां वा दिशायाम्, उत्तरे उत्तरे वा मार्गे, स्वे स्वा (आत्मीया), अन्तरे अन्तरा वा गृहा (बाह्या), अ अन्तरा वा शाटका (अर्थात् परिधानीया)।

* एक मन्वन्तरमें ४३,२०,००० × ७१ = ३०,६७,२०,००० वर्ष होते हैं।

म (पु)—किरण
धानी (स्त्री)—राजधानी
य (विषय) पु—विषय
रिणाम (विपरिणाम) पु—
परिवर्तन
ान्त (वृत्तान्त) पु—हाल
व (सम्भव) पु—जन्म
(सर्ग) पु—सर्ग

सवत्सर (संवत्सर) पु—वर्ष
सुप्रभात (सुप्रभातम्) न (प्रादिस०, शोभन वा सुष्ठु प्रभातम्)—शुभ प्रात काल
स्खलित (स्खलितम्) न (स्खल् भ्वा पर + त)—गलती, प्रमाद

विशेषण।

त (अति+इ+त)—बीता हुआ
गुण (अधिका गुणा यस्य सोऽधिगुण [बहु०])—गुणवान्
घ (स्त्री अनघा बहु०, नास्ति अघ दुःख यस्या सा)—नीरोग
जीविन्—सेवक
राद्ध (अप+राध्-दि पर अप राध करना+त)—१ (कर्तरि) अपराधी २ (कर्मणि)—विरोधित
जात (अभि+जन्—[दा] दि आ+त) विनीत, कुलीन
त (उद्+यम् [यच्छ्] भ्वा, आत्म+त)—तैयार
गुण (बहु०)—चौगुना

ज्योतिष्मत्—प्रकाशमान
तावत्—उतना
त्रिगुण (बहु०)—तिगुना
दिव्य—स्वर्गीय
दु सह—सहनेमें कठिन
द्विगुण (बहु०)—दूना
परिच्छिन्न (परि+छिद्+त)—परिमित
पौरुष—विष्णु का
प्रतनु—(प्रादिस०, प्रकृष्ट तनु)—बहुत छोटा
प्रतिहत (प्रति+हन्+त)—नष्ट
मखज (मख-पुं यज्ञ+ज जन् से)—यज्ञसे उत्पन्न
मोघ—व्यर्थ
राजन्वत्—जिसमें अच्छा राजा है

रसिक (स्त्री०—का)—रसज्ञ
रोपित (रुह्-अर+त)—लगाया हुआ
वन्दित (वन्द्-भ्वा आ+त)—प्रणाम किया गया
सकल (बहु०, कलाभि अवयव सहित सकलम्)—सब
सदृश—समान
सङ्कुल—पूर्ण

धातु।

वि+अञ्ज् (व्यनक्ति-रु पर)—प्रकट करना
वि+वृ (वर्तते-भ्वा पर)—परिवर्तन को पहुंचना
वि+दु (विदुनोति-स्वा पर)—दुःख देना
सस्ज् (सज्जति-ते-भ्वा उभ)—जाना, लगाना

अव्यय।

अतिनिपुणम्—बड़ी कुशलतासे, बड़े ध्यानसे
कामम्—मान लिया
कच्चित्—१ (आशा या इच्छाको जताता है)—मैं चाहता हूं, मैं आशा करता हूं, २ प्रश्न
क्षिप्रम्—शीघ्र
दिष्ट्या—सुदैवसे (दिष्टि का तृ व
वरम्—अच्छा
सहस्रशः—हजारों

पाठ ३२।

समास—अव्ययीभाव तथा तत्पुरुष।

आरम्भिक समासोंका विवरण ११ वें तथा १२ वें पाठमें, शब्दसङ्ग्रहमें, तथा टिप्पणियोंमें दिया जा चुका है। विशेष विवरण इस अग्रिम पाठमें दिया गया है।

यथाशक्ति, प्रतिदिनम्, उपकृष्णम्—इनमें यथा, प्रति, तथा उप का

प्रधान है, इसलिये इन समासोंके अर्थ—'शक्तिके अनुसार,' 'प्रतिदिवस', या 'कृष्णके पास' ये है।

अव्ययीभाव—इस समासमें प्राय पूर्वपदके अर्थकी प्रधानता रहती है। बाधक—शाकप्रति=शाकस्य लेश शाकप्रति। इसमें उत्तरपद प्रति का अर्थ प्रधान है। क्योंकि इस समासका अर्थ 'शाकका लेश' है।

प्रधान अव्ययीभावोंके विग्रह नीचे दिये जाते हैं—

हराविति अधिहरि (इसको सप्तमी विभक्त्यर्थ अव्ययीभाव कहते हैं। अधि सप्तमीके अर्थमें है, कृष्णस्य समीपमुपकृष्णम्, यावन्त श्लोका तावच्छ्लोकमच्युतप्रणामा (विष्णुको उतने प्रणाम जितने श्लोक, यावत् अवधारण वा निश्चयका बोध कराता है), यावदमत्र ब्राह्मणानामन्त्रय=यावन्त्यमत्राणि तावतो ब्राह्मणानित्यर्थ (जितनी थालियां हों उतने ब्राह्मणोंको बुलाओ), जीवनपर्यन्त यावज्जीवम्, विधिमनतिक्रम्य यथाविधि, गङ्गाया पारे पारेगङ्गम्-पारेगङ्गाद्वा गङ्गाया मध्ये मध्येगङ्ग मध्येगङ्गाद्वा (पार तथा मध्य को पारे तथा मध्ये होता है और समास समासोंके रूपमें भी प्रयोग किया जाता है), दिने दिने प्रतिदिनम्, तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम् (जैसे सतृणमत्ति), अक्ष्ण पर परोक्षम् (पर को परो), अक्षण प्रति प्रत्यक्षम्, रूपस्य योग्यमनुरूपम्, हरे पश्चादनुहरि, ज्येष्ठानुक्रमेण अनुज्येष्ठम्, हिमाचलमारभ्य आहिमाचलम्, आहिमाचलाद्वा, सेतुपर्यन्तम् आसेतु आसेतोर्वा, मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् ('कृत त्वया साम्प्रत निर्मक्षिकम्'—तुमने अब यहांसे सबको हटा दिया है, तुमने इस स्थानको मक्खीसे भी शून्य कर दिया है।)

समासान्त प्रत्यय—आत्मानमधिकृत्येति अध्यात्मम्, अहनि अहनि इति प्रत्यह प्रत्यह वा—अव्ययीभावमें शब्दके अन्तिम अन् का लोप होता है और उसको अ लगाया जाता है। यदि वह अन्नन्त शब्द नपुसक हो तो ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं।

तत्पुरुष—

द्विजायाय द्विजार्थं, ओदन, द्विजायैय द्विजार्था यवागू, द्विजायै
द्विजार्थं पय —

चतुर्थीतत्पुरुष चतुर्थ्यन्त पद तथा अर्थशब्दका होता है, और
समासको विशेष्यका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति होती है। इसको नित्य
समास कहते हैं। खट्वारूढ का अर्थ है जालम वा नीच, इसका विग्रह
वाक्य नहीं दिखा सकते। इसलिये इसको नित्यसमास कहते हैं। विद्यार्थी
को जमीनपर सोना चाहिये। यदि वह खटियापर सोये तो वह खट्वारू
अर्थात् अविनीत कहा जाता है। खट्वामारूढ से यह अर्थ नहीं निकलता
अर्थ शब्द लगाकर द्विजार्थ का विग्रहवाक्य नहीं दिखा सकते। इसलि
यह नित्यसमास है। वह समास जिसका विग्रह हो न हो सके, वा समास
के पदोंको अलग वाक्य बनाकर नहीं दिखाया जा सके, उसको नित्यसमा
कहते हैं। अधिहरि, प्रतिदिनम्, इत्यादि सब नित्यसमास हैं।
प्रकार—अविग्रहोऽस्वपदविग्रहो वा नित्यसमास ।

अश्वघास,—अश्वस्य घास, रन्धनस्थाली—रन्धनस्य स्थाली। ये षष्ठी
तत्पुरुष समास है। यूपाय दारु यूपदारु—चतु तत्पु तभी होता है
प्रकृतिविकृतिभाव हो। यूपदारुमें दारु प्रकृति वा मूल कारण है और
विकृति वा उससे बनी हुई वस्तु है। इस प्रकारका सम्बन्ध अश्व
घासमें नहीं है, और न रन्धन और स्थाली में, इस लिये अश्वघास
रन्धनस्थाली इत्यादि षष्ठीतत्पुरुष समास है, चतुर्थीतत्पुरुष नहीं।

पुरुषोत्तम —पुरुषेषु उत्तम, नृषु श्रेष्ठ नृश्रेष्ठ द्विजेषु वर द्विजव
द्विजेषु सत्तम द्विजसत्तम —

पुरुषाणामुत्तम वा पुरुषेषु उत्तम, नृणामुत्तम अथवा नृषु उत्तम
दोनों प्रयोग शुद्ध हैं। ऐसी जगहपर षष्ठी तथा सप्तमी निर्धारणषष्ठी त
निर्धारणसप्तमी कहाती है, क्योंकि एक व्यक्ति गुणके निमित्त जा

वर्ग) से अलग की जाती है, (निर्धारण=निश्चय) और निश्चित की
जाती है। निर्धारणषष्ठीका समास निषिद्ध है। इसलिये इस अर्थमें
हा समास हो उसको सप्त तत्पु समझना चाहिये, षष्ठी तत्पु नहीं।
. एकदेशिसमास वा अवयविसमास—पूर्वं कायस्य पूर्वकाय,
अपरं कायस्य अपरकाय मध्य रात्रे मध्यरात्र, मध्यमह्न (अह्न् का प
र) मध्याह्न, सायमह्न सायाह्न—
यह अवयव तथा समुदायका समास है। एकदेशका अर्थ है
पव, तथा एकदेशीका अर्थ है अवयवी—समुदाय।
कर्मधारय—पूर्वं स्नात पश्चादनुलिप्त स्नातानुलिप्त (पहिले नहा
। फिर चन्दन लगा चुका)

मेघ इव श्यामो मेघश्याम, चन्द्र इव सुन्दर चन्द्रसुन्दरम्, सप्त च ते
पय सप्तर्षय (संख्यावाचक), शीत च तदुष्ण च शीतोष्णम् (विशेषण-
स), पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्र, वदन कमलमिव वदनकमलम
उपमितसमास, क्योंकि पुरुष वदनम् इत्यादि उपमित या उपमेय
हैं, सादृश्यका विषय है)। पुरुषो व्याघ्र इव शूर—यहा समास नहीं
। साधारण धर्मका प्रयोग हो वहा समास निषिद्ध है।

नञ्तत्पुरुष—न ब्राह्मण अब्राह्मण
द्विगु—त्रयाणा लोकाना समाहारस्त्रिलोकी, पञ्चाना पात्राणा समा-
र पञ्चपात्रम्, अष्टानामध्यायाना समाहारोऽष्टाध्यायी, चतुर्णा
णा समाहारश्चतु सूत्री—
ये समाहारद्विगुके उदाहरण हैं। समाहारका अर्थ है समुदाय।
कारान्त समाहारद्विगु स्त्रीलिङ्गमें होता है। समासके अन्तिम अ का
प होता है और उसकी जगह ई होता है।
मासो जातस्यास्य मासजात, एव संवत्सरजात—ये तत्पुरुष
होते हैं।

अनास्मिञ्जन्मनि न कृतमवदात कर्मास्माभि । जन्मान्तरकृत हि फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि ।

किमत्र क्रियते दैवायत्ते वस्तुनि । मुच्यता शोकानुबन्ध । एतस्येदृशं दर्शनेन कीदृशो मे हृदयानुबन्ध इति जानासि ।

पर हि दैवतमुपाय । यत्नेनाराधिता यथाधर्मोचितफलाना दुर्लभानामपि वराणा दातारो भवन्ति ।

प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा भवन्ति सता चेतांसि ।

दिवसस्येयमतिकष्टा दशा वर्तते । तथा हि रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन् मातपमनवरतमनलधूलिनिकरमिव विकिरति करैः । अधिकामुपजनयति तृषाम् । सन्तप्तपांसुपटलदुर्गमा भू । अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि । अप्रभुरस्म्यात्मन । सीदति मे हृदयम् । अन्धकारतामुपयाति चक्षु । अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत् ।

ज्ञाने मौन क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्यय ।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव ॥

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन
गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममु वृणीष्व
रत्न समागच्छतु काञ्चनेन ॥

शरण करवाणि शर्मद ते
चरण वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणै कटाक्षपातै
कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥

इस गांवका रहनेवाला कोई ब्राह्मण ज्ञानसम्पादनके लिये दूसरे गांव
।

सज्जनको अपने किये हुए पापका विचार जन्मभर दु:ख देता है ।

द्वारकाद्वीप समुद्रके बीचमें है ।

गर्मी तथा प्याससे सताया मैं एक पग भी नहीं चल सकता ।

मेरा शरीर दिन २ क्षीण हो रहा है । कदाचित् मेरी इच्छा न रहनेपर यम मेरे प्राण लेले ।

यद्यपि वह निर्धन था तो भी बड़ा उदार था, अथवा इसमें आश्चर्य है ? क्योंकि वह दयालु था ।

वह सब अध्यापकोंमें उत्तम था, उसको विद्यार्थी सबको पिताके
ान मानते थे ।

ज्यों२ तुम अधिक काम करोगे त्यों२ तुम्हारा नाम होगा ।

संज्ञाशब्द ।

क (अङ्ग+क-एक प्रत्यय जो कोमलताके अर्थमें आता है) न—कोमल अङ्ग	कटाक्ष (कटाक्ष) पु—चितवन
ल (अनल) पु—अग्नि	कर (कर) पु—किरण
बन्ध (अनुबन्ध) पु—१ बन्धन, सातत्य, २ प्रेम	काञ्चन (काञ्चनम्) न—सुवर्ण
म्बा (स्त्री)—माता	गुणानुबन्धित्व (न गुण पु—अनुबन्ध-पु बन्धन, सातत्य)—गुणोंका लगातार चलना
म्बर (अम्बरम्) न आकाश	तल (तलम्) न—तल
तप (आतप) पु—गर्मी	तृषा (स्त्री)—प्यास
	त्याग (त्याग) पु—दान

१। सं ए व हे अम्ब, पर अम्बिका नियत है, हे अम्बिके ।

दैवत (दैवतम्) न —देवता
धूलि—तथा धूली (स्त्री)—धूल
निकर (निकर) पु —समूह
पटल (पटलम्) न —राशि, समूह
पांसु (पु)—धूलि
पात (पात) पु —गिरना
पिपासा (स्त्री)—प्यास
प्रसव (प्रसव) पु —जन्म
मौन (मौनम्) न —चुप रहना
वर (वर) पु —वर
विपर्यय (विपर्यय) पु —वैपरीत्य
विरोध
श्लाघा (स्त्री)—स्तुति
सार्थवाह (सार्थवाह) पु —समुदाय का अगुआ

विशेषण।

अचर—अचल
अतिकष्ट—अतिदु खदायी
अतिप्रबल—अतिबली
अप्रभु—असमर्थ
अवदात (अव + दै—भ्वा पर + त) —शुद्ध, पवित्र
अवसन्न (अव + सद् [सीद्] भ्वा पर + त)—डूबता हुआ, —झुका हुआ
आयत्त (आ + यत् भ्वा आ + त) अधीन
आराधित (आ + राध्-चु पर + त) पूजित
आर्द्र—गीला
उपजीव्य (उप + जीव्—भ्वा पर + य)—आश्रय
कामद—सब मनोरथोंको करनेवाला
कृतार्थ—कृतकृत्य
चर—चल
दुर्गम—पार करनेमें कठिन
मसृण—कोमल
सन्तप्त (सम् + तप्—भ्वा पर + त) —गरम
समीहित (सम् + ईह्—भ्वा + त)—इष्ट

धातु।

उप + जन् (प्रेर उपजनयति)—उत्पन्न करना
उप + नी (उपनयति—भ्वा पर लाना, उत्पन्न करना

+पद् (प्रे उपपादयति)—उत्पन्न करना | सद् (सीदति भ्वा पर)—झुकना, डूबना
+या (उपयाति—भ्वा पर)—समीप जाना, पाना | सम्+आ+गम् (समागच्छति भ्वा पर)—मिलना
+कॄ (विकिरति—तु पर)—बिखेरना |

अव्यय।

रतम् (अन्+अव+रम्+त) निरन्तर | (यह सम्भव तथा इच्छा का बोध कराता है।)
नाम—सम्भव है, जैसा मैं चाहता हूं। | अलम्—समर्थ
 | अल्प—थोड़ा

पाठ ३३।

बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व समास।

बहुव्रीहि—प्राप्तमुदक य स प्राप्तोदको ग्राम, वीरा पुरुषा य स वीरपुरुषको ग्राम, पीतमम्बर यस्य स पीताम्बरो हरि। (इसमें समासके पद समानाधिकरण अथवा एक विभक्तिमें होते हैं) समासमें दो वा अधिक पद होते और वे समानाधिकरण रहते हैं।

व्यधिकरण बहुव्रीहि—असि पाणौ यस्य स असिपाणि, दण्ड पाणौ यस्य स दण्डपाणि। इस बहुव्रीहिमें पद समानाधिकरण नहीं होते। इस प्रकारका समास कहीं २ होता है, सर्वत्र नहीं।

तद्गुणसविज्ञान तथा अतद्गुणसंविज्ञान—इस लोग कहते हैं—लम्बकर्णमानय जब लम्बकर्ण (लम्बौ कर्णौ यस्य स, गर्दभ इत्यर्थ) गदहा आता है तो उसके लंबे कान भी उसके साथ आते हैं,

इस प्रकार उससे गुणकी—लवे कानकी—पहिचान (सविज्ञान) है। इस लिये यह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि हुआ। अब हम लोग कहते हैं दृष्टसागरमानय (दृष्ट सागरो येन स दृष्टसागरस्तं दृष्टसागरम्), तो गुणकी कोई पहिचान नहीं है—इस लिये यह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि हुआ।

सीतया सह वर्ततेऽसौ—वा वर्तमान ससीत सहसीतो वा (को विकल्पसे स होता है), उत्तरस्याः पूर्वस्या दिशोऽन्तराल सुत्तरपूर्वा, दक्षिणस्या पूर्वस्या अन्तराल दक्षिणपूर्वा—इस समास बहुव्रीहि कहाते है।

वक्तु कामो यस्य स वक्तुकाम., गन्तु मनो यस्य स गन्तु(काम और मनस् आगे रहनेपर तुमके म् का लोप होता है।)

आहित अग्निर्येन स आहिताग्नि, अग्न्याहितो वा, अ येन स अभ्युद्यत (कहीं २ तमत्ययान्त उत्तरपद भी होता है)।

बहुव्रीहि समासमें प्राय अन्यपदार्थ प्रधान रहता है।

बाधक—द्वित्रा (द्वौ वा त्रयो वा) इत्यादि। इसमें दोनों पदोंके अर्थ प्रधान है।

समासान्त प्रत्यय—सस्त्रीक, सवधूक, बहुकर्तृक— यदि बहुव्रीहिका उत्तरपद ऋकारान्त दीर्घ ई वा ऊकारान्त हो तो समासको क लगता है। सकर्मकम्, अकर्मकम्—(२) बहुव्रीहि समासके अन्तमें क लगता है।

एको वा द्वौ वा एकद्वा, द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा, त्रयो वा च त्रिचतुरा, चत्वारो वा पञ्च वा चतुष्पञ्चा, पञ्च वा षड् वा प दशाना समीपे ये सन्ति ते उपदशा', द्विर्दश द्विरावृत्ता वा दश द्विद त्रिंशतेरधिका अधिकत्रिंशा, आसन्नत्रिंशा, अदूरपञ्चाशा, चत्वारिंशा—(३) संख्यावाचकका संख्यावाचकके साथ, अव्ययके

...र्भ, -प्रभूर, -वा, अधिकके साथ-समास बहुव्रीहि समास है। ... अन्तिम स्वर वा उपान्त्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता ...उसे-अ लगता है। विंशतिके ति का लोप होता है और चतुर्- ...लगता है।

केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तमिति केशाकेशि, दण्डैर्दण्डैश्च ...दं युद्धं प्रवृत्तमिति दण्डादण्डि, मुष्टीमुष्टि—(४) ऐसे समासों- ...व्यवना बहुव्रीहिमें होती है। इसमें पूर्वपदके अन्तिम स्वरको ...होता है और समासके अन्तमें इ लगता है। यह समास अव्यय ...और क्रियाकी पुनरुक्ति (कर्मव्यतिहार) का बोध कराता है।

...कमले इवाक्षिणी यस्य स कमलाक्ष, हरिणस्य अक्षिणी इव ...क्षिणी यस्या सा हरिणाक्षी—(५) बहुव्रीहिके अन्तमें अक्षिको ...होता है (स्त्री अक्षी)।

...नास्ति प्रजा यस्य स अप्रजा, दुष्टा मेधा यस्य स दुर्मेधा, शोभना ...यस्य स सुप्रजा, —(६) नञ् (अ), दुस्, तथा सु पूर्व रहनेपर प्रजा ...मेधाको प्रजस् तथा मेधस् होता है।

...सीता जाया यस्य स सीताजानि —(७) बहुव्रीहिके अन्तमें जायाको ...होता है।

...त्वामधिरुढमधिज्यम्। अधिज्यं धनुर्यस्य स अधिज्यधन्वा (जिसके ...र प्रत्यञ्चा या डोरी चढ़ी हुई है)—(८) बहुव्रीहिके अन्तमें धनुस्को ...होता है।

...शोभनौ पादौ यस्य स सुपाद्, द्वौ पादौ यस्य स द्विपाद्—(९) सु ...संख्यावाचक पूर्व होनेपर पादको पाद् होता है। चतुष्पद—द्वि ..., चतुष्पदाम्—ष व व।

...शोभनो गन्धो यस्य स सुगन्धि, उद्गतो गन्धो यस्य स उद्गन्धि, ...सांसो यस्य स सुरभिगन्धि, पद्मस्येव गन्धो-यस्य स पद्मगन्धि —

(१०) उद्, पूति, सु, सुरभि पूर्व रहनेपर, वा जहां समास सादृश्य में हो, बहुव्रीहि समासके अन्तिम 'गन्ध'को 'गन्धि' होता है।

द्वन्द्व—यह दो प्रकारका होता है, इतरेतरद्वन्द्व और समाहार रामलक्ष्मणौ, हरिहरौ, युधिष्ठिरार्जुनौ, इत्यादि इतरेतर उदाहरण हैं।

पाणिपादम् (पाणी च पादौ च तयो समाहार), रथिकाश्वारोहम्, मार्दङ्गिकपाणविकम्, यूकालिक्षम्, इत्यादि समाहारद्वन्द्वके उदाहरण हैं। शरीरावयववाचकोंका, अवयववाचक, वा वाद्य (बाजा) वादकोंका, क्षुद्रजन्तुवाचकोंका, स्वाभाविक विरोध रखनेवाले प्राणिवाचकोंका समास समाहारद्वन्द्व ऐसे स्थानपर इतरेतर योग नहीं मानते। पाणिपादौ नहीं होता।

देवताद्वन्द्व—मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ, सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ; अग्नीषोमौ, अग्नीवरुणौ (पूर्वपदके अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है)।

इतरेतरद्वन्द्वमें दोनों पदोंके अर्थोंको प्रधानता रहती है, पर समाहारद्वन्द्वमें समुदाय प्रधान रहता है।

एकशेष—माता च पिता च पितरौ, भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ, पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ, हंसी च हंसश्च हंसौ, श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ

अलुक्‌समास—युधिष्ठिर, परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, विश्वामित्र, सरसिजम् इत्यादि।

स्वर्गस्य पन्था स्वर्गपथ, रम्य पन्था यस्य स रम्यपथो देश (समासान्तमें पथिन्‌को पथ होता है), विष्णो पू विष्णुपुरम्, राज्यस्य धू राज्यधुरा (पुर् तथा धुर्‌को अ लगता है)।

पृषोदरादि—पृषत (बूंदका) उदर पृषोदरम्, वा पृषत् उदरं यस्य सत् पृषोदरम् (पवन), मनस ईषिण (विचार करनेवाला

पेण' (पण्डित), वारीणां वाहक वलाहक, (मेघ)—कुछ में पूर्वपदके कुछ अक्षरोंका लोप होता है। ऐसे अनियत समासों-स गणमें समावेश होता है।

सुप्सुप्समास—पूर्वं भूत भूतपूर्व, पूर्वं दृष्ट दृष्टपूर्व—यह ऐसा है जिसकी गणना अव्ययीभा०, तत्पु०, बहु०, वा द्वन्द्वमें नहीं हो । इसमें एक सुबन्त (जिसके अन्तमें सुप् अर्थात् विभक्ति हो) दूसरे सुबन्तके साथ समास होता है।

बन्धे इदानीमाधिक्यं मे चेत।

न शक्नोमि भवन्तं विना क्षणमप्यवस्थातुमेकाकी। कथमपरिचित दृष्टपूर्वं इवाद्य मामेकपदे उत्सृज्य प्रयासि!

सखे! नैतत्सुकरं भवत। सुदूरगन्तव्य एष मार्गः। धैर्यधना हि। किं च कथन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि?

अहह! हृदयमर्मच्छिद खल्वमी कथोद्घाता।

किमपि वक्तुकामोऽस्मि।

वत्स! कथय किमप्यन्यचेतसा मया नावधारितं किमनयोक्तमिति।

प्रकारेणापि शब्दप्रयोग बहवोऽर्था गम्यन्तेऽचिरेणेति पाणिविहारेण। वक्ता कश्चिदर्थमभिधायी भवति। आशु वर्णनमभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण। चिरतरेण। तद्यथा। तमेवाध्वानं कश्चिदाशु गच्छति। कश्चिच्चिरेण ति। कश्चिच्चिरतरेण गच्छति। रथिक आशु गच्छत्यश्वश्चिरेण पदाति-तरेण।

गुरुवदस्मिन् गुरुपुत्रे वर्तितव्यमन्यत्रोच्छिष्टभोजनात् पादोपसंग्रहणाच्च। स गुरुपुत्रोऽपि गुरुर्भवति तदपि कर्तव्यं भवति।

अतिमहदिदमाश्चर्यमाख्यातव्यम्। श्रूयतामयम्। ... च वाक्यमयं। तदुत्तिष्ठन्तु भवन्त। सर्वं एवाचरन्तु यथोचितं दिवस-

व्यापारम् । अपराह्णसमये भवतामाहितं प्रभृति सर्वमावेदयामि । यच्चानेन कृतमपरस्मिन्नस्मिन्नहोह लोके यथासर सभूति ।

तत् शोऽतद् गुणेति बहुव्रीहिर्द्विधा मत ।
लम्बकर्णस्य कर्णाटो दृष्टमाभारपूरुष ॥

अहो दुरावदोऽय राजमहिमा तथाहि—

न च न परिचितो न चाप्यगम्यश्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवो नवोऽयमस्याः

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थान सिद्धिहेतव ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥

वाह ! समुद्रके बीच यह द्वीप कैसा सुन्दर है !

आप यहां तीन या चार दिन ठहरें । इतने अवसरमें मैं आपका सिद्ध करनेका यत्न करूंगा ।

दोनोंकी रक्षा करना आपको उचित ही है, क्यों कि आप अपने पुरखोंके कार्यका अनुकरण करते हैं ।

अरे ! यह सबेरा हो गया । मुझे शीघ्र उठना चाहिये । अथवा मैं उठकर क्या करूंगी ? मेरे हाथपैर तो चलते नहीं ।

मृगया (शिकार) से लौटे हुए राजाने गोदावरीके तटपर ... किया, और नदीसे आनेवाले मन्दपवनसे उसकी थकावट मिट गयी ।

मेरा मन दूसरी ओर लगा था, इसलिये मैंने तुम्हारी कही हुई न सुनी ।

वह मित्र, जो राजाको अच्छी सलाह नहीं देता, खराब मित्र है ।

जब वह राजा, जिसके धनुषपर डोरी चढ़ी हुई थी, जिसके दीर्घ थे तथा छाती चौड़ी थी, युद्धभूमें उतरा, उसके सब शत्रु सहसा उसके शरण आये ।

संज्ञाशब्द।

(अर्णव) पु—समुद्र	दोला (स्त्री)—झूला
(आगम) पु—शास्त्र, वेद	निकोच (निकोच) पु—सङ्कोच
...हरण (उपसङ्गहरणम्) न—पैरोंको दबाना	पदाति (पु)—पैदल सवार
(ओघ) पु—समूह	रथिक (रथिक) पु—रथारूढ़
...द्घात (कथोद्घात) पु—कथाका आरम्भ	विहार (विहार) पु.—क्रीड़ा, टहलना
...ट (कर्णाट) पु—कर्णाटक देशका वासी	व्यापार (व्यापार) पु—काम
	सम्भूति (स्त्री)—जन्म

विशेषण।

...रूढ़ (अधि+रुह्+त)—चढ़ा हुआ	दुरासद—कठिनाईसे पाने योग्य
...र्य—योग्य	प्राकृत—मामूली
...धारित (अव+धृ—णिच् पर+त)—विचारित	मर्मच्छिद् (मर्मन् न)—मर्मस्थानको काटनेवाला
...रुष्ट (उद्+भिद् ? पर+त)—फूटा	[1]विक्लवीभवत्—व्याकुल होता हुआ
...किन्—अकेला	क्षुण्ण (क्षुद् ? तथ+त)—कुचला गया हुआ
...द्वीय—गङ्गाका	क्षुद्र—तुच्छ

[1] न विक्लव विक्लव यथा सम्पद्यते तथा भवतीत्यर्थ—यहां अभूततद्भाव अर्थ है। ...में संज्ञा या विशेषण कोई लगाया जाता है और उसके बाद कृ, भू, अस् धातुओं ...रूप जोड़े जाते हैं।

धातु ।

आ + विद् (प्रे)—कहना, निवेदन करना
प्रति + आ + सद् [सीद्] प्रत्यासी- इति भ्वा पर)—पास प
प्र + या (प्रयाति—अ प)—

अव्यय ।

अहह—आ ! (आश्चर्य दिखाता है।) डरा हुआ वा आश्चर्ययुक्त
आशु—शीघ्र
एकपदे—अकस्मात्
चकितम् (चक्-भ्वा चम + त)
पार्श्वम् (पार्श्व पु, न)—
प्रभृति—आरम्भ कर

पाठ २४।

कारक।

कारकोंके अर्थ हुवे पाठमें दिये गये हैं। विशेष धातुओं और उपस
के योगमें उनके प्रयोग शब्दसमूहों तथा टिप्पणियोंमें कहे गये
विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये इस पाठमें विस्तारसे उनका वर्णन कि
जाता है।

षष्ठीको छोड़ और सब विभक्तियां कारकविभक्तियां कहाती
क्योंकि ये क्रियाके साथ अन्वित होती हैं। षष्ठी इस प्रकार क्रियाके
अन्वित नहीं होती। यह विशेषणके अर्थमें आती है और वि
विभक्ति कहाती है।

- प्रथमा—यह नाम की विभक्ति है। इसका अर्थ नाम अथवा
पदिक है। कर्तरि प्रयोगमें कर्ताके अर्थका क्रियासे बोध होता है।
लिये प्रथमान्त, यद्यपि वह कर्ता हो, कर्ताके अर्थमें नहीं कहा
क्योंकि कर्ता अभिहित अर्थात् क्रियासे बोधित है।

प्रधोलिखित प्रथमाके अर्थ है—

(१) माणवक पुस्तक लिखति—प्रातिपदिकार्थ, नामार्थ, या
र्थ। यह कर्तरि प्रयोग है और कर्ता क्रियासे उक्त है।

(२) द्रोणो व्रीहि—परिमाण यहा द्रोणका अर्थ है द्रोणपरिच्छिन्न,
त्मक परिमाणसे नया हुआ।

(३) हे देवदत्त—सम्बोधन।

द्वितीया—इसका अर्थ है अनभिहित कर्म। कर्मणि प्रयोगमें कर्मका
क्रियासे अभिहित होता है। इसलिये कर्म प्रथमान्त होता है।

(१) माणवको ग्रन्थ लिखति—यह कर्त्तरि प्रयोग है। यहा कर्मका
से बोध नहो होता और इस प्रकार, वह अनभिहित है। इसलिये
या हुइ। माणवकेन ग्रन्थो लिख्यते—यह कर्मणि प्रयोग है और कर्म
यते' से अभिहित है, द्वितीयासे इसका बोध नहो होता। इसलिये
दिक अर्थमें 'ग्रन्थ' से प्रथमा हुई।

विषवृक्षोऽपि सवर्ध्य स्वय छेत्तुमसाम्प्रतम्—यहा असाम्प्रतम् इस
से कर्मका बोध होता है क्योंकि इसका अर्थ 'न युज्यते' (योग्य नहो
) है। इसलिये विषवृक्षसे प्रथमा हुई।

स्वयमेव दृश्यन्ते दुष्टजनदोषा—यह कर्मकर्त्तरिप्रयोग कहाता है।
दोष कर्ता भी है और कर्म भी। इसका अर्थ है—दोष और किसीसे
नहो जाते, वे स्वय अपनेहोसे देखे जाते हैं।

(२) दुह्, याच्, इत्यादि द्विकर्मक धातु है। (१०६ वे पृष्ठमें
को देखो) इन धातुओंके अर्थके दूसरे धातु द्विकर्मक होते हैं।

गा दोग्धि पय, व्रजमवरुणद्धि गाम्, माणवक मार्ग पृच्छति,
गां भिक्षते याचते वा, पुत्र धर्म ब्रूते अनुशास्ति वा, वृक्षमव
नोति फलानि, अजा ग्राम नयति-हरति वहति-कर्षति वा, तण्डुला
दन पचति, शत मुष्णाति देवदत्तम्, इत्यादि।

इन उदाहरणोंमें एक प्रधानकर्म है, दूसरा गौण कर्म। पयः, मार्गम्, ग्राम, धर्मम्, फलानि, अजाम्, ओदनम् और शतम्, प्रधान कर्म है; इतर कर्म गौणकर्म है।

गां दोग्धि पयः—गौर्दुह्यते पयः, वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्षोऽवचीयते फलानि, अजां ग्रामं वहति—अजा ग्राममुह्यते—

३। नी, हृ, कृष, तथा वह्के कर्मणि प्रयोगमें प्रधान कर्म, इतर दुहादि धातुओंके कर्मणि प्रयोगमें गौणकर्म क्रियासे अभिहित होता है, इसलिये वह प्रथमामें रहता है और दूसरा कर्म द्वितीयामें।

प्रेरणार्थक प्रयोगोंमें ये नियम हैं —

हरिः पुस्तकं लिखति (अण्यन्तरचना, णिच् वा णि प्रेरणार्थक प्रत्यय, ण्यन्तरचना=प्रेरणार्थक प्रयोग, और अण्यन्तरचना=अप्रेरणार्थक प्रयोग)

माणवको हरिणा पुस्तकं लेखयति—ण्यन्तरचना अथवा प्रेरणार्थक प्रयोग। माणवक हेतुकर्ता कहाता है।

माणवकेन हरिः पुस्तकं लेख्यते—प्रे कर्मणि प्रयोग।

४। अण्यन्त रचनाका कर्ता ण्यन्त रचनामें तृतीयान्त होता है।

गच्छति भृत्यो ग्रामम्। गमयति भृत्यं ग्रामं राजा। गम्यते भृत्यो राज्ञा। देवा अमृतमश्नन्ति। हरिर्देवानमृतमाशयति। हरिणा अमृतमाश्यन्ते।

> शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
> आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम्॥
> आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥
> दर्शयति हरिं भक्तान्—

५। गमनार्थक, ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक, तथा ऐसे धातु जिनका कर्म ग्रन्थ हो, तथा अकर्मक धातुओंका अण्यन्त रचनाका कर्ता ण्यन्त र

...तीयान्त होता है, तृतीयान्त नहीं। ऊपर दिये हुए श्लोकोंमें इस ...सके सब उदाहरण हैं। दृश् धातुमें भी वैसा ही प्रयोग होता है। नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा ...ङ् ।—

६। नी तथा वह् धातुका अण्यन्त रचनाका कर्ता ण्यन्त रचनामें ...यान्त रहता है, और हृ तथा कृ का अण्यन्त रचनाका कर्ता ण्यन्त ...नामें-द्वितीयान्त वा तृतीयान्त रहता है।

बोध्यते माणवकं धर्मं, बोध्यते माणवको धर्ममिति वा। भोज्यते ...क्षणं ओदनम्, भोज्यते ब्राह्मणमोदन इति वा। शिष्यो वेदमध्याप्यते, ...य वेदोऽध्याप्यत इति वा।—

७। ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक, तथा शब्दकर्मक धातुओंमें ऊपर दिये ...ए दोनों प्रकारके प्रयोग होते हैं।

उपवसति—अनुवसति—अधिवसति—आवसति वा वैकुण्ठं हरि ...११९ वें पृष्ठमें टिप्पणी देखो)।

अन्तरा त्वां मां च कमण्डलुः। अन्तरेण हरिं न सुखम् (१५५ वें पृष्ठ-...शब्दसंग्रह देखो)।

अधिशेते—अधितिष्ठति—अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः (१२९ वें पृष्ठमें ...टिप्पणी देखो)।

हा कृष्णाभक्तम्। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् (हा तथा प्रति के ...योगमें द्वितीया होती है)।

धिग् जाल्मान्। धिक् कृष्णाभक्तम् (१९वें पृष्ठमें शब्दसंग्रह ...देखो)।

धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः। धिगियं दरिद्रता। धिङ् मूर्ख। (इस प्रकार ...धिक् के योगमें द्वितीया, प्रथमा, तथा सम्बोधन होता है।)

मासमधीते—क्रोशं कुटिला (अत्यन्तसंयोगवाचक)—

८। काल वा स्थलकी व्यापकताके अर्थमें द्वितीया होती है।

यह अत्यन्तसंयोग कहाता है । इसका अर्थ क्रियाका काल वा स्थानके साथ घना सम्बन्ध है ।

तृतीया—यह कर्ता वा करण अर्थमें होती है ।

प्रकृत्या चारु , प्रायेण याज्ञिक , गोत्रेण गार्ग्य , समेनैति (समेन मार्गेणैतीत्यर्थ), विषमेणैति ।

अक्ष्णा काण । कर्णेन बधिर । पादेन खञ्ज । पुत्रेण सह सार्धं साकं वा गत पिता ।—

१। ऐसे उदाहरणोंमें तृतीया होती है ।

पुण्येन दृष्टो हरि । अध्ययनेन वसति ।—

२। यह तृतीया हेतुके अर्थमें है ।

अलं महीपाल तव श्रमेण (श्रमेण न किमपि साध्यमित्यर्थ)। अलमतिविस्तरेण । कृतं प्रयत्नेन ।

३। 'पर्याप्त' इस अर्थके अलम् तथा कृतम् के योगमें तृतीया होती है । यहां साधन क्रिया गम्यमान अर्थात् अध्याहृत है और श्रम उसका करण है ।

जटाभिस्तापस , स्रतिच्छत्रेण राजानमपश्यत् , कमण्डलुना छात्र —

४। यह लक्षणतृतीया कहाती है , क्योंकि यह मनुष्यके लक्षणको बताती है ।

चतुर्थी—यह सम्प्रदान वा तादर्थ्यके अर्थमें होती है (तस्मै इदं तदर्थम् तदर्थस्य भावस्तादर्थ्यम्)। जिसको कोई वस्तु दी जाय या जिसके सम्बन्धमें कोई क्रिया की जाय वह सम्प्रदान है । जैसे—विप्राय गां ददाति , युद्धाय सन्नह्यते (युद्धके लिये तैयार होता है), राज्ञे करमर्पयति , शिष्याय शास्त्रमुपदिशति गुरु , अतिथये पाद्यमुपनयति ।

हरये रोचते भक्ति । यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूप (अपूप = मालपूआ)—यहां प्रसन्न होनेवाला (प्रीयमाण) सम्प्रदान है ।

हरये क्रुध्यति—कुप्यति—द्रुह्यति—ईर्ष्यति असूयति वा, परन्तु क्रूरमभिक्रुध्यति अभिद्रुह्यति वा—क्रोध, द्रोह (ड़ाह), ईर्ष्या, तथा असूयार्थक धातुओंके योगमें जिसके ऊपर क्रोध इत्यादि हो उससे चतुर्थी होती है, परन्तु उपसर्गपूर्वक क्रुध् तथा द्रुह् के योगमें द्वितीया होती है।

भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते जायते वा (६८ वें पृष्ठमें शब्दसग्रह देखो)।

देवदत्ताय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा (प्रतिज्ञा करता है)।

फलेभ्यो याति (फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः)।

यागाय याति (यष्टुं यातीत्यर्थः)।

नमो भगवते वासुदेवाय। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। दैत्येभ्यो हरिरलम् (समर्थः प्रभुर्वा)। वषट् (यह एक शब्द है जो देवताके उद्देशसे होम करनेमें प्रयोग किया जाता है) इन्द्राय।

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति—गमनार्थक धातुओंके योगमें द्वितीया वा चतुर्थी होती है, पर पन्थानं गच्छति—जहां जाना हो वह यदि मार्ग हो तो केवल द्वि० होती है, मनसा हरिं व्रजति—यदि वास्तविक गमन वा चलना अर्थ न हो तो केवल द्वि० होती है।

उपपदविभक्ति—नमः इत्यादि अव्ययोंके योगमें होनेवाली विभक्ति उपपदविभक्ति कहाती है और इससे इतर विभक्ति कारकविभक्ति कहाती है। वाक्यमें क्रियापद प्रधान रहता है, इतर पद उपपद वा गौण पद होते हैं। उपपदविभक्तिसे कारकविभक्ति प्रबल होती है (उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)। जैसे नृसिंहं नमस्करोमि (यहां नमः के योगमें चतुर्थी होनी चाहिये और करोति के योगमें द्वितीया, चतुर्थी उपपदविभक्ति है, और द्वितीया कारकविभक्ति, इसलिये द्वितीया हुई)।

नृसिंहाय नमस्करोमि इत्यादि प्रयोगोंका समाधान, 'फलेभ्यो याति' के समान 'नृसिंहमनुकूलं कर्तुं नमस्करोति' ऐसा अर्थ करनेसे होता है।

भक्ताय धारयते मोक्ष हरि (हरि अधमर्ण वा ऋण लेनेवाला है और भक्त उत्तमर्ण अथवा ऋण देनेवाला)।

पुष्पेभ्य स्पृहयति, परन्तु यदि इच्छा अत्यन्त प्रबल हो, तो पुष्पाणि स्पृहयति।

न त्वा तृणाय मन्ये—मैं तुम्हे तिनका भी नही समझता।

पञ्चमी—यह अपादान तथा हेतुके अर्थमें होती है। अपादान वह है जिससे कोई वस्तु अलग होती हो।

चौराद्द बिभेति। चौरात् त्रायते। अध्ययनात् पराजयते (ग्लानो भवति, ऊबता है)। यवेभ्यो गा वारयति। मातुर्निलीयते कृष्ण। कृष्ण उपाध्यायादधीते। ब्रह्मण प्रजा प्रजायन्त। हिमवतो गङ्गा प्रभवति। तिलेभ्य प्रतियच्छति माषान्।

पृथग् रामेण रामाद्राम वा। विना रामेण रामाद्राम वा।

प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादमारुह्य प्रेक्षते), आसनात् प्रेक्षते (आसने उपविश्य प्रेक्षते), माथुरा पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतरा।

अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्।

आ मुक्ते ससार (आ=तक—मर्यादा)। आ मूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (आ=से—अभिविधि वा आरम्भ)।

भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरि।

ऋते कृष्णात्, ऋते के योगमें कभी२ द्वितीया भी होती है ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे। ऋते वातादात वा हस पतति। रामादृते धनुर्धरो न।

षष्ठी—यह सम्बन्धका बोध कराती है।

कि निमित्त वसति। केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, इत्यादि। निमित्त शब्द तथा इस अर्थके और शब्दोंके योगमें सब विभक्तियां होती है।

तृणा तृणु वा द्विज श्रेष्ठ —निर्धारणषष्ठी वा निर्धारणसप्तमी (२२० तथा २२१ वा पृष्ठ देखो)।

रुदति (पुत्रादिके) रुदतो (पुत्रादिकस्य) वा प्राव्रजत्—यद्यपि पुत्र इत्यादि रो रहे थे, तो भी वह सन्यासी हुआ। यह अनादरषष्ठी वा अनादरसप्तमी है। इसका अर्थ है— रुदन्त पुत्रादिकमनादृत्य।

मातु स्मरति बाल । मातर स्मरति वा। (स्मृ के योगमें षष्ठी वा द्वितीया होती है।)

राज्ञा मतो बुद्ध पूजितो वा। (यहापर षष्ठी तृतीयाके अर्थमें तथा भूतकृदन्त वर्तमान कृदन्तके अर्थमें है।) "अहमेव मतो महीपतेरिति सर्व प्रकृतिष्वचिन्तयत्"—रघुवश—८—८।

तुल्य सदृश समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा।

दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते, दक्षिणेन ग्राम ग्रामस्य वा, उत्तरेण ग्राम ग्रामस्य वा—दक्षिणेन तथा उत्तरेण एन—प्रत्ययान्त अव्यय है और इनके योगमें द्वितीया वा षष्ठी होती है।

सप्तमी—यह आधार वा अधिकरणका बोध कराती है।

गोषु दुह्यमानासु गत —सतिसप्तमी।

प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा।

अयि वत्स ! कृत कृतमविनयेन। अनेकाकारसपरिस्वय परिष्वजस्व माम्।

कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्म वस्तुत परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्या सावधानेन परिपाठितौ। तमनन्तर च गर्भैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ।

हा देव ! एष मया विनाहमप्येतेन विनेति स्वप्नेऽपि मोन समाश्वित

मासीत्। तन्मुहूर्त्तकमपि जन्मान्तरत इव लब्धदर्शनं वाष्पसलिलान्तरे मित्रं तावद्दरस्थलमार्य्यपुत्रम्।

अनया कालकलया सुदूरमपक्रान्तः स पापकृदिति मनसिकृत्य तरु-मूलान्निष्क्रम्य सलिलसमीपं गन्तुं प्रयत्नमकरवम्।

सा तु प्रक्षाल्य लोचने वल्कलोपान्तेन वदनमपमृज्य दीर्घमुष्णं च नि श्वस्य मन्दं प्रत्यवदत्—राजपुत्र! किमनेनातिनिर्घृणहृदयाया मम मन्द-भागिन्या पापाया जन्मन प्रभृति वैराग्यवृत्तान्तेनाऽश्रवणीयेन श्रुतेन। तथापि यदि महत् कुतूहलं तत् कथयामि। श्रूयताम्।

अतिकष्टास्ववस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां वृत्तयः। नास्ति जीविताद्न्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। एवमुप-रतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रिया पुनरेव प्राणिमि। धिङ् मामकरुणामतिनिष्ठुरामकृतज्ञाम्। उपकृतमपि नापेक्षते खलं हि खलु हृदयम्।

> प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
> प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
> पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्य्यासितरसं
> रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते॥
>
> चिरं जीव चिरं नन्द चिरं पालय मेदिनीम्।
> चिरमाश्रितलोकानां पूरय त्वं मनोरथान्॥
>
> कमलभूतनया मुखपङ्कजे
> वसतु ते कमला करपल्लवे।
> वपुषि ते रमता कमलाङ्गजः
> प्रतिदिनं हृदये कमलापतिः॥

—

मूर्खको उपदेश उसकी मूर्खता बढानेके लिये होता है (क्लृप्)।

वह उसको बुद्धिमान् नही बनाता।

हाय! बडी बुरी बात हुई! शकुन्तलाने किसी पूज्य ऋषिका अपराध किया।

अग्निके सिवा और कौन आदमीको जला सकता है?

गोबरसे बिच्छू उत्पन्न होता है।

मै नही जानता कि अबतक वह राजपुत्र कितना चतुर हुआ है।

नीच आदमी दूसरेके उपकारकी तरफ ध्यान नही देता।

सज्जनोंका चरित्र सर्वोत्तम है, जो सर्वदा सच बोलते है, और कभी नीचोंके मार्गसे नही चलते।

रामने लङ्का जानेके लिये नलसे समुद्रपर पुल बनवाया (कर्तरि तथा कर्मणि प्रयोग करो)।

कृपाकर उसे बीचमें न छेड़िये। मैं आरम्भसे वह किस्सा सुननेके लिये बडा उत्सुक हू।

शब्दार्थ।

अवस्था (स्त्री)—स्थिति

उपकृत (उपकृतम्) न उप+कृ+त)—उपकार।

कमलभू (पु)—ब्रह्मा (विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न)

कमला (स्त्री)—लक्ष्मी

कमलाङ्गज (अङ्गज पु पुत्र) पु—लक्ष्मीका पुत्र, प्रद्युम्न

करपल्लव (कर पु +पल्लव पु, न) पु, न—पल्लवके समान कोमल हाथ

कल्प (पु)—विधि

काष्ठा (स्त्री)—कालका सूक्ष्म अंश

चूडा (स्त्री)—केशान्तसंस्कार

जीवित (जीवितम्) न (जीव्+त)—जीवन

धात्री (स्त्री)—धाई

परिचय (परिचय) पु —पहिचान
बाष्प (बाष्प-ष्पम्) पु, न —आंसू
रस (रस) पु —अनुराग, प्रेम
रहस्य (रहस्यम्) न —गूढ बात
वल्कलोपान्त (वल्कल पु, न —छाल + उपान्त पु किनारा)—
छालसे बने हुए वस्त्रका किनारा
वृत्ति (स्त्री)—मानस व्यापार
वैराग्य (वैराग्यम्) न —सांसारिक सुखोंसे घृणा

विशेषण।

अकृतज्ञ—जो किये हुए उपकारको नहीं मानता, कृतघ्न
अतिकष्ट—बहुत दुःख देनेवाला
अतिनिष्ठुर—कठोरहृदय, अतिक्रूर
अध्यापित (अधि + इ—अ आ प्रे० + त)—पढ़ाया गया
अनवगीत (अन् + अव + गीत = गै—भ्वा पर + त)—अनिन्दित
अनुपधि—निष्कपट (उपधि-पु —कपट)
अविकल—अव्याकुल
अविपर्यासित (अ + वि + परि + अस्—दु पर प्रे० + त)—अपरिवर्तित
उपक्रान्त (उप + क्रम् भ्वा, दि पर + त)—गया हुआ
उपरत (उप + रम् भ्वा आ + त)—मृत
कल्याणिन्—दूसरोंका हितचिन्तक
क्षात्र—क्षत्रियसम्बन्धी
गर्भकाश्य—गर्भसे व्याकुल
निरपेक्ष—निःस्पृह, बेपर्वाह
परिपाठित (परि + पठ्—प्रे + त) पढ़ाया गया
पापकृत्—पापी
प्रियप्राय (स्त्री —प्रियप्राया) (बहु० प्रिय + प्राय—पु एक बड़ा हिस्सा)—प्राय प्रिय, बहुत कर प्रिय
मन्दभागिन्—अभागा
मसृण—कोमल, मधुर
सम्भावित (सम् + भू—प्रे + त)—विचारित, चिन्तित
सुगृहीतनामन् (बहु०)—शुभ नामध
विशुद्ध (वि + शुध्—दि पर + त)—अत्यन्त पवित्र

धातु ।

अप+मृज् (अपमार्ष्टि—अ पर)—पोंछना

उप+नी (उपनयति—ते—भ्वा उभ)—यज्ञोपवीत करना

प्र+सद् (प्रसीदति—भ्वा पर)—प्रसन्न होना

निर्+क्रम् (निष्क्रामति—म्यति—भ्वा, दि—पर)—निकलना

परि+स्वञ्ज् (परिष्वजते—भ्वा आ)—गले लगाना, आलिङ्गन करना

प्र+क्षल् (प्रक्षालयति—चु पर)—धोना

मनसि कृ (तना०)—सोचना

अव्यय ।

अपरिक्षयम्—शाफ

अनेकवारम्—कई बार

अभ्यम्—गरम

अलम्—बस

तद्—तो

तृतीयवर्जम् (तृयी स्त्री तीन वेद, तत्पु०, क्रियावि०)—तीन वेदको सिवा

दीर्घम्—लंबा

पश्चात्—पीछे

पुर—सामने

प्रभृति—आरम्भसे (तस प्रभृति—तबसे)

मुहु—बार २

वस्तुत—सचमुच

समनन्तरम्—बाद

सावधानेन (अव्य अवधानेन सहित यथा स्यात्तथा)—ध्यानपूर्वक

सुदूरम्—अतिदूर

पाठ ३५ ।

लुट्, लृट्, लृङ्।

भविष्यत् तथा क्रियातिपत्ति ।

न जाने प्रातःकाले किं भविष्यति—मैं नहीं जानता कि सवेरे क्या होगा।

शत्रून् विजेष्ये वा मरिष्यामि वा—मैं शत्रुओंको जीतूंगा वा मर जाऊंगा ।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यद् दुर्भिक्षं नैव समपत्स्यत—यदि अच्छी वृष्टि होती तो अकाल कभी न होता ।

अथ धर्मं व्याख्यास्यामः । कृत्स्नं धर्मं व्याख्यास्याम इति यावत्—हमलोग सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या करेंगे। अथ धर्मं व्याख्यास्यामः का अर्थ कृत्स्नं धर्मं व्याख्यास्यामः —अर्थात् हमलोग सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या करेंगे यावत् 'अर्थात्' के अर्थमें आता है ।

अथ भगवान् कुशली काश्यपः । अत्र प्रश्नार्थोऽथशब्दः । "मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ" इत्यमरात्—क्या भगवान् काश्यप सुखी हैं? यहां अथ का अर्थ प्रश्न है । क्योंकि अमरकोशके अनुसार अथो तथा अथ के अर्थ ये हैं —मङ्गल, अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न तथा पूर्णता ।

अह्ना[1] क्रोशेन वा ऽनुवाकोऽधीतो मया । तेन तु मासमधीतो नायात —

---

[1] अहन् के रूप इस प्रकार होते हैं —

प्र	अहः	अह्नी अहनी	अहानि
द्वि	,,	,,	,,
स	,,	,,	,,
तृ	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
स	अह्नि अहनि	अह्नोः	अहःसु अहस्सु

नियम —अहन् के प्र, द्वि तथा स के ए व, में अहः रूप होता है। तृतीया द्विवचनसे लेकर व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर अहन् के न् को विसर्ग होता है ।

मैंने एक दिन वा एक कोसमें अनुवाक पढ़ा, उसने तो एक महीना पढ़ा पर ग्रह न आया।

इस प्रयोगकी ओर ध्यान दो। जब क्रियाके फलकी प्राप्ति हो तो तृतीया, तथा जब वह न हो तो द्वितीया (मासम्) होती है।

इस पाठमें दोनों प्रकारके भविष्यत्, तथा क्रियातिपत्तिका वर्णन किया गया है।

अबतक वर्णन किये गये लकार सार्वधातुक लकार थे। क्योंकि इन लकारोंमें धातुको विकरण जोड़ा जाता था, अथवा विकरणके निमित्त होनेवाला परिवर्तन—जैसे द्वित्व इत्यादि—धातुमें होता था। अब जिन लकारोंका वर्णन इस पाठमें तथा अग्रिम पाठोंमें किया जायगा वे आर्धधातुक लकार कहाते हैं। इनके रूप बनानेमें धातुके विकरण जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

इसके सिवा आर्धधातुक व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर कुछ धातुओंको इ आगम होता है, कुछ धातुओंको नहीं होता, और कुछको विकल्पसे होता है। वे धातु जिनमें इ आगम होता है, सेट् (स+इ), जिनमें वह नहीं होता वे अनिट्[1] (अन्+इट्—इ के बिना),

---

१ अधोलिखित दो कारिकाओंमें अनिट् धातु गिनाये हुए हैं। पहिलीमें स्वरान्त, तथा दूसरीमें व्यञ्जनान्त धातु दिये हुए हैं।

(क) ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

अजन्त (अच्—स्वर) धातुओंमें ऊकारान्त, (ऊत्—ऊ), ऋकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शी, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डी (आत्म, ङ् आत्मनेपदका बोध कराता है), श्रि, वृ, (आत्म), वृ (उभ—ञ से उभयपदका बोध होता है), इन धातुओंके सिवा और सब एकाच् धातु निहत वा अनुदात्त हैं। वेदमें अनिट् धातुओंको अनुदात्त स्वर होता है। इस लिये अनुदात्त स्वर वा निहतशब्द अनिट् के बराबर है। इसप्रकार अजन्त धातुओंमें ऊकारान्त, ऋकारान्त, तथा यु इत्यादि कारिकामें गिनाये हुए धातु सेट हैं। और इतर

तथा जिनमें यह विकल्पसे होता है वेट्[1] (वा+इट्) कहलाते हैं।

प्रायः रूपोंसे ही मालूम पड़ता है कि धातु सेट्, अनिट् वा वेट् है। साहित्यमें सेट् धातुओंसे अनिट् धातुओंका प्रयोग अधिक मिलता है। ये धातु टिप्पणीमें दिये गये हैं। नये विद्यार्थियोंको इनको कण्ठाग्र करनेकी आवश्यकता नहीं है। तथापि वे लोग, जो चाहते हैं कि व्याकरणका ज्ञान अच्छीतरह हो, इन्हें कण्ठाग्र करें।

दो प्रकारके भविष्यत्काल हैं। एक अनद्यतन (आजका नहीं) अथवा श्वस्तन (कलका) भविष्यत्काल, क्योंकि यह आज होनेवाली

एकाच् धातु अनिट् हैं। ऐसे धातु जिसमें एकसे अधिक अच् या स्वर हों, सेट हैं। अत एव मूलज धातु—जैसे प्रेरणार्थक इत्यादि—सेट हैं।

(ब) शक्ल् पच् मुच् रिच् वच् विच् सिच् प्रच्छि त्यज् निजिर् भजः।
भञ्ज् भुज् भ्रस्ज् मस्जि यज् युज् रुज् रञ्ज् विजिर् स्वञ्जि सञ्ज् सृजः॥
अद् क्षुद् खिद् छिद् तुदि नुदः पद्य भिद् विद्यति विनद्।
शद् सदी स्विद्यति स्कन्दि हदी क्रुध् क्षुधि बुध्यति॥
बन्धिर् युधि रुधी राधि व्यध् शुधः साधि सिध्यती।
मन्य हन्न् आप् क्षिप् छुपि तप् तिपस् तृप्यति दृप्यती॥
लिप् लुप् वप् शप् स्वप् सृपि यभ रभ लभ गम् नम् यमो रमिः।
क्रुशिर् दंशि दिशी दृश् मृश् रिश् रुश् लिश् विश् स्पृश कृषिः॥
त्विष् तुष् द्विष् दुष् पुष्य पिष् विष् शिष् शुष् श्लिष्यतयो घसिः।
वसति र्दह दिहि दुहो नह् मिह् रुह् लिह् वहिस्तथा॥
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम्॥

हलन्त धातुओंमें (हल=व्यञ्जन) कारिकामें दिये हुए १०२ धातु अनिट हैं, औ[र] इतर सेट। कारिकामें दिये हुए धातुओंका क्रम अन्तिम वर्णके अनुसारसे है—अर्थात् पहि[ले] ककारान्त, फिर चकारान्त इत्यादि। यदि कई धातुओंका अन्तिम वर्ण एकही है तो वे वर्णा[नु]क्रमसे दिये हुए हैं। कुछ धातुओंमें इ, ति, तथा विकरण छन्दके अनुरोधसे लगाये गये हैं।

१। अञ्ज्, मृज्, गुह्, गाह्, सिध् (भ्वा पर क्रमसे रखना), क्लृप्, स्यन्द्, नश्, द[...] द्रुह्, मुह्, स्नुह्, स्निह्, तृप्, दृप्, इत्यादि वेट धातु हैं।

[स]मयका बोध नहीं कराता, और दूसरा सामान्यभविष्यत्काल [क]हाता है।

अनद्यतनभविष्यत् या लुट्।

	जि—पर।			कृ आत्म।		
[प्र] पु	जेता	जेतारौ	जेतार	कर्ता	कर्तारौ	कर्तार
[म] पु	जेतासि	जेतास्थ	जेतास्थ	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
[उ] पु	जेतास्मि	जेतास्व	जेतास्म	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे

सामान्यभविष्यत्।

	स्था-पर।			दा-आत्म।		
प्र पु	स्थास्यति	स्थास्यत	स्थास्यन्ति	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म पु	स्थास्यसि	स्थास्यथ	स्थास्यथ	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ पु	स्थास्यामि	स्थास्याव	स्थास्याम	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

	जि पर।			शी-आत्म।		
प्र पु	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते

क्रियातिपत्ति।

	स्था पर।			दा आत्म।		
प्र पु	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म पु	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ पु	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

नियम।—

१। प्रत्यय ये हैं —

लुट् या अनद्यतन भविष्यत्।

	पर।			आत्म।	
प्र पु	ता	तारौ	तार	ता	तारौ	तार

म. पु	तासि	तास्थ	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ. पु	तास्मि	तास्व	तास्म	ताहे	तास्वहे	तास्महे

लृट् वा सामान्यभविष्यत् ।

	पर ।			आ ।		
प्र पु	स्यति	स्यत	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म पु	स्यसि	स्यथ	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ पु.	स्यामि	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लृङ् वा क्रियातिपत्ति ।

	पर ।			आत्म. ।		
प्र पु	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म पु	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ पु.	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

२। जैता, जेष्यति—ये विकारक प्रत्यय हैं। इसलिये इनके आगे रहनेपर धातुओंके अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण आदेश होता है।

गम्—पर । सामान्य—भवि ।

प्र पु गमिष्यति गमिष्यत गमिष्यन्ति

सगम्—आत्म । सामान्य—भवि ।

संगंस्यते संगंस्येते संगंस्यन्ते

हन्—पर ।

प्र पु हनिष्यति—इत्यादि ।

कृ—पर ।

करिष्यति—इत्यादि ।

हृ—पर क्रियाति ।

प्र पु अहरिष्यत्—इत्यादि ।

भृ—आत्म क्रियाति ।

अभरिष्यत—इत्यादि ।

३। सामान्यभविष्यत्के प्रत्यय आगे रहनेपर गम् पर, हन्, तथा ऋकारान्त धातुओंको इ होता है।

४। जो नियम सामान्य भवि में लगते है वे ही क्रियातिपत्ति में लगते हैं।

वृत्—वर्तिष्यते—वर्त्स्यति, वृध—वर्धिष्यते—वर्त्स्यति, स्यन्द्—न्दिष्यते स्यन्त्स्यते—ति, क्लृप्—कल्पिताहे—कल्प्ताहे—कल्प्तास्मि, ल्पिष्यते—कल्प्स्यते—ति।

नियम —

५। वृत, वृध, स्यन्द्, तथा क्लृप धातु सामा भवि में विकल्पसे परस्मैपदी होते हैं और उनके पर रूपोंमें इ नहीं लगता, क्लृप् में ह्यस्तनभविष्यत्के समान भी कार्य होता है।

दृश्—द्रष्टा द्रष्टारौ द्रष्टार, द्रक्ष्यति—द्रक्ष्यत द्रक्ष्यन्ति, द्रष्टुम् (तुम्) द्रष्टृ (देखनेवाला), परन्तु दृष्ट, दृष्ट्वा, दृष्टि।

सृज्—स्रष्टा स्रष्टारौ स्रष्टार, स्रक्ष्यति स्रक्ष्यत स्रक्ष्यन्ति, स्रष्टुम्, स्रष्टृ, पर सृष्ट, सृष्ट्वा, सृष्टि।

तृप्—तर्पिता, तृप्ता, तर्प्ता, तर्पिष्यति, तृप्स्यति, तर्प्स्यति।

नियम —

(अ) अनुनासिक वा अन्त स्थके सिवा हलादि विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दृश् तथा सृज् के ऋ को नित्य र होता है, तथा इतर अनिट् धातुओंमें विकल्पसे होता है। जैसे—

दृश् + ता = द्रश् + ता = द्रष् + ता [२८ वा पाठ (अ)] = द्रष् + टा = द्रष्टा, दृश् + स्यति = द्रश् + स्यति = द्रष् + स्यति = द्रक् + स्यति [२८ वां पाठ र.] = द्रक् + ष्यति = द्रक्ष्यति, सृज् + तुम् = स्रज् + तुम् = स्रष् + तुम् = स्रष् + टुम् = स्रष्टुम्, यज्—यष्टा, यक्ष्यति, यष्टुम्, इष्ट, इष्ट्वा, मृज्—मार्जिता—मार्ष्टा; मार्जिष्यति—मार्क्ष्यति (पाठ २८ वा क)।

इन रूपोंमें ज् को ष् हुआ है (२८ वा पाठ अ)। तुम् विकारक

युद्धाय कृतनिश्चयोऽयं दृश्यते दुरात्मा । तद्यदि कदाचित् तीक्ष्ण शृङ्गाभ्यां स्वामिनं प्रहरिष्यति तन्महाननर्थः संपत्स्यते ।

न ज्ञायते किमद्य वनवासिना विहङ्गमानां संजयो भविष्यति ना वा

मया सह सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभवन् सुखेन कालं नेष्यति । न त्व कृते चिन्ता कार्या ।

ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा । यदहरेव वि रजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ।

विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः ।

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ।

आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।

मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक् ।
केका वाणी मयूरस्य समौ चन्द्रकमेचकौ ॥—इत्यमरः ।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

[1]त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु ।
इति सा रमतेवासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः ॥

ततो नु वराख्यमुदीरितं जगौ ।

१। "मैं वनोंमें तुम्हारे (राम) साथ सैर करूंगी"—इस विचारसे सीता होती थी, उसका (रामपर) प्रेम वैसा ही था।

(शृङ्गम्) न—सींग
(श्लोक) पु—अनुष्टुभ् छन्द
(सन्ताप) पु—नाश
(सन्देह) पु—संशय
(सुभाषितम्) न — मधुरवाणी

सुवृष्टि (स्त्री)—अच्छी वृष्टि
सेतु (पु)—पुल
सुताम्रपर्णी स्त्री (सु अव्यय अच्छी + ताम्रपर्णी स्त्री)— सुन्दर ताम्रपर्णी नदी

विशेषण ।

कारणद्वयपर (बहु०, न कारण यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अकारणम् (अव्य०स०) अकारण द्वेष अकारणद्वेष (कर्म०), अकारणद्वेष पर प्रधान वस्तु यस्य स)—विना किसी कारणके दूसरोंसे द्वेष करनेमें रता हुआ
...विध्य—अगाध्य
...गीरित (उद् + ईर् + त)— उक्त, कहा गया
...ग्र—सम्पूर्ण, सब
...नानुगतिक (बहु०, गत—गम् + त + अनुगति—स्त्री अनुगमन + क—इक प्रत्यय)—देखा देखी चलनेवाला
...क्ष्ण—तेज
...येय (ध्यै + य)—ध्यान करने योग्य

पारमार्थिक—यथार्थमार्गसे चलनेवाला
ब्रह्मनिष्ठ (बहु०, ब्रह्मन्—न पर-ब्रह्म + निष्ठा—स्त्री भक्ति)— ब्रह्ममें लीन
मद्याजिन् (तत्पु०, मद्-में + याजिन्) —हमको पूजनेवाला
मधुगन्धि—मद्यके समान गन्धसे युक्त, अथवा यह मधुगन्धिन् शब्द है—मधुन गन्ध मधुगन्ध, स एषामस्तीति मधुगन्धानि वनानि—मकरन्दकी सुगन्धसे सुगन्धित
रामेश्वराख्य (बहु०, रामेश्वर—पु + आख्या—स्त्री नाम)— रामेश्वरनामक
वटवासिन् (वट-पु वृटवृक्ष + वासिन्)—उटके वृक्षपर रहनेवाला

वध्य—मारने योग्य
श्रोत्रिय—वैदिक
समर्पित (सम् + ऋ—णि + त)—
—रखा हुआ
समित्पाणि (व्यधि० बहु०, समिध्
—स्त्री यज्ञकाष्ठ + पाणि—पु

हाथ)—हाथमें यज्ञकाष्ठ लिय
हुआ
सुनिष्पन्न (सु अव्य अच्छी तरह +
निष्पन्न—निस् + पद् + त)
अच्छी तरह भया हुआ

धातु।

अनु + भू (अनुभवति भ्वा पर)—
अनुभव करना, भोगना
परि + तुष् (परितुष्यति-दि पर)
प्रेम —प्रसन्न करना
प्र + कुप् (प्रकुप्यति दि पर)—
अ त कुपित होना
प्रति + ज्ञा [ज्ञा] (प्रतिजानाति-ते-
क्रया उभ)—प्रतिज्ञा करना
प्र + व्रज् (प्रव्रजति भ्वा पर)—

संसारका त्याग करना, संन्या
लेना
वि + आ + पद् (व्यापद्यते दि
आत्म) णि —मारना
वि + रञ्ज् (विरजति ते, विरज्यति
भ्वा उभ, दि उभ)—संसार
घृणा करना, वैराग्य करना
सम् + पद् (सम्पद्यते दि आ)
होना

अव्यय।

आलोड्य— आ + लुड्—भ्वा पर
णि ल्यप् भूत कृ)—मथकर,
खूब विचार कर
अन्यथा—अन्यथा
इति—इस प्रकार
उ... — उत् + लिख् अव्य भू कृ)
—...तारकर

निबध्य—(नि + बन्ध्—अव्य
कृ)—रचकर, बनाकर
नियतम्—अवश्य
नो—नहीं
विज्ञानार्थम् (चतु० तत्पु०, क्रियावि
विज्ञान न + अर्थ)—जानने लि
सत्यम्—सच
ह—निश्चय

पाठ ३६ ।

परोक्षभूत वा लिट्।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्—उस (रघु) ने यज्ञके लिये पृथ्वीको दुहा (प्रजाओंसे कर लिया), (और) इन्द्रने स्वर्गको दुहा (अन्नके लिये वृष्टि की)।

मघवन्—पु

	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
	मघवन्	मघवानौ	मघवानः

मघोन्—मघवन् का भ अङ्ग है।

शिवधनुर्भङ्क्त्वा रामः सीतां परिणिनाय—शिवके धनुको तोड़कर रामने सीताको विवाह किया।

स राजा मृगयां कर्तुं वनं जगाम—वह राजा शिकार करनेके लिये वनको गया।

सेनयोस्तुमुलं युद्धं बभूव—दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ।

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः—वहां ब्राह्मणके आश्रमके समीप उसने एक बनियेको देखा।

उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ—वैश्य और राजा जो बैठे थे, अनेक प्रकारकी बातें करने लगे।

बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्—मैंने उसके सामने बहुत बातें कीं, निश्चय मैं मस्त थी।

वनं न प्रविवेश.........बवाधे तस्मिन् वने गोप्तरि गाहमाने ... राजाने वनमें प्रवेश किया, प्राणियोंमें बली दुर्बलको नहीं सताता ...

इस पाठमें परोक्षभूतका वर्णन किया गया है। संस्कृतमें तीन भूतकालिक लकार हैं। पहिले उनके अर्थोंमें भेद था, पर उसके बादके साहित्यमें बिना भेदके उनका प्रयोग किया गया है।

पहिले परोक्षभूतसे दूरकी भूतकालिक क्रियाका बोध होता था। संस्कृत साहित्यमें इसका बहुत प्रयोग आता है। उत्तम पुरुषसे मालूम होता है कि वक्ता बेहोश था। जैसे—बहु जगाद पुरस्तात्तव मत्ता किलाहम्।

परोक्षभूत।

	गद्—पर			विश्—पर		
प्र पु	जगाद	जगदतुः	जगदुः	विवेश	विविशतुः	विविशुः
म पु	जगदिथ	जगदथुः	जगद	विवेशिथ	विविशथुः	विविश
उ पु	जगद जगाद	जगदिव	जगदिम	विवेश	विविशिव	विविशिम

	मुद्—आत्म।			वृध्—आत्म।		
प्र पु	मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
म पु	मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
उ पु	मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे

नु—पर।

प्र पु	नुनाव	नुनुवतुः	नुनुवुः
म पु	नुनविथ	नुनुवथुः	नुनुव
उ पु	नुनव—नाव	नुनुविव	नुनुविम

इन रूपोंसे यह मालूम पड़ेगा कि

१। परोक्षभूतमें धातुओंको द्वित्व होता है। द्वित्वके नियम ३० वें पाठमें दिये गये हैं।

२। परोक्षभूतके प्रत्यय ये हैं —

	पर।			आत्म।	
प्र पु अ	अतुस्	उस्	ए	आते	इरे
म पु थ	अथुस्	अ	से	आथे	ध्वे
उ पु अ	व	म	ए	वहे	महे

३। इन प्रत्ययोंमें व, म, थ, और वहे, महे, से, तथा ध्वे में इ आगम हो सकता है (३५ वां पाठ देखो)।

४। चिच्छेद, चिच्छिदिव, इत्यादि—परस्मैपदके एकवचन विकारक हैं, द्विवचन, बहुवचन तथा आत्मनेपदके सब प्रत्यय अविकारक हैं।

५। विवेश, जगद-जगाद, नुनव नुनाव—विकारक प्रत्यय आगे रहने-पर अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण आदेश होता है, प्र पु ए व में अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य अ को नित्य वृद्धि होती है, और उ पु ए व में विकल्पसे होती है।

६। शुश्रुविव इत्यादि—अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके अन्तिम उ को उव् होता है।

	कृ—उभ पर।			आत्म।	
प्र पु चकार	चक्रतु	चक्रु	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म पु चकर्थ	चक्रथु	चक्र	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ पु चकर कार	चकृव	चकृम	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

	श्रु—पर।			सृ—पर।	
प्र पु शुश्राव	शुश्रुवतु	शुश्रुवु	ससार	सस्रतु	सस्रु
म पु शुश्रोथ	शुश्रुवथु	शुश्रुव	ससर्थ	सस्रथु	सस्र
उ पु शुश्रव श्राव	शुश्रुव	शुश्रुम	ससर सार	ससृव	ससृम

इन रूपोंसे मालूम होगा कि इनमें इ आगम नहीं होता।

नियम —

७। कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, तथा श्रु धातुके परोक्षभूतमें इ आगम नहीं होता।

८। चकृढ्वे — अ वा आ के सिवा कोई मूलक स्वर पूर्व होनेपर ध्वे को नित्य ढ्वे होता है।

	क्री—पर.।			आत्म।		
प्र पु	चिक्राय	चिक्रियतु	चिक्रियु	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म पु	चिक्रेथ- चिक्रयिथ	चिक्रियथु	चिक्रिय	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
उ पु	चिक्रय-क्राय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

	प्रच्छ्—पर।			त्यज्—पर।		
प्र पु	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छु	तत्याज	तत्यजतु	तत्यजु
म पु	पप्रच्छिथ- पप्रष्ठ	पप्रच्छथु	पप्रच्छ	तत्यजिथ- तत्यक्थ	तत्यजथु	तत्यज
उ पु	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम	तत्यज त्याज	तत्यजिव	तत्यजिम

	मृ—आत्म।			हृ—पर।		
प्र पु	ममार	मम्रतु	मम्रु	जहार	जह्रतु	जह्रु
म पु	ममर्थ	मम्रथु	मम्र	जहर्थ	जह्रथु	जह्र
उ पु	ममर मार	मम्रिव	मम्रिम	जहर-हार	जह्रिव	जह्रिम

नियम —

९। तत्यजिव, मम्रिम, पप्रच्छिम, चिक्रियिषे, चकृव, सस्म, दुद्रुव इत्यादि—कृ, सृ, भृ, वृ स्तु, द्रु, स्रु, तथा श्रु को छोड़कर और सब धातुओं में थ के सिवा सब प्रत्ययोंसे पूर्व इ आगम होता है।

यही नियम अनिट् धातुओंके लिये भी है ।

१०। ममर्थ, जहर्थ—ऋकारान्त अनिट् धातुओंमें थ के पूर्व इ
ागम नहीं होता ।

११। तत्यजिथ—तत्यक्थ—पप्रच्छिथ—पप्रष्ठ, चिक्रयिथ—चिक्रेथ
अन्त वा अकारवान् अनिट् धातुओंमें थ के पूर्व विकल्पसे इ आगम
ता है ।

१२। चिक्रियतुः, निन्युः, इत्यादि—अजादि अविकार प्रत्यय आगे
नेपर धातुके अन्तिम इ वा ई को इय् होता है, यदि उसके पूर्व
ाक्षर हो। यदि उसके पूर्व संयुक्ताक्षर न हो, तो य् होता है ।

१३। ममार इत्यादि—मृ धातु परोक्षभूतमें परस्मैपदी है । यह
ी भविष्यत् लकारों तथा क्रियातिपत्ति में भी पर है (पाठ ३५,
यम ७ देखो)।

१४। विजिग्यिध्वे—ढ्वे—जब ध्वे को इ होता है और उस इ के
य्, र्, ल्, व्, या ह् होता है, तो उसको विकल्प से ढ्वे होता है ।

भू—पर ।   जि—पर ।

प्र	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
म	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	जिगयिथ-जेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उ	बभूव	बभूविव	बभूविम	जिगाय-गय	जिग्यिव	जिग्यिम

हि—पर ।   चि—उभ ।

प्र जिघाय—इत्यादि । चिचाय—काय इत्यादि । चिच्ये चिक्ये इत्यादि ।

१५। भू के रूप बभूव् प्रकृतिसे बनते हैं ।

१६। परोक्षभूतमें जि धातुके ज् को ग्, हि के ह् को घ्, तथा चि
के च् को विकल्पसे क् होता है ।

	पा—पर ।			स्ना—पर ।		
प्र पु	पपौ	पपतु	पपु	मम्लौ	मम्लतु	मम्लु
म पु	पपिथ-पपाथ	पपथु	पप	मम्लिथ-मम्लाथ	मम्लथु	मम्ल
उ पु	पपौ	पपिव	पपिम	मम्लौ	मम्लिव	मम्लिम

ज्ञा—जज्ञौ, ग्लै—जग्लौ ।

नियम —

१७। आकारान्त धातुओंमें प्र पु तथा उ पु मे ए व का प्र औ है। अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर, तथा इ आगम कर य आगे रहनेपर इस आ का लोप होता है।

१८। ग्लै—ग्लाता, ग्लास्यति, जग्लौ—ए, ऐ, ओ, तथा ओकार धातुओंको सब आर्धधातुक लकारोंमें आकारान्त समझना चाहिये।

	गम्—पर ।			हन्—पर ।		
प्र पु	जगाम	जग्मतु	जग्मु	जघान	जघ्नतु	जघ्नु
म पु	जगमिथ-जगन्थ	जग्मथु	जग्म	जघनिथ-जघन्थ	जघ्नथु	जघ्न
उ पु	जगम गाम	जग्मिव	जग्मिम	जघन-घान	जघ्निव	जघ्नि

घस्—जघास जक्षतु जक्षु, खन्—चखान चख्नतु चख्नु,

जन्—जज्ञे जज्ञाते जज्ञिरे, अद्—आद जघास, आदिथ—जघसि

नियम —

१९। आद—जघास—परोक्षभूतमें अद् को विकल्पसे घस् होता तथा प से पूर्व अद् तथा ऋ को नित्य इ होता है।

२०। जग्मतु, जघ्नतु—अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रह गम्, हन्, जन्, खन्, तथा घस् के उपान्त्य अ का लोप होता है, अ

य होने पर हन् के ह् को घ् होता है, और घस् को (घस्—क्षस्—
) घ्, तथा खन् को (खन्—ख्न्) ख्न् होता है।

२१। घस् धातु अद्‌का परोक्षभूतमें होनेवाला एक आदेश है। इस
ए इसके परोक्षभूतमें रूप नहीं होते।

पुरा किल समस्ते क्षितिमण्डले सुरथो नाम राजा बभूव। औरसान्
तुनिव प्रजाः सम्यक् पालयतस्तस्य केचिद् भूपा शत्रवो बभूवुः। तैः
ातिप्रबलस्य तस्य युद्धं बभूव। न्यूनैरपि तैर्युद्धे स जिग्ये। ततः स स्वपुर-
यातो निजदेशाधिपोऽभवत्। तत्रापि स प्रबलारिभिराक्रान्तः। दुर्बलस्य
स कोशो बलं च सर्वं स्वपुरेऽपि दुरात्मभिर्बलिभिररिभिरपहृतम्। ततो
तस्वाम्यः स भूपतिर्मृगयाव्याजेन हयमारुह्यैकाकी गहनं वनं जगाम।
ं च कस्यचिद् द्विजवर्यस्याश्रमपदं ददर्श। तेन मुनिना सत्कृतस्तस्मिन्ना-
मे च कञ्चित् कालं तस्थौ ममत्वाकृष्टचेतनः सन्नचिन्तयच्च। यत् पुरं
पूर्वैः पूर्वं पालितं तदधुना मया हीनम्। न जाने मद्भृत्यैरसद्वृत्तैर्धर्मतः
ाल्यते नो वा। धनभोजनैर्नित्यं प्रसादिता मदनुयायिनोऽद्यान्यमहीभृतां
वृत्तिं कुर्वन्ति। अपितु तैर्मम संचितः कोशोऽल्पेनापि कालेन क्षयं गमिष्यतीति।

ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।
रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥
न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं
न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः॥

एको हि दोषो गुण संनिपाते
　　निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे ।
नूनं न दृष्टं कविनापि तेन
　　दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
　　नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा —
　　न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार पिता अपने लडकोंका हितचिन्तन करता है उसी प्र
राजाको हृदयसे प्रजाका हितचिन्तन करना चाहिये ।

उस प्रचण्ड पवनने, जो कभी किसीने पहिले सुना नहीं था, बा
सब पेडोंको जडसे उखाड दिया ।

पाण्डव तथा कौरवोंमें अठारह दिन तक घोर युद्ध हुआ । अ
कौरव हारे ।

एक बार राजा दुष्यन्त शिकारके लिये वनमें गया । उसने कण्वमु
आश्रममें प्रवेश किया । उस आश्रमके एक बगीचेमें उसने दो सखिय
साथ पेड़ोंको सींचती हुई शकुन्तलाको देखा । उन दोनोंमें परस्पर
हुआ और उसने शकुन्तलासे गान्धर्व विवाह किया ।

सन्नाशब्द ।

अभ्याश (पु)—सामीप्य	क्षितिमण्डल न (क्षिति—स्त्री पृथ्वी)—भूमण्डल
असद्व्यय (असद्व्यय) (पु कर्म०, असत्—पगाड+व्यय—पु खर्च) —अयोग्य खर्च [२ कतो	गो (स्त्री)—पृथ्वी
	चेतन (चेतन) पु —मन
कोश (कोश) पु —१ खजाना ,	दारिद्र्यदोष (दारिद्र्यदोष) पु क

दारिद्र्य—न निर्धनता +
दोष पु)—निर्धनताका दोष
इन् (पु)—आत्मा
मु् (न)—धनु
नी (स्त्री) कमलकी लता
स्वत् (पु)—सूर्य
वत् (पु)—इन्द्र
त्व (ममत्वम) न —ममता
मत् (पु)—राजा
व्याज पु (मृगया—स्त्री +
व्याज—पु)—शिकारका बहाना

वसन्ततिलका-क (स्त्री , न)—एक छन्दका नाम
वासस् (न)—वस्त्र
विप्र (विप्र) पु —ब्राह्मण
वृत्ति (स्त्री)—जीविका
षट्पद (षट्पद) पु —भ्रमर
सन्निपात (सन्निपात) पु —समूह
सस्य (सस्यम्) न —अन्न
सुरथ(सुरथ) पु —एक राजाका नाम
स्वाम्य (स्वाम्यम्) न —मालकियत , प्रभुता

विशेषण।

बल—बहुत बली
यायिन्—अनुगामी
वृत्त (बहु०)—दुश्चरित्र
ष्ट (आ+कृष+त)—खींचा गया
न्त (आ+क्रम्+त)—आक्रमण किया गया
ष्ट (उप+विश्+त)—बैठा हुआ
—दुर्बल
(उरस —न से)—स्वय अपना

कल—अस्पष्ट मधुर
गहन—घना
गुणराशिनाशिन्—गुणोंके समुदाय को नष्ट करनेवाला
गोप्तृ—रक्षक
जीर्ण (जृ—शि पर —जीर्यति—का भू कृ)—गला हुआ
तुमुल—घोर
द्विजवर्य—द्विजोंमें श्रेष्ठ
निज—अपना
न्यून—दुर्बल

प्रसादित (प्र+सद्—णि+त) —प्रसन्न किया गया

सञ्चित—(सम्+चि+त) एकट्ठा किया गया

सत्कृत—जिसका सत्कार किया गया

समस्त—सब

सुचारु (प्रादिस०, सुष्ठु चारु) अतिसुन्दर

हीन (हा—छोड़ना, +त)—शून्य

धातु।

अप+हृ (अपहरति—भ्वा पर)—हरना, ले जाना

उद्+मूल् (उन्मूलति-भ्वा पर)—उखाड़ना

गद् (गदति भ्वा पर)—बोलना

गाह् (गाहते—भ्वा आ)—प्रवेश करना

गुञ्ज् (गुञ्जति भ्वा पर)—गूंजना

नि+मस्ज् [मज्ज्] (निमज्जति—तु पर)—डूबना

परि+नी [णी] (परिणयति भ्वा पर)—विवाह करना

पालय (पा-अ पर णि)—रक्षण करना

बाध् (बाधते—भ्वा पर)—दु ख देना, सताना

सम्+या (सयाति—अ पर)—प्रवेश करना

हस् (हसति—भ्वा पर)—हसना

अव्यय।

किल—निश्चयसे, लोग ऐसा कहते हैं

नामयित्वा (नम्-णि अव्य भू कृ) झुकाकर

नूनम्—निश्चयसे

पुरा—पूर्वकालमें

पूर्वम्—पहिले

पाठ २७ ।

परोक्षभूत ।

जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेन ईजे (यज्+लिट्)—मिथिलाके विदेहके राजा जनकने यज्ञ किया, जिसमें बहुत दक्षिणा दी गयी थी ।

ते कपीन्द्रा मन्युं रोद्धुं न शेकुः—वे उत्तम कपि क्रोधको न रोक सके ।

तयोस्तुमुलं युद्धं समापेदे—उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ ।

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच—देव (शिव) के सेवककी बात सुनकर मनुष्योंके स्वामी (राजा) ने फिर कहा ।

विश्वामित्रमागतं प्रेक्ष्य वसिष्ठः स्वागतं व्याजहार—विश्वामित्रको आये हुए देख वसिष्ठने स्वागत वचन कहा ।

परोक्षभूत ।

पच्—पर ।

प्र पु	पपाच	पेचतु	पेचु
म पु	पेचिथ पपक्थ	पेचथु	पेच
उ पु	पपच पपाच	पेचिव	पेचिम

शक्—पर ।

प्र पु	शशाक	शेकतु	शेकु
म पु	शेकिथ शशक्थ	शेकथु	शेक
उ पु	शशक-शशाक	शेकिव	शेकिम

तॄ—पर । भ्रम्—पर ।

प्र पु ततार तेरतु तेरु बभ्राम बभ्रमतु-भ्रेमतु बभ्रमु भ्रेमु

भज्—पर । राज्—पर ।

प्र पु बभाज भेजतु भेजु रराज रराजतु-रेजतु रराजु-रेजु

तृप्—आत्म। वस्—पर।

म पु त्रेपिषे-त्रेप्से त्रेपाथे त्रेपिध्वे-त्रेब्ध्वे उ पु ववास ववसहु वः

भञ्ज्—पर।

प्र पु बभञ्ज बभञ्जतु बभञ्जु

नियम —

१। पेचतु, बभञ्जतु, चस्कन्दतु, पेचिथ—यदि किसी धातुमें दो असंयुक्त व्यंजनके बीच अ हो और उसके प्रथम व्यञ्जनमें द्वित्व होनेपर कोई परिवर्तन न करना हो, तो अभ्यासका लोप होता है और अविकारक प्रत्यय तथा इट सहित थ आगे रहने पर अ को ए होता है।

२। तेरतु, भेजथु, फेलिथ, त्रेपे, शश्रमिव श्रेमिव—तॄ, फल्, भज्, त्रप् इनमें यह एत्व तथा अभ्यासलोप नित्य, तथा श्रम्, त्रस्, राज्, भ्राज् इत्यादिमें विकल्पसे होता है।

३। ववसतु —वकारादि धातुओंमें यह परिवर्तन नहीं होता।

स्मृ—पर। ऋ—पर।

प्र पु सस्मार सस्मरतु सस्मरु म पु आरिथ आरथु आर

कृ—पर।

प्र पु चकार चकरतु चकरु

४। सस्मरतु, चकरतु, आरतु, जजागरतु —ऋकारान्त धातु, जिनके पूर्व संयुक्ताक्षर हो, ॠकारान्त धातु, ऋ, तथा जागृ धातुके परोक्षभूतमें अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर भी गुण आदेश होता है।

यज्—पर। वह्—पर।

प्र पु इयाज ईजतु ईजु उवाह ऊहतु ऊहु
म पु इयजिथ-इयष्ठ ईजथु ईज उवहिथ उवोढ ऊहथु ऊह
उ पु इयाज ईजिव ईजिम उवह-वाह ऊहिव ऊहिम

यज् + थ = इ अयज् + थ = इयज् + थ = इयष् + थ (२८ वां पाठ,) = इयष् + ठ = इयष्ठ ।

यज् + अथु = इज् + अथु = इइज् + अथु = ईजथु ।

ग्रह्—पर ।			वस्—पर ।		
प्र पु जग्राह	जगृहतु	जगृहु	उवास	ऊषतु	ऊषु

वद्—पर ।			वच्—कर्मणि ।		
प्र पु उवाच	ऊचतु	ऊचु	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे

५। यज्, वद्, वप्, वह्, व्यध, वच, वस् (रहना), स्वप्, तथा और कुछ धातुओंके परोक्षभूतमें अभ्यासको सम्प्रसारण होता है। अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होनेसे पूर्व सम्प्रसारण होता है।

इष्—पर ।			इ—पर ।		
प्र पु इयेष	ईषतु	ईषु	इयाय	ईयतु	ईयु
म पु इयेषिथ	ईषथु	ईष	इययिथ-इयेथ	ईयथु	ईय

स्वप्—पर ।			स्मि—आत्म ।		
प्र पु सुष्वाप	सुषुपतु	सुषुपु	सिष्मिये	सिष्मियाते	सिष्मियिरे

(अ) इष् + इथ = इइष् + इथ = इ एष् + इथ = इय् + एष् + इथ = इयेषिथ ।

इइ + अ = इ ऐ + अ = इ आय् + अ = इय् + आय् + अ = इयाय ।

(ब) इइ + अतु = इय् + अतु = ईय् + अतु = ईयतु ।

(क) स्वप् + अ = सु अ स्वाप् + अ = सु स्वाप् + अ = सुष्वाप् + अ = सुष्वाप ।

स्मि + ए = सिस्मि ए = सिष्मि + ए = सिष्मिय् + ए = सिष्मिये ।

६। (अ) इयेष, उवोख, इयाय—असवर्ण अच् आगे ॥ अभ्यासके इ वा उ को इय् वा उव् होता है।

(ब) ईयतु—अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके इ को य अभ्यासके इ को दीर्घ होता है।

(क) सुष्वाप, सिष्मिये—स्वप् तथा स्मि के स् को ष् होता है
श्वि—भ्वा पर का शिश्वय-श्वाय, शुशुव—शाव, शिश्वयिथ—शु (क्योंकि यह धातु सेट् है), ह्वे—हु—जुहु—जुहव—हाव—

७। श्वि के परोक्षभूतके रूप विकल्पसे शु से बनते हैं, औ नित्य हु से बनते हैं।

अर्ह्—पर। अर्च्—पर।

म पु आनर्ह आनर्हतु आनर्हु आनर्च आनर्चतु

अश्—स्वा आत्म म पु—आनशिषे-आनक्षे आनशाथे अ आनड्ढ्वे।

नियम—

८। अकारादि धातुओंमें, जिनमें संयुक्ताक्षर हो, अभ्यासके आ होता और उसके बाद न् आगम होता है। अश्—स्वा में वेट् है, यह नियम लगता है।

(अ) ईश्—म पु ए व—ईशाचके ईशाम्बभूव—ईश उन्द्—उन्दाचकार—बभूव—आस।

(ब) दय्—दयाचक्रे—बभूव—आस, अय्—अयाचक्रे—आस, आस्—आसाचक्रे, विद्—विवेद,—विदाचकार, जागृ—जागराचकार, भी—बिभाय—बिभयाचकार, भृ—बभार—भराचकार, ह्री—जिह्राय—जिह्रयाचकार, हु—जुहाव—जुहवाचकार

(क) चुर्—चोरयाचकार—बभूव—आस, कृ—णि—कारयाचकार—बभूव—आस।

नियम —

६। (अ)—अ वा आ को छोड़कर अजादि धातुओंमें, जिनका
अच् दीर्घ हो वा ह्रस्व होकर उसके पूर्व कोई संयुक्ताक्षर हो,
बाद आम् लगाकर कृ, भू, वा अस्, धातुके परोक्षभूतका रूप जोड़के
रोक्षभूतके रूप बनते हैं।
(आ) दय्, अय्, तथा आस् के परोक्षभूतके रूप भी इसी प्रकार
हैं, विद्—अ पर, जागृ, भी, ह्री, भृ, तथा हु में आम् इत्यादि
रूपसे होते हैं। जब ये होते हैं तब सार्वधातुक लकारोंकी तरह
गे द्वित्व होता है। आम् विकारक प्रत्यय है, वह आगे रहनेपर
अ पर के इ को गुण नहीं होता।
(इ) चुरादिगणके धातु, प्रेरणार्थक तथा इतर मूलज धातुओंके
भूतमें इसी प्रकार रूप बनते हैं।
(ई) यदि धातु आत्मने हो तो कृ के भी आत्मनेपदके रूप इसको
है, पर भू तथा अस् के पर के रूप लगते हैं।
७। कर्मणि वा भावे—तत्यजे, बभूवे—कर्मणि वा भावे प्रयोगके रूप
केवल प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं।

मीहमानाना चाधीयानानां च केचिदर्थं बुध्यन्तेऽपरे न। तत्र किमस्माभि
र्तुं शक्यं स्वाभाविकमेतत्।
ब्राह्मणानामनूचानतम स एषा धौर्यवत्तम।
ल नहु विकल्पः। शीघ्र समक्षमेवावयोरधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति।
कदा पुत्रेषु फलाहारार्थं वनं गतेषु नियतव्रता जमदग्नेः स्त्री रेणुका
ग्राम। आगच्छन्ती यदृच्छया चित्ररथं नाम नृपमृद्धिमन्तं सभार्य
। दृष्ट्वा च तत्सुखमधिगन्तुमियेष। एतस्माद् दुष्टविचारात् सा
रिच्युता। आश्रमं च तूष्णीं प्रविवेश। जमदग्निस्तां ब्राह्म्या लक्ष्म्या

विवर्जितां धैर्यच्युतां दृष्टवान्। धिक्शब्देन च तां जगर्हे। आनुपूर्व्याच्चतुरः पुत्रान् मातरं हन्तुमादिदेश। ते तु मातृस्नेहाद्विवशा न किञ्चिद् बभाषिरे। तस्मात् क्रोधान्मुनिस्तान् शशाप, पञ्चमं परशुरामं च मातृवधं कर्तुं शशास। मातर्यतीव स्निग्धोऽपि परशुः पितुराज्ञां शिरसि कृत्वाऽस्याः शिरः परशुना चिच्छेद। ततो जमदग्निः प्रसन्नोऽस्मीत्यप्युवाच च।

ममेदं वचनात्तात कृतं ते कर्म दुष्करम्।
वृणीष्व कामान् धर्मज्ञ यावतो [1]वाञ्छसे हृदा॥
स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै।
पापेन तेन चास्पर्शं भ्रातॄणां प्रकृतिं तथा॥
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे दीर्घमायुश्च भारत।
ददौ च सर्वान् कामांस्तान् जमदग्निर्महातपाः॥

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विदेहतनया मुहुरालपन्ती—
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम॥

मातुलगृहादागतस्य भरतस्य कैकेय्याश्च संवादोऽयम्—
मातस्तात क्व यातः, सुरपतिभवनं, हा कुतः, पुत्रशोकात्,
कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां, त्वमवरजतया यस्य जातः, किमस्य।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं, किमिति, नृपगिरा, किं तथासौ बभाषे,
मद्वाग्बद्धः, फलं ते किमिह, तव धराधीशता, हा हतोऽस्मि।
यस्योदयेनेह जगत् प्रबुध्यते प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये।
ब्रह्मेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः॥

१। आत्मनेपदमार्षम्।

ार वेद, छ वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, पुराण, तथा धर्मशास्त्र ये चौदह
ों अध्याय है ।

ाह्मणका गर्भसे आठवें वर्ष, क्षत्रियका ग्यारहवें, तथा वैश्यका बारहवें
ानयन (यज्ञोपवीत) करना चाहिये ।

ुनने मध्यवसे पूछा कि वशिष्ठ और विश्वामित्रमें शत्रुता क्यों
हुई ।

शिकका पुत्र गाधि नामका एक बड़ा राजा था । उसका विश्वामित्र
अति प्रतापी पुत्र था । किसी समय विश्वामित्र मृगयार्थ वन
ीर तृषासे पीड़ित हो वशिष्ठके आश्रममें घुसा । वशिष्ठने उसका
किया । विश्वामित्रने वशिष्ठसे उसकी कामदुघा गौ देनेके लिये
की, पर वशिष्ठने उसे गौ न दी ।

ीटनेका काम नहीं है । आओ, हम लोग लड़े, जिससे लोग समझ
कि हम दोनोंमें अधिक बली कौन है ।

संज्ञाशब्द ।

तरव्यक्ति (स्त्री)—दोनोंमें दरा उत्कृष्ट वा निकृष्ट ामका स्पष्ट होना	अस्मृति (स्त्री)—भूलना
द्वन्द्विता—(स्त्री अ + प्रति-	आनुपूर्व्य (आनुपूर्व्यम्) न —क्रम, एकके बाद दूसरेका होना
्द्विद्व—पु शत्रु + ता)— र अवस्था जिसमें कोई शत्रु ही	उत्थान (उत्थानम्) न —उठना
	कानन (काननम्)—वन
	चित्ररथ (चित्ररथ) पु —एक राजाका नाम
ा (अवर सर्व० अवरजा, ाज पु छोटा भाई)—छोटा र्नेन	जमदग्नि (पु)—एक ऋषिका नाम
	तात (तात) पु —वत्स, लड़के, शिष्य इत्यादिके सम्बोधनमें प्रयोग किया जाता है
(पु)—भयका अभाव	

धराधीशता (स्त्री)—पृथ्वीका अधिपति होनेकी दशा
परशु (पु)—फरसा, कुठार
परशुराम (परशुराम) पु—जमदग्निका पुत्र जिसने पृथ्वीको २१ बार क्षत्रियशून्य कर दिया
भारत (भारत) पु—भारतवर्षीय, अर्जुन
मन्यु (पु) १, क्रोध, २, शोक
मातुल (मातुल) पु—मामा

मानस (मानसम्) (न)—मन
रेणुका (स्त्री)—जमदग्निकी
वैदेह (वैदेह) पु—विदेहका
जनक
सुरपति (पु)—देवोंका
इन्द्र
स्वागत (स्वागतम्) न (प्रादि
सुष्ठु आगतम्)—स्वागत
हृद् (न)—हृदय (इसके प्रथम
रूप नहीं होते।)

विशेषण।

अखिल—सब
अधीयान (अधि+इ—अ
आ का वर्त कृ)—पढ़ता हुआ
अनूचानतम—गुरुसे साङ्ग वेद पढ़नेवालोंमें उत्तम (अनु+वच्)
ईहमान (ईह्—भ्वा आ का वर्त
कृ)—चेष्टा करता हुआ
ऋद्धिमत्—समृद्ध
एक—अद्वितीय, अनुपम
एवंविध (बहु०, एवं विधा यस्य स एवंविध, एवम् + विधा—स्त्री प्रकार)—इस प्रकारका, ऐसा

च्युत (च्यु+त, स्त्री च्युता)
गिरा हुआ
तावत्—उतना
त्रस्त (त्रस्+त, स्त्री त्रस्ता)
डरा हुआ
धर्मज्ञ—धर्मको जाननेवाला
नियतव्रत (बहु०, नियत—नि
यम्+त, व्रत-न —स्त्री
—जो नियमसे व्रत करता
ब्राह्म (स्त्री ब्राह्मी)—पवित्र
ब्राह्मणसम्बन्धी
भविष्य—भविष्यत्
महातपस्—जिसका तप बड़ा
यावत्—जितना

...ा—विलाप करता हुआ, विलासले आनन्द देता हुआ
...तिम् (उहु०)—उदास

त्रिवर्जित (त्रि+वृज्—चु उभ, स्त्री—ता)—रहित

धातु ।

...+प्र+ईक्ष् (अभिप्रेक्षते—भ्वा आ)—देखना
...+दिश् (आदिशति—तु पर)—आज्ञा करना
...+ईक्ष् (उपेक्षते—भ्वा आ)—उपेक्षा करना
...+जन (उपजायते—दि आ)—उत्पन्न होना
...+आ+सद् (उपसर्पति—भ्वा पर)—पहुंचना, पास जाना
...(गर्हते—भ्वा आ)—निन्दा करना
...—(च्यवते—भ्वा आ)—गिरना

नि+शम् (निशाम्यति—दि पर)—सुनना
प्र+बुध् (प्रबोधति—भ्वा पर)—जागना
वाञ्छ् (वाञ्छति—भ्वा पर)——चाहना
वि+कत्थ् (विकत्थते—भ्वा आ)—सीटना, अपनी स्तुति करना
वि+आ+हृ (व्याहरति-भ्वा पर)—कहना
शप (शपति ते भ्वा उभ)—शाप देना (कसम खानेके अर्थमें चतुर्थी के साथ—शपे ते मनुजाधिप)

अव्यय ।

...त—आगे
...हारार्थम्—(चतु० तत्पु०, फल—न+आहार—पु) फल खानेके लिये
...म्—बहुत
...च्छया—(यदृच्छा—स्त्री के तृ का ए व)—अकस्मात्

वै—निश्चयसे, वाक्यालङ्कारमें प्रयोग किया जाता है।
समक्षम्—सामने, किसीकी उपस्थितिमें (अक्ष्णः समक्षम् योग्यम्—वा समीपम्)
सुखम्—सुखसे

पाठ ३८ ।

कुछ अनियत रूप ।

समारूढो मध्यमह्नः सविता—सूर्य दिनके मध्य पर चढ़ा है—यह मध्याह्नकाल है ।

न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायतां यान्ति—पशु भी उसके सहायक होते हैं जो न्यायमार्गसे चलता है ।

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्—वह लज्जावश उस युवाके विषयमें अपने प्रेमको न कह सकी ।

यस्यार्थाः स पुमान् लोके (पुमाल्लोके)—जिसके पास धन है वह जगत् में पुरुष (समझा जाता है)।

परितः सर्वतः (संसारं) त्यक्त्वा व्रजतीति परिव्राट्—वह जो संसारको परितः, चारों ओर से, अर्थात् सम्पूर्ण सबसे छोड़कर चला जाता है वह परिव्राट् अर्थात् संन्यासी है ।

आशिषः प्रतिगृह्यन्ताम्—आशीर्वाद लिये जाय ।

माला कारा पुष्पाणां स्रजो ग्रथ्नन्ति—माली लोग फूलोंकी मालायें गूंथते हैं ।

भेका वर्षासु भवन्तीति वर्षाभ्वः कथ्यन्ते—मेढ़क बरसातमें होते हैं इसलिये वर्षाभू (वर्षामें उत्पन्न होनेवाले) कहाते हैं ।

सा खलु स्वयम्भुवोऽद्वितीया सृष्टिः—वह स्त्री निश्चयसे ब्रह्माकी अपूर्व सृष्टि है ।

जरसा द्विगुणीभूतमस्य शरीरम्—इसका शरीर बुढ़ापेसे मानो दूना हो गया है ।

हे मघवन् अमुं तुरगं प्रतिमोक्तुमर्हसीति रघुस्तमवदत्—"हे इन्द्र इस अश्वको छोड़ना आपको उचित है" इस प्रकार रघुने उससे कहा ।

इस पाठमें अनियत रूप दिये गये है ।

जरा—स्त्री।

जरा	जरे-जरसौ	जरस-जरा
जराया—जरस	जरयो—जरसो	जराणाम्—जरसाम्

इसी प्रकार निर्जर शब्दके—निर्जरो निर्जरसौ, निर्जरस्य-निजरस, आदि।

१। अजादि विभक्ति आगे रहनेपर जरा और निर्जर को विकल्पसे जरस् तथा निजरस् आदेश होते है।

सेनानी—पु, स्त्री।

	सेनानी	सेनान्यौ	सेनान्य	प	सेनान्य	सेनान्यो	सेनानाम्
द्वि	सेनान्यम्	,,	,	स	सेनान्याम्	,,	सेनानीषु

सुधी—पु। स्वयम्भू—पु।

सुधी सुधियौ सुधिय स्वयम्भू स्वयम्भुवौ स्वयम्भुव

वर्षाभू—पु। पुनर्भू—स्त्री।

वर्षाभू वर्षाभ्वौ वर्षाभ्व पुनर्भू पुनर्भ्वौ पुनर्भ्व

२। अजादि प्रत्यय आगे रहनेपर धातुज शब्दोंके ई वा ऊ को य्, व्, वा इय् तथा उव् आदेश करनेके नियम कठिन है। अधोलिखित बाते ध्यानमें रखनी चाहिये —

(अ) निय, भुव, नियाम्, भुवि—यदि धातुज शब्दसे पूर्व कोई दूसरा शब्द न हो तो अन्तिम इ वा ऊ को इय् वा उव होता है।

(आ) प्रध, उन्नय (यहा उन्नी मे संयुक्ताक्षर है पर वह धातुका नही है, उद्+नी), यवक्रिय, दुर्ध्य (दुष्ट ध्यायतीति), दुर्धिय (दुष्ट धीर्यस्य ते)—यदि धातुसे अन्तिम ई वा ऊ के पूर्व धातुका संयुक्ताक्षर हो और यदि तत्पुरुष समास हो, तो अन्तिम इ वा ऊ को य् वा व होता है,

बाधक—(ई) भुव, सुधिय —भू तथा सुधीके अन्तिम ऊ तथा ई
क्रमसे उव् तथा इय् होता है।

¹प्रतिप्रसव—(उ) वर्षाभ्वौ, पुनर्भ्वौ— परन्तु वर्षाभू तथा पुनर्भू
अन्तिम ऊ को व् होता है।

(ऊ) नियाम्, सेनान्याम्, ग्रामण्याम्—नीशब्द, तथा सेनानी ग्रामणी इत्यादि नी में अन्त होनेवाले शब्दोंका सप्तमी ए व का रूप आम् लगानेसे बनता है।

(ए) प्रध्य स्त्रिया, सुधिय-या स्त्रिया —जब अन्तिम ई तथा ऊ को इय् तथा उव् होता है तो ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धी तथा भू के समान होते हैं, और जब अन्तिम ई तथा ऊको य् तथा व् होता है तो उनके रूप लक्ष्मी तथा वधूके समान होते हैं।

(ऐ) ग्रामण्या, सेनान्या (प, ष स व)—ग्रामणी, सेनानी इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप, जो आरम्भमें पुरुषके व्यापारका बोध कराते हैं, पुल्लिङ्गके रूपोंके समान होते हैं।

पुंस्—पु।

प्र	पुमान्	पुमांसौ	पुमांस	तृ	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभि
द्वि	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंस	स	पुमन्	पुमांसौ	पुमांस

३। सर्वनामस्थानके पूर्व पुंस् के रूपोंपर ध्यान दो। पद अन्त
पुंस् के स् का लोप होता है।

स्रज्—स्त्री।

प्र	स्रक्	स्रजौ	स्रजः
स	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु

अप्—स्त्री।
(यह केवल बहुवचनमें होता है)
आप—अप—अद्भि—
अद्भ्य—अद्भ्य, अपाम्-अप्सु

१। बाधकका बाधक।

४। हलादि विभक्ति आगे रहनेपर सूज् से ल को क् होता है।

५। अप्, प्राण, असु, सिकता, वर्षा, तथा समा—इन शब्दोंके रूप बहुवचनमें होते हैं। इनमें अन्तके तीन शब्दोंके रूप एकवचनमें भी २ प्रयोग किये जाते हैं।

आप सुमनसो वर्षा अप्सरा सिकता समा।
एते स्त्रियां (स्त्रीलिङ्गमें) बहुत्वे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरत्रयम्॥

उशनस्—पु।

उशना उशनसौ उशनसः स ए व उशन—उशन—उशनन्

६। इस शब्दके प्रथमा तथा सम्बोधनके ए व के रूपके तरफ न हो।

प्राच्—पु।			प्रत्यच्—पु।		
प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
प्राञ्चम्	,,	प्राचः	प्रत्यञ्चम्	,,	प्रतीचः
प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु

तिर्यच्—पु।			उदच्—न।		
तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः	उदक्	उदीची	उदञ्चि
तिर्यञ्चम्	,,	तिरश्चः	,,	,,	,,
तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः

७। प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अन्वच्, तिर्यच् इत्यादि 'अच्' धातु (जाना) बने हुए शब्दोंके सर्वनामस्थानमें अन्तिम वर्णके पूर्व न् लगता है। अङ्गमें अच् के अ का लोप तथा उसके पूर्व रहनेवाले स्वरको दीर्घ होता है, अर्थात् उनको प्रकृतियां प्राच्, प्रतीच्, अनूच् होती हैं।

	युवन्—पु।			श्वन्—पु.।		
प्र	युवा	युवानौ	युवानः	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वि	युवानम्	,,	यूनः	श्वानम्	,,	शुनः
स	यूनि	यूनोः	युवसु	शुनि	शुनोः	श्वसु

८ युवन् का भ अङ्ग यून् तथा श्वन् का शुन् है।

	परिव्राज्—पु।			सम्राज्—पु।		
प्र	परिव्राट्-ड्	परिव्राजौ	परिव्राजः	सम्राट्-ड्	सम्राजौ	सम्राजः
तृ	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
स	परिव्राजि	परिव्राजोः	परिव्राट्सु-ट्त्सु	सम्राजि	सम्राजोः	सम्राट्सु ट्त्सु

९। हलादि विभक्ति आगे रहने पर परिव्राज्के ज् को ट् वा ड् होता है। (२८ वां पाठ, (अ)।)

तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते।
दुर्धियो वृश्चिका इव एते।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वा महाकाव्यस्य मुखम्।
भो भो राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।
भोः! प्रत्यासन्नेन चन्द्रोदयेन भवितव्यं यतस्तिमिररिच्यमाना प्राचीमुखमालोकसुभगा दृश्यते।
सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् सखे विस्मृतं खल्वेतत्।
चित्रं चित्रमिदम्! कथमेतद् विस्मृतोऽसि।
वासन्ती—देव! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।
रामः—सखि, किमुच्यते धैर्यमिति?

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति॥

स्त्री)—दृष्ट बुद्धि
नैच्यम्) न —नीचता, हीनता
य (धनञ्जय) पु —अर्जुन
या (स्त्री)—नमस्कार,
णाम
ती (स्त्री)—नासिका के पास
उकारयुक्त एक भाग
र (परिवत्सर) पु —वर्ष
(पु)—सन्यासी
पुत्री—स्त्री (पर्वतराज-पु,
मालय)—हिमालयकी
की, पार्वती
पापकम्) न —पाप
स्त्री)—विवाहित विधवा
(पु)—पुरुष
(पु)—पुरोहित
(पु) पु १ आत्मा,
ात्मा, २ मनुष्य
प्रपच् का स्त्री)—
म दिशा
प्राच् का स्त्री)—पूर्वदिशा

बालप्रियत्व (न)—(बालप्रिय, बहुव्री०, + त्व)—केशोंका प्रिय होना
१बृहस्पति (पु तत्पु० बृहत्—स्त्री वाणी + पति)—बृहस्पति
भी (स्त्री)—भय, डर
भेक (भेक) पु —मेढक
मघवत् (पु)—इन्द्र
मालाकार (मालाकार) पु —माली
युवन् (पु)—युवा
वर्षाभू (पु)—मेढक
वृश्चिक (वृश्चिक)—बिच्छू
वस्तुनिर्देश पु (वस्तु—न कथा + निर्देश-पु उक्ति) कथाकी उक्ति
वृजिन (वृजिनम्) न —पाप
वृष्णि (पु)—यादव
शालीनता (स्त्री)—लज्जा
स्कन्द (स्कन्द) पु —कार्तिकेय
सहाय (सहाय) पु सहायक

१ यह शब्द पारस्करादि गणमें आता है, जिसमें समास के पूर्व पदको स् लगाया ... बृहत् के त् का स् आगे रहनेपर लोप होता है। पारस्कर (एक देशका नाम), ...पति, बृहस्पति इत्यादि पारस्करादिगणके शब्द हैं।

ऋषिके आज्ञानुसार वह सार्वभौम राजा गौकी सेवा करनेके लिए तैयार हुआ ।

बुद्धिमान् पुरुषको क्या कठिन है ?

बरसातमें मेंढ़क तालावोंमें कूदते हैं ।

शुक्र दैत्योंका गुरु था । कचने उससे मन्त्रशास्त्र सीखा ।

शत्रु अवश्य समीप होगा (तृतीयान्तके साथ भवितव्यम् का प्रयोग करो)। उसके बाण वेगसे हम लोगोंको मारते हैं ।

तुमने मुझे यह याद दिलाकर अच्छा काम किया । मैं बिलकुल भूल गया था ।

हे मित्र ! वह बात तो बीत चुकी । तुमको समाधान करनेके सिवा दूसरा मार्ग नहीं ।

सञ्ज्ञाशब्द ।

अगस्त्य (अगस्त्य) पु —एक ऋषि
अनल (अनल) पु —अग्नि
अनिल (अनिल) पु —वायु
अप् (स्त्री)—जल
अभिलाषबन्ध (अभिलाष-पु प्रेम, बन्ध-पु —बन्धन) प्रेमका बन्धन
अवाची (अवाच् का स्त्री)—दक्षिण दिशा
अहन् (न)—दिन
आलोक (आलोक) पु —प्रकाश
आशिस् (स्त्री)—आशीर्वाद
उशनस् (पु)—शुक्र
उदीची (उदच् का स्त्री)—उत्तर दिशा
कलाप (कलाप) पु —समूह
कवि (पु)—कवि
केशपाश पु (केश-पु + पाश—समूह)—केशोंका समूह
गोदावरी (स्त्री)—एक नदी
चमरी (स्त्री)—मृगविशेष
चित्र (चित्रम्) न —आश्चर्य
जरा (स्त्री)—बुढ़ापा
तिमिर (तिमिरम्) न —अन्धकार
तिर्यच् (पु)—पशु
तुरग (तुरग) पु —अश्व

३। तदधीते तद्वेद।

(यह जो उसको पढ़ता है या जानता है। तद् से प्रकृति का बोध होता है जिसको प्रत्यय लगाये जाते हैं)।

१। अ—वैयाकरण (व्याकरणमधीते वेद वा)।

२। इक—नैयायिक (न्याय से), तार्किक (तर्क से), ऐतिहासिक (इतिहास से), पौराणिक (पुराण से)।

३। अक—मीमांसक (मीमांसा से)।

४। तत्र भव।

(उससे उत्पन्न हुआ)।

१। य—दन्त्य (दन्तेषु भव)—दांतसे उत्पन्न, दन्तस्थानीय, ओष्ठ्य (ओष्ठ से), कण्ठ्य (कण्ठ से), तालव्य (तालु से), मूर्धन्य (मूर्धन् से), प्राच्य (प्राच् से), उदीच्य (उदच् से), प्रतीच्य (प्रत्यच् से)।

२। त्य—दाक्षिणात्य (दक्षिणा से), पाश्चात्य (पश्चात् से), पौरस्त्य (पुरस् से)।

३। इक—मानसिक (मनस् से), शारीरिक (शरीर से)।

इक अनेक अर्थोंमें संज्ञाशब्दोंको विशेषण बनाता है।

भाव—भाविक	प्रमाण—प्रामाणिक
धर्म—धार्मिक	निसर्ग—नैसर्गिक
दिन—दैनिक	स्वभाव—स्वाभाविक

५। तस्येदम्।

(उसका या उसका सम्बन्धी)।

१। अ—शैव (शिवस्येदम्) धनु।

उपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि—ऋषितुल्य इस राजाको यह योग्य है। उर्वशी चित्रलेखाद्वितीया केशिना दानवेन बन्दिग्राहं गृहीता—चित्रलेखाके सहित उर्वशी केशिन नामके दैत्यसे कैद की गई।

इस पाठमें तद्धित तथा कृत् प्रययोंका वर्णन किया गया है।

प्रायमिक प्रत्यय, अर्थात् वे प्रत्यय जो सञ्ज्ञाशब्द, सर्वनाम, तथा विशेषणोंको लगते हैं, तद्धित कहाते हैं।

तद्धित प्रत्यय कई हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं —

१। अपत्यवाचक।

अपत्य—सन्तति, लड़के वा लड़कियां, किंवा इससे बादकी वंशकी सन्तति।

१। अ—रावण (रवणस्यापत्यम्—रवणका पुत्र), राघव (रघोरपत्यम्—रघुवंशीय लड़का), पार्वती (पर्वतस्यापत्य स्त्री—पर्वतकी लड़की), जानकी (जनकस्यापत्य स्त्री)।

ये प्रत्यय आगे रहनेपर प्राय अन्तिम स्वरका लोप होता है और प्रथम स्वरको वृद्धि होती है। इस प्रकारके परिवर्तन नीचे दिये शब्दोंमें सुगमतासे देख पड़ सकते हैं।

२। इ—दाशरथि (दशरथस्यापत्यम्), सौमित्रिः (सुमित्राया अपत्यम्)।

३। एय—गाङ्गेय (गङ्गाका पुत्र भीष्म), वैनतेय, (विनताका पुत्र, गरुड), राधेय, (राधाका पुत्र, कर्ण)।

४। य, ईय, व्य—श्वशुर्य (श्वशुरस्यापत्यम्), स्वस्रीय, (स्वसुरपत्यम्), भ्रात्रीय भ्रातृव्यो वा (भ्रातुरपत्यम्)।

२। समूहवाचक।

१। ता—ग्रामता (ग्रामोंका समूह), जनता, बन्धुता।

१०। उत्कर्षवाचक।

१। तर, तम—लघुतर, लघुतम, उत्तर, उत्तम, प्राच्यकतर, वक्रतम, इत्यादि (२२वां पाठ देखो)।

२। तराम्, तमाम्—नीचैस्तराम्, पचतितमाम्।

३। ईयस्, इष्ठ—लघीयस्, लघिष्ठ—इत्यादि।

११। स्वामित्ववाचक।

(मत्वर्थीय प्रत्यय)।

१। मत्—मतिमत्, बुद्धिमत्, भूमिमत्, यवमत्, भगवत्, ...वत् (१३वां पाठ देखो)।

२। विन्—मायाविन्, मेधाविन्, यशस्विन्, तेजस्विन्।

३। आलु—दयालु, मायालु, कृपालु।

१२। अभूततद्भाववाचक।

१। च्वि (ई)—कृष्णीकरोति (अकृष्णं कृष्णं सम्पद्यते यथा ...रा करोति—जो काला नहीं था उसको काला बनाता है), लघूभवति ...इत्यादि।

१३। ईषन्न्यूनतायाचक।

१। कल्प—विद्वत्कल्प (ईषदूनो विद्वान्—पण्डितके समान, कुछ ...म पण्डित), द्वीपकल्प द्वीपसे कुछ कम, जिसमें तीनों ओर ...जल है।

२। देश्य—अष्टादशवर्षदेश्य } करीब १८ वर्षका

३। दशीय—अष्टादशवर्षदेशीय. }

१४। तदस्य सञ्जातम्।

२। ईय—तदीय, मदीय, भवदीय, त्वदीय, अस्मदीय, युष्मदीय, अन्यदीय ।

६। विकारवाचक ।

(आकारके परिवर्तनका बोध कराता है)।

१। मय—गोमयम् (गोविकार)—गोबर, वाङ्मयम् (वाणीका—शास्त्र ।

२। य—गव्यम्, पयस्यम् ।

७। तत्र साधु ।

१। य—शरण्य (शरणे साधु —रक्षा करनेमें अच्छा)

२। एय—आतिथेय (अतिथिषु साधु)।

८। तस्मादनपेतम् ।

(उससे हटा नहीं)।

१। य—धर्म्यम् (धर्मादनपेतम्), न्याय्यम् ।

९। भाववाचक ।

(तस्य भाव)

१। त्व-ता—गोत्वम्, गोता (गोपन)।

२। इमन्—प्रथिमन् (पृथु से), गरिमन् (गुरु से), लघिमन् (लघु से), म्रदिमन् (मृदु से), तनिमन् (तनु से)।

३। अ—गौरव (गुरु से), लाघव (लघु से), मार्दव (मृदु से), तानव (तनु से), कौमार (कुमार से), यौवन (युवन् से), शैशव (शिशु से)।

४। य—पाण्डित्य (पण्डित से), लालित्य (ललित से), शौर्य (शूर से), धैर्य (धीर से), इसी प्रकार माधुर्य, आलस्य, नैपुण्य, कौशल्य, मौर्ख्य, इत्यादि।

५। कर्तृवाचक कृदन्त—कर्ताके अर्थमें धातुओंको तृ तथा अक [illegible]ाया जाता है।

कृ—कर्तृ, कारक, पठ्—पठितृ—पाठक, नी—नेतृ, नायक।

६। भाववाचक प्रत्यय—

(अ) ति—बुद्धि, मति, गति, स्थिति, नीति, ग्लानि, हानि, दृष्टि, [illegible]क्ति।

यह प्रत्यय आगे रहनेपर होनेवाले परिवर्तन प्रायः वैसे ही हैं जैसे [illegible]कृदन्तमें त आगे रहनेपर हुआ करते हैं।

(ब) अन—वाचन, करण, भजन, कीर्तन, मनन, दर्शन, श्रवण, [illegible]ादि (सब नपुंसक)।

(क) अ—जय, भय, काम, पाक, योग (सब पुंलिङ्ग)।

सखे! प्रतीक्षस्व माम्। अहमपि भवन्तमनुयामि। न शक्नोमि [illegible]ता विना क्षणमप्यवस्थातुमेकाकी। कथमपरिचित इवादृष्टपूर्व इवाद्य [illegible]मकथयन् उत्सृज्य प्रयासि? कुतस्तवेयमतिनिष्ठुरता? कथय, त्वदृते क्व [illegible]च्छामि! शून्या मे दिशो जाताः। तदुत्तिष्ठ। देहि मे विलपत प्रति[illegible]वचनम्।

न हि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते न च मृगाः सन्तीति यवा [illegible]यन्ते।

कश्चित् कञ्चित्तुवायमाह। अस्य सूत्रस्य शाटकं वय इति। स [illegible]ति। यदि शाटको न वातव्यः। अथ वातव्यो न शाटकः। शाटको [illegible]श्चेति विप्रतिषिद्धम्। भाविनी खल्वस्य संज्ञाभिप्रेता। स मन्ये वातव्यो [illegible]न्नुते शाटक इत्येतद्भवति।

सकलभुवनतलरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देव। विहङ्गमस्त्रायमाश्चर्य[illegible]तो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमादायागताहमिच्छामि [illegible]

१५। प्रमाणवाचक।

१। मात्र—तावन्मात्रम् (उतना)।

२। दघ्न—जानुदघ्नं जलम् (घुटने तक)।

१६। तेन तुल्यं क्रिया चेत्।

१। वत्—ब्राह्मणवदधीते (ब्राह्मणके समान पढ़ता है।) 'तुल्य' अर्थमें वत् लगाया जाता है। जिन शब्दोंको यह लगाया जाता है वे क्रियाके साथ अन्वित होते हैं।

कृत् प्रत्यय।

वे प्राथमिक प्रत्यय, जो धातुओंको लगाये जाते हैं, कृत् प्रत्यय कहाते हैं। जिन शब्दोंके अन्तमें कृत् प्रत्यय होते हैं वे कृदन्त शब्द कहाते हैं।

१। वर्तमान, भूत, अव्ययभूत, विधि, तथा तुमन्त कृदन्तोंका वर्णन पहिले हो चुका है।

२। भविष्यकृदन्त—भू—भविष्यत् (स्त्री भविष्यन्ती-ती), आत्म—करिष्यमाण (स्त्री करिष्यमाणा)।

३। परोक्षभूतकृदन्त—वद्—ऊदिवस्, श्रु-शुश्रुवस्, कृ—चकृवस्, चक्राण, उप+ई—उपेयिवस्, अधि+वस्—अध्यूषिवस्।

४। अम् (णमुल्)—क्रियाकी पुनरुक्तिके अर्थमें धातुओंको अम् लगाया जाता है।

स्मारं स्मारं नमति शिवम्—स्मार २ स्मरण कर वह शिवको प्रणाम करता है।

पा—पायं पायम्, श्रु—श्रावं श्रावम्।

समूलघातं हन्ति—समूल नष्ट करता है। जीवग्राहं गृह्णाति—जीता पकड़ता है। बन्दिग्राहं गृह्णाति—कैद करता है।

था। पर जब वह वहां गया, देवोंने उसे ढकेल दिया। तथापि विश्वामित्रके तपोबलसे वह बीच ही में रोका गया।

यह बात नहीं है कि अन्न नहीं हुआ, क्योंकि वहां ऐसे प्राणी हैं जो खा डालते हैं।

सचमुच तुम बड़े निष्ठुर हो, तुमने हमको अकस्मात् छोड़ दिया। तुम्हारा यह कहना कि जल एक ही समय गरम है और ठंडा भी, विरुद्ध है।

संज्ञाशब्द।

तनिष्ठुरता (स्त्री) अतिक्रूरता
दाह (अन्तर्दाह) पु—भीतरी जलन
वबोध (अवबोध) पु—ज्ञान
व (अश्व) पु—घोड़ा, यह सात संख्याका बोध भी कराता है। (क्योंकि सूर्यके घोड़े सात है।)
रा (स्त्री)—लक्ष्मी
वर (इन्दीवरम्) न—नीलकमल
(पु)—चन्द्र, यह एक संख्या का बोध कराता है।
ल (कन्दल -लम्) पु., न —१ कली २ समूह, ३ कारण, ज्ञान अथवा विषय
(पु) एक दैत्य
स्त्री)—ज्ञान
गृहम्) न—घर

ग्रह (ग्रह) पु—ग्रह, यह ९ संख्याका बोध कराता है।
तनू (स्त्री)—शरीर
तन्तुवाय (तन्तुवाय) पु—जुलाहा
दल (दलम्) न—पत्ता
दुर्वासना (स्त्री)—दुष्ट वासना
दृश् (स्त्री)—दृष्टि
द्वैतान्धकारोदय (पु)—(द्वैत न भेद + अन्धकार पु—अन्धकार, अज्ञान + उदय—पु उत्पन्न होना)—भेदसे होनेवाले अज्ञानकी उत्पत्ति
पादपद्म (पादपद्मम्) न (कर्म०, पाद—पु + पद्म न)—कमलके समान चरण
बन्दिन् (पु)—कैदी
भजन (भजनम्) न—पूजन
भाजन (भाजनम्) न—पात्र

जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यतीति विकारा ।

दूतो गता सा क्व गता न जाने गेह गता मे हृदय गता वा ॥

एह्येहि वत्स रघुनन्दन रामभद्र

चुम्बामि मूर्धनि चिराय परिष्वजे त्वाम् ।

स्थाय स्थाय क्वचिद्यान्त क्रान्त्वा क्रान्त्वा स्थित क्वचित् ।

वीक्षमाणो मृगा रामचित्तवृत्ति विचिन्तिरे ॥

नसमरसला ग षड् वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।

दलति हृदय गाढोद्वेग द्विधा न तु भिद्यते

वहति विकल कायो मोह न मुञ्चति चेतनाम् ।

ज्वलयति तनूमन्तर्दाह करोति न भस्मसात्

प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥

सूर्याश्वैर्यदि म सजो सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।

किं तीर्थं हरिपादपद्मभजनं किं रत्नमच्छा मति

किं शास्त्रं श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदय ।

किं मित्रं सततोपकाररसिकं तत्त्वावबोध सखे

क शत्रुर्वद खेददानकुशलो दुर्वासनासञ्चय ॥

सुखस्यानन्तर दु ख दु खस्यानन्तर सुखम् ।

सुखदु खावृते लोके नास्ति सौख्यमनन्तकम् ॥

तवस्त्वेत्य करोद सा भृश स्तनसम्बाधमुरो जघान च ।

स्वजनस्य हि दु खमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥

इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम् ।

वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम् ॥

मत्यव्रतको त्रिशङ्कु नामका एक पुत्र था। वह वसिष्ठके ... हुआ। तिसपर भी वह विश्वामित्रके प्रभावसे सशरीर स्वर्ग...

—प्रथमें रहनेवाला	विवृत (वि+वृ+त)—खुला
मद्ध—(वि+प्रति+षिध्_	श्याम—काला
त)—विरुद्ध	शून्य—खाली
(वि+लप्_ना वर्त कृ)	सतत—अविनाशी
शाप करता हुआ	

धातु ।

थि (अधिश्रयति-ते भ्वा	प्रति+इक्ष्_ (प्रतीक्षते-भ्वा आ)
)—पकाना	—बाट जोहना
ा (अनुयाति—अ पर)—	प्र+या (प्रयाति अ पर)—जाना
ा जाना	वप् (वपति ते- भ्वा उभ)—बोना
व (अपसरति—	वि+परि+नम (विपरिणमति-
पर)—नष्ट होना	ते—भ्वा उभ)—किसी नये
न्तति—तु पर)—काटना	रूपमें बदलना
स्खलति—भ्वा पर)—	वि+स्मि (विस्मयते भ्वा आ)
ना	—आश्चर्य करना
दलति—भ्वा पर)—	वे (वयति-ते भ्वा उभ)—बूनना
ा ; फटना	

प्रत्यय ।

(अव+स्था+तुम्)	भस्मसात्—(भस्मन्—न शब्द ; सात्
	—तद्धित प्रत्यय जिसका अर्थ
	होता है)—
अव्यय	हो गया हुआ
	(, वायुना)

मन्दार (मन्दार) पु —पाच कल्पवृक्षोंमें एक
मुनि (पु)—ऋषि , यह ७ संख्याका बोध कराता है ।
यदुनन्दन (पु —यदूना नन्दन)—यदुवंशीयोंको आनन्द देने वाला , श्रीकृष्ण
यव (यव) पु —जव
विहङ्गम (विहङ्गम) पु —पक्षी
वेद (वेद) पु —इससे ४ संख्याका बोध होता है ।
शाटक (शाटक -कम्) पु , न
शार्दूलविक्रीडित (शार्दूलविक्रीडितम्) न —एक छन्दका
सञ्चय (सञ्चय) पु —समूह
सूर्य (सूर्य) पु —सूर्य, इससे १ बोध होता है ।
स्थाली (स्त्री)—बटलोही
हय (हय) पु —घोड़ा, इस संख्याका बोध होता है ।
हरि (पु)—विष्णु
हरिणी (स्त्री)—एक छन्दका

विशेषण ।

अच्छ—निर्मल
अदृष्टपूर्व—जो पहिले कभी देखा नहीं
अपरिचित (अ + परि + चित—चि का भू कृ)—अज्ञात
अभिप्रेत (अभि + प्र + इ + त, स्त्री० प्रेता)—इष्ट
आश्चर्यभूत—आश्चर्यजनक
ईश्वर—शक्तिमान् , समर्थ
कठोर—कड़ा
गाढोद्वेग (बहु०, गाढ विशे० + उद्वेग-पु -शोक)—अत्यन्त शोकार्त
चित्रवृत्ति (बहु०, चित्र-विशे अद्भुत + वृत्ति-स्त्री व्याप —अद्भुत व्यापारवाला
निखिल—सम्पूर्ण, सब
भाविन् (स्त्री —भाविनी)—होनहार
मर्मच्छेदिन (मर्मन्—न. मर्म + छेदिन्-काटनेवाला)—मर्मस्थानको काटनेवाला
लोकोत्तर—जगत्में सर्वोत्तम , अद्भुत , असाधारण
वन्दारु—वन्दनशील , नम्र , पूज प्रणाम करनेवाला

२। अकृथा, अकृत—क् पूर्व रहनेपर स्था तथा स्त से स् का लोप होता है।

३। घस् को नित्य वा विकल्पसे ट्स् होनेके नियम वे ही है जो तीतभूतमें घ्ये को ट् होनेके विषयमें है।

पद्—अपादि अपत्साताम् अपत्सत, जन्—अजनि अजनिष्ट अजनिषाताम् अजनिषत, दीप्—अदीपि-अदीपिष्ट अदीपिषाताम् अदीपिषत, बुध्—अबोधि-अबुद्ध अभुत्साताम् अभुत्सत—

४। पद् में इ प्रथम पु ए व का प्रत्यय है, और रूप अपादि होता है। दीप, जन्, तथा बुध् में यह विकल्पसे होता है।

षष्ठ प्रकार।

नम्—पर।

प्र पु	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषु
म पु	अनंसी	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
उ पु	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

यम्—अयंसीत्, विरम्—व्यरंसीत्, परन्तु रम् आत्म—अरंस्त रंसाताम् अरंसत, अरंस्थाम्, इत्यादि।

पा (रक्षा करना)—अपासीत्, ग्ला—अग्लासीत्।

१। यह प्रकार केवल परस्मै धातुओं ही में होता है।

२। यम्, रम्, नम्, और आकारान्त धातुओंमें यह प्रकार होता है।

प्रथम प्रकार।

दा—पर।

प्र पु	अदात्	अदाताम्	अदुः
म पु	अदाः	अदातम्	अदात
उ पु	अदाम्	अदाव	अदाम

व्रज्—अव्राजीत् अव्राजिष्टाम् अव्राजिषु
गद्—अगदीत्—गादीत् इत्यादि ।
तॄ—अतारीत् अतारिष्टाम् अतारिषु
जागृ—अजागरीत्, हस्—अहसीत्, मुष्—अमोषिष्ट
हन्—अवधीत् अवधिष्टाम् अवधिषु

गुण तथा वृद्धिके नियम ।

१। नी—अनैषीत्, रुध्—अरौत्सीत्—परस्मैपद चतुर्थ प्रकारमें धातुके स्वरको वृद्धि होती है ।

२। व्यजेष्ट, अकृत—आत्मनेपद चतुर्थ प्रकारमें धातुके अन्तिम इ तथा उ को गुण होता है और इतर स्वर ज्यों की त्यों रहते हैं ।

३। अतारीत्, अचारीत् अचालीत्, अवादीत्—परस्मैपद पञ्चम प्रकारमें अन्तिम स्वरको, तथा र, ल् में अन्त होनेवाले धातु, और वद्, व्रज् इन धातुओंके उपान्त्य अ को वृद्धि होती है ।

४। गद्—अगादीत्-गादीत्—पर पञ्चम प्रकारमें र् तथा ल् को छोड़ इतर व्यञ्जनान्त धातुओंके उपान्त्य अ को विकल्पसे वृद्धि होती है ।

५। अजागरीत् अहसीत्, अश्वयीत्, अक्षणीत्—श्वि ग्रसु, जागृ हस, तथा क्षण और धातुओंमें वृद्धि नहीं होती ।

६। अशयिष्ट, मुष्—अमोषिष्ट आत्मन—पञ्चम प्रकारमें अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण होता है ।

रुध्—अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सु
कृ—अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकृथा	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्

सन्धिके नियम ।

१। अरुध + साम् = अरौध् + स्ताम् = अरौध् + तम् = अरौध् धम् = अरौद् + धम् = अरौद्धम्—अनुनासिक तथा अन्त्य स्वको छोड़ कोई व्यञ्जन पूर्व रहनेपर स्ताम्, स्त, तथा स्ताम् के स् का लोप होता है ।

अविश्+सम्=अविष्+सम् (२८ पाठ, नि अ)=अविक्+
म् (२८ वा पाठ, नि य)=अविक्+षम्=अविक्षम्, अगुह्+
म्=अगुढ्+सम्=अघुढ्+सम्=अघुक्+सम्=अघुक्+षम्=
घुक्षम्, कृष्—अकृक्षम्।
अलिक्षि—अलिक्षावहि अथवा अलिह्वहि—अलिक्षामहि

नियम —

१। लिह्—अलिक्षत्, दुह्—अधुक्षत्, कृष्—अकृक्षत्—जिन
धातुओंके अन्तमें श्, ष, स, वा ह् हो और उपान्त्य इ, उ, ऋ, वा लृ हो,
उनमें यह प्रकार होता है।

२। अलीढ-अलिक्षत, अलीढा—अलिक्षथा, अलीढ्वम्—
अलिक्षध्वम्, अलिह्वहि—अलिक्षावहि—लिह, गुह्, दिह्, तथा दुह् के
आत्म प्र पु ए व में, म पु ए तथा ब व में, तथा उ पु के द्वि व
में वैकल्पिक रूप होते हैं। वे त, थास्, ध्वम्, और वहि जोड़नेसे
बनते हैं।

द्वितीय प्रकार।

इसमें तीन प्रकारके धातु होते हैं —

(१) वे धातु जिनमें यह प्रकार नित्य होता है, (२) वे जिनमें
विकल्पसे होता है, (३) कुछ आत्मनेपदी धातुओंमें यह प्रकार विकल्प-
से होता है, और जब यह होता है तब उनको परस्मैपद प्रत्यय लगाते
हैं। प्रत्यय वे ही हैं जो अनद्यतन भूतके।

प्रत्येक वर्गके कुछ उपयोगी धातु इस प्रकार हैं —

(१) गम्, शक्, [1]शम्, तम्, दम्, श्रम्, क्षम्, चम्, मद्, पत्

१। शमादि (शम्, तम, दम्, श्रम्, भ्रम्, चम्, तथा मद) दिवादिगणके धातु हैं।
इन ... प्रकारोंमें उनके उपान्त्य अ को दीर्घ होता है, भ्रम् में विकल्पसे दीर्घ होता
है और यह आदि में भी है।

दा—आत्म.। (चतुर्थ प्रकार)

प्र पु	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
म पु	अदिथा	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
उ पु	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

धा—अधात्, स्था—अस्थात्।

इ—'जाना'।

प्र पु	अगात्	अगाताम्	अगुः

भू।

प्र पु	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
उ पु	अभूवम्	अभूव	अभूम

१। दा, धा, तथा वे धातु जो दा, धा का रूप धारण करते (३६ वा पाठ १८ वा नियम देखो), स्था, गै (इ—'जाना' का आदेश पा 'पीना', तथा भू में यह प्रकार होता है।

२। अदित, अस्थित—आत्म जब है तब दा, धा, तथा स्था चतुर्थ प्रकार होता है। क्योंकि ये अनिट है। इनके आ को इ होता है

सप्तम प्रकार।

विश्—पर।

प्र पु	अविक्षत्	अविक्षताम्	अविक्षन्
म पु	अविक्ष	अविक्षतम्	अविक्षत
उ. पु	अविक्षम्	अविक्षाव	अविक्षाम

द्विष्—आत्म।

प्र पु	अद्विक्षत	अद्विक्षाताम्	अद्विक्षन्त
म पु	अद्विक्षथाः	अद्विक्षाथाम्	अद्विक्षध्वम्
उ पु	अद्विक्षि	अद्विक्षावहि	अद्विक्षामहि

धातु।

निर्+दिश (निर्दिशति-तु पर) —दिखाना

नि+वृ-णि (निवारयति वृ-णि भ्वा, स्वा, क्या उभ) —रोकना

वि+लप् (विलपति—भ्वा पर)—विलाप करना

वृ (वृणाति—वृणुते-स्वा उभ) —ढाकना

अव्यय।

अनायासेन (अनायास का तृ ए व)—बिना कष्टके

अनु,—अनन्तर, बाद

इत —यहांसे

नितराम्—अत्यन्त

मा—नहीं (अद्यतन भूतके साथ आज्ञाके अर्थमें प्रयोग किया जाता है।

प्रतीपम्—विरुद्ध, उलटा

यस्त्रधि—जबसे

स्म—१ भूत कालिक अर्थ बोध करानेके लिये वर्तमान कालिक क्रियाके साथ प्रयोग किया जाता है, २ मा तथा अद्यतनभूतके साथ प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ आज्ञा होता है।

पाठ ४१।

आशीर्लिङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, नामधातु।

कुशलं ते भूयात्—तुम्हारा मङ्गल हो।

केशवो वः शिवं दद्यात्—केशव तुमलोगोंको कुशल दे।

शिवो वः श्रियं पुष्यात्—शिव तुम लोगोंकी लक्ष्मीको बढ़ावे।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण—हे महाराज, यदि आप पृथ्वीरूप गौको दुहा चाहते हैं तो अब वत्सकी तरह इस लोक (प्रजाजन) का पोषण कीजिये।

राज्यभार (राज्यभार) पु —राज्यका भार
विभ्रम (विभ्रम) पु —घूमना, माया
विहितता—(स्त्री.)—भवितव्यता
शकल (शकल) पु —खण्ड
शकृत् (न)—मल
शब्दजाल (शब्दजालम्) न (शब्द-पु+जाल-न समूह)—शब्दोंका समूह
शीत (शीतम्) न —सरदी
शुकनास (शुकनास) पु —एक मन्त्रीका नाम

संसारसिन्धु (पुं)—भवसागर
समा—स्त्री (ब ब में प्रयो... होता है)—वर्ष
सहिष्णुता (स्त्री)—सहनशील...
सरोरुह (सरोरुहम्) न —कमल
सुषमा (स्त्री)—शोभा
हतशरीर (हतशरीरम्) न, सन (... हन्+त, निन्दित+शरीर ... —निन्दित शरीर

विशेषण ।

अनुग—पीछे चलनेवाला
अन्यतमनस् (बहु०)—जिसका मन दूसरी ओर लगा हुआ है
अभ्युद्गत (अभि+उद्+गम्+त)—उत्पन्न
उपात्त (उप+आ+दा+त)—कृत
गुणग्रहीतृ (गुण—पु १ सद्गुण, २ डोरी)— १ सद्गुणों का जाननेवाला, २ डोरीको पकडनेवाला
द्विगुणित—दूना
नाशन—नाशक
निपुण चतुर

निर्विघ्न (बहु०)—विघ्नशून्य
निःश्रीक (बहु०)—शोभारहि...
नीच—१ गर्हित, २ ... अधम
महाभाग—भाग्यवान्
मोहित (मुह्—णि+त)—मो...
रोषण—क्रुद्ध
विप्रकृत (वि+प्र+कृ+त)—अपमानित, विरोधित
शान्त (स्त्री शान्ती)—श...
सकल (बहु०, कलाभिरवयवैः सहित सकल)—सम्पूर्ण
सरस (बहु०) १ जलपूर्ण, २ रसिक, सहृदय

यदमिद सुखमनुभवन्नपि न प्रत्येमि । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।
द्वारका रोहिणीजानिर्द्वारं नेयेव ।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मनस्तु कामाय सर्वं
प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो
मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।

तमेतमौपनिषदं पुरुषं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।

तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं
पश्येत् ।

एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष
उ एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते ।

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ।

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।—अनुपममित्यर्थः । अनन्वया-
लङ्कारोऽयम् ।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत् ।
मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

एक एव खगो मानी चिरं जीवतु चातकः ।
पिपासया वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ॥
अविवेकोऽप्यसतापत भवान् अवसुरुडाभरणोऽपि पावनः ।
भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥
विनुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरश्छिनद्मि वा ।
किमु रोदिमि रारटीमि किं कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥
रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

इच्छार्थक मूलक प्रकृति है। इसलिये भिर के समान इससे भी
लकारोंमें रूप होते हैं।

कृ—कारय (णि)—कारयति, कारयतु, अकारयत, कारयेत, कारयाञ्
कार—बभूव—आस, कारयिता, कारयिष्यति, अकारयिष्यत, अचीकर
कार्यात्।

कृ—चिकीर्ष (सन्नन्त)—चिकीर्षति, चिकीर्षतु, अचिकीर्ष
चिकीर्षेत्, चिकीर्षाञ्चकार—बभूव—आस, चिकीर्षिता, चिकीर्षिष्य
अचिकीर्षिष्यत्, अचिकीर्षीत्, चिकीर्ष्यात्।

यङन्त (अतिशयार्थक)।

भू—बोभूयते (पौनःपुन्येन भृशं वा भवति)—इससे क्रियाका
२ वा अत्यन्त होना प्रतीत होता है।

दीप—देदीप्यते, ज्वल्—जाज्वल्यते, नृत्—नरीनृत्यते, अट्
अटाट्यते।

नियम —

धातुओं को य लगाकर यङन्त बनाये जाते हैं। इनको आत्मनेप
प्रत्यय लगते हैं। य आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होता है
अभ्यासको गुण होता है, ज्वल्, नृत्, तथा अट् के रूप अनियत हैं।

यङ्लुगन्त (अतिशयार्थक, जिसमें य का लोप होता है)।

भू—बोभवीति, रट्—रारटीति

इन रूपोंमें य का लोप होता है।

यङन्त तथा यङ्लुगन्त दोनोंमें सब लकारके रूप होते हैं।

नामधातु।

गगनायते—गगनमिवाचरति (आचारार्थे क्यङ), तमसायते।
तपस्यति—तप आचरति, नमस्यति—नमस्कार करोति।

संज्ञाशब्द ।

न्वय (अनन्वय) पुं—यह एक अलङ्कार है, जिसमें उपमान और उपमेय एक ही होते हैं ।

नुवचन (अनुवचनम्) न—उच्चारण करना

म्बुधि—(पु)—इससे चार संख्याका बोध होता है, क्योंकि समुद्र चार हैं ।

वधि (पु)—सीमा

वनि (स्त्री)—पृथ्वी

म—(काम) पु—प्रेम

गपति—(पु, तत्पु०, खग पु आकाशमें चलनेवाला पक्षी + पति पु रक्ष)—पक्षियोंमें उत्तम

ल—(गरल) न—विष

तक—(चातक) पुं—एक पक्षी

मूत (जीमूत) पु—मेघ

रुणेन्दुशेखर पु (बहु०, तरुण विशे० छोटा + इन्दु—पुं चन्द्र + शेखर—पुं सिरपेंच) जिसका चन्द्रमा सिरपेच है, शिव

दैवत (दैवतम्) न—देवता

नग (नग) पु—इससे सात संख्याका बोध होता है ।

नेमि (पु)—पहियेकी हाल

पुरन्दर (पुरन्दर) पु—इन्द्र

पुरुष (पुरुष) पु—आत्मा

भव (भव) पु—१ जो उत्पन्न हुआ, २ शिव

मन्दाक्रान्ता—(स्त्री)—एक छन्दका नाम

मुण्ड (मुण्ड) पु—सिर

मैत्रेयी—(स्त्री)—याज्ञवल्क्य की स्त्री

रस (रस) पु—इससे ६ संख्याका बोध होता है, क्योंकि रस छ हैं ।

रुद्र (रुद्र) पु—इससे ११का बोध होता है, क्योंकि रुद्र ११ हैं ।

शरण (शरणम्) न—रक्षाका स्थान

शव (शव) पु—मृत शरीर

शिखरिणी (स्त्री)—एक छन्द

विशेषण ।

नुपम (बहु०, अन्+उपमा—सदृश)—असदृश, असमान

अर्थिन्—मांगनेवाला

उपरत (उप+रम्+त)—विरक्त

गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने दुर्जनमुखे
गुणा दोषायन्ते किमिति जगतां विस्मयपदम् ।
यथा जीमूतोऽयं लवणजलधेर्वारि मधुरं
फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलं दुःसहतरम् ॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥
विना सीतादेव्या किमिव न हि दुःखं रघुपते
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधि
किमित्येवं पृच्छस्यनधिगतरामायण इव ॥
—इति कुमारश्लोकिलं प्रति ।
शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥

मेरी शक्ति तथा जो काम मैंने उठाया है इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है
मैं एक छोटीसी नावसे समुद्र पार किया चाहता हूं ।

इस जीवलोकमें सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आ
रहता है । कोई भी सर्वथा सुखी वा दुःखी नहीं है ।

एक शब्द भी, यदि वह अच्छी तरह जाना जाय, हम लोगोंके मनोर
को पूर्ण करता है । विद्याकी ऐसी शक्ति है ।

उन दासोंको, जो गोविन्दको प्रणाम करते है, कोई भय नहीं ।

हे सञ्जय ! हमसे कहो कि युद्धार्थी पाण्डवोंने हमारे लड़कोंको
किया ?

जो दुर्जनको सज्जन बनाना चाहता है, वह हाथोंसे समुद्रको
करना चाहता है ।

वृद्ध मनुष्यको धिक्कार है ! उसके लड़के भी उसको शत्रुओंके
व्यवहार करते है ।

अव्यय।

...तम्—बहुत	नीचैः—नीचे
...—नीचे	यद्वा—अथवा (पक्षान्तर का बोध कराता है।)
...लतः—नियमसे, सत्रश	

पाठ ४२।

स्त्रीप्रत्यय तथा पत्रलेखनका प्रकार।

...पहिले स्त्रीप्रत्ययोंका वर्णन किया गया है। इस पाठमें उनका ...लारसे वर्णन किया जाता है।

...—अजा (बकरी), कोकिला, चटका (चिड़िया), अश्वा, मूषिका (मूषकसे), बाला, वत्सा, शूद्रा (जाती, अर्थात् वर्णके अर्थमें), ...श, कनिष्ठा, मध्यमा, वृद्धा, स्थविरा।

...—गौरी, नर्तकी, हरिणी, मानुषी (मनुष्यसे), मत्सी (मत्स्यसे), वयसि (उमर् के अर्थमें)—कुमारी, किशोरी (परन्तु वृद्धा, स्थविरा)। ...पुयोग (उसकी स्त्री)—शूद्री, गणकी

नियम —

१। अकारान्ता —अकारान्त शब्दोंसे स्त्रीलिङ्गमें रूप आ या ई ...ननसे बनते हैं।

बाधक—

...(अ) इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुण—वरुणानी, भव—भवानी, ...—रुद्राणी, शर्व—शर्वाणी, मृड—मृडानी, सूर्यस्य स्त्री सूर्या, मनो। ...ला मनावी मनायी मनुषी, मातुल—मातुलानी—मातुली।

(ब) यहाँ २ अर्थ समझ जाता है।

औपनिषद—जिसका ज्ञान उपनिषद्-
से हो सकता है
कामदुह्—मनोरथ पूर्ण करनेवाला
खड्गचर्मधर—तलवार और ढाल
लिये हुए
छिन्न (छिद्+त)—कटा हुआ
तितिक्षु—जो सर्दी गरमी, सुख
दुःख, इत्यादिसे अविकृत रहता
है
दान्त (दम्+त)—जिसने इन्द्रियोंका
दमन किया है
दुःसहतर—अत्यन्त असह्य
द्रष्टव्य (दृश्+तव्य)—देखने योग्य
निदिध्यासितव्य (नि+धैर—म
न्नन्त+तव्य)—एकाग्र चित्तसे
विचार करने योग्य
पावन—पवित्र
भवान्तक—संसारका नाशक
मन्तव्य (मन्+तव्य)—विचार करने
योग्य

रोहिणीजानि (बहु०, रोहिणी
जाया यस्य सः)—जिसकी
स्त्री रोहिणी है, बलराम
लवण—क्षार, निमक
विषमेक्षण (बहु० विषम १ असम
२ अनुपम, पक्षपाती+ईक्षण
न नेत्र) १ जिसको विषम
अथवा तीन नेत्र हैं, २.
पक्षपातसे देखता है
शान्त (शम्+त)—शान्त, जिस
इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाया
श्रोतव्य (श्रु+तव्य)—सुननेसे यो
श्रद्धावित्त—श्रद्धावान्
समाहित (सम्+आ+धा+त)
जिसने निद्रा, आलस्य इत्या
को दूर किया है और चित्त
विचार करनेमें एकाग्र किया
सुप्रयुक्त—(सु+प्र+युज्+त)
जिसका प्रयोग अच्छी त
किया गया

धातु।

उद्+नी (उन्नयति-ते—भ्वा उभ)
—ऊपर उठाना
प्रति+इ (प्रत्येति—अ पर)—
विश्वास करना, पतिआना

वि+लुठ् (विलुठति-भ्वा पर)
लोटना
रट्—(रटति भ्वा पर)—रट
पुकारना

अव्यय।

...त्तम्—बहुत	नीचैः—नीचे
...—नीचे	यद्वा—अथवा (पक्षान्तर का बोध कराता है।)
...न्तं —नियमसे, सर्वदा	

पाठ ४२।

स्त्रीप्रत्यय तथा पत्रलेखनका प्रकार।

पहिले स्त्रीप्रत्ययोंका वर्णन किया गया है। इस पाठमें उनका ...स्तारसे वर्णन किया जाता है।

...—अजा (बकरी), कोकिला, चटका (चिड़िया), अश्वा, मूषिका (मूषकसे), बाला, वत्सा, शूद्रा (जाती, अर्थात् वर्णसे अर्थमें), ...ष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, वृद्धा, स्थविरा।

...—गौरी, नर्तकी, हरिणी, मानुषी (मनुष्यसे), मत्सी (मत्स्यसे), वयसि (उमर् के अर्थमें)—कुमारी, किशोरी (परन्तु वृद्धा, स्थविरा)। पुयोग (उसकी स्त्री)—गृद्री, गणकी

नियम —

१। अकारान्त —अकारान्त शब्दोंसे स्त्रीलिङ्गमें या आ वा ई ...गानेसे बनते हैं।

साधन—

(अ) इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुण—वरुणानी, भव—भवानी, ...—रुद्राणी, शर्व—शर्वाणी, मृड—मृडानी, मनुस्य स्त्री मनाई, मनोः ...ी मनावी मनायी ... —मातुलानी—मातुली।

(ब) कहीं २ ... है।

औपनिषद—जिसका ज्ञान उपनिषद्-
से हो सकता है
कामदुह्—मनोरथ पूर्ण करनेवाला
खड्गचर्मधर—तलवार और ढाल
लिये हुए
छिन्न (छिद्+त)—कटा हुआ
तितिक्षु—जो सर्दी गरमी सुख
दुःख, इत्यादिसे अविकृत रहता
है
दान्त (दम्+त)—जिसने इन्द्रियोंका
दमन किया है
दुःसहतर—अत्यन्त असह्य
द्रष्टव्य (दृश्+तव्य)—देखने योग्य
निदिध्यासितव्य (नि+ध्यै—स
न्नन्त+तव्य)—एकाग्र चित्तसे
विचार करने योग्य
पावन—पवित्र
भवान्तक—संसारका नाशक
मन्तव्य (मन्+तव्य)—विचार करने
योग्य

रोहिणीजानि (बहु०, रोहि
जाया यस्य स)—वह जि
स्त्री रोहिणी है, बलराम
लवण—खार, निमक
विषमेक्षण (बहु० विषम १ अ
२ अनुपम, पक्षपाती+
न नेत्र) १ जिसको
अथवा तीन नेत्र हैं,
पक्षपातसे देखता है
शान्त (शम्+त)—शान्त,
इन्द्रियोंको विषयोंसे दट
श्रोतव्य (श्रु+तव्य)—सुननेयो
श्रद्धावित्त—श्रद्धावान्
समाहित (सम्+आ+धा+
जिसने निद्रा, आलस्य
को दूर किया है और
विचार करनेमें एकाग्र
सुप्रयुक्त—(सु+प्र+युज्+
जिसका प्रयोग अच्छी
किया गया

धातु।

उद्+नी (उन्नयति-ते—भ्वा उभ)
—ऊपर उठाना
प्रति+इ (प्रत्येति—अ पर)—
विश्वास करना, पतियाना।

वि+लुठ् (विलुठति-भ्वा प
लोटना
रट्—(रटति भ्वा पर)—
पुकारना

महाहिम हिमानी, महदरण्यमरण्यानी, दुष्टो यवो यवानी, यवनानां लिपिर्यवनानी।

(क) कुछ शब्दोंके दो रूप भिन्न २ अर्थोंमें होते हैं।

उपाध्याय—उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायानी—उपाध्यायी वा—गुरुकी स्त्री, स्वयमेवाध्यापिका—उपाध्यायी—या—स्वयं पढ़ानेवाली।

आचार्य—आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी, स्वयं व्याख्यात्री—आचार्या।

क्षत्रिय—क्षत्रियस्य स्त्री क्षत्रियी (पुयोगे)। क्षत्रियाणी—क्षत्रिया —क्षत्रिय जातिकी स्त्री।

स्थल—स्थली (अकृत्रिमा चेत्)—स्वाभाविक भूमि, स्थला (कृत्रिम) —कृत्रिम भूमि।

(ङ) आ तथा ई दोनोंसे—

चन्द्रमुखी—खा सुमोणी—णा, तुङ्गनासिकी—का, कृशोदरी—री, बिम्बोष्ठी—ष्ठा, स्वङ्गी—ङ्गा, सुगात्री—त्रा, कम्बुकण्ठी—ण्ठा।

(च) कृता, कर्तव्या, करणीया, कार्या, कृतवती, गतवती, लघुतरा, लघुतमा, लघिष्ठा। भूत तथा विधि कृदन्त, तथा तर, तम, इष्ठ, में अन्त होने वाले शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग का रूप आ लगानेसे बनता है। पर भूत कर्तृवाचक कृदन्त का स्त्रीलिङ्गका रूप ई लगानेसे बनता है।

२। इकारान्ताः—(अ) कृति, मति, तति, बुद्धि, नीति इत्यादि।

(ब) रजनि—नी, रात्रि—त्री, अवनि-नी, कोटि—टी, भूमि—मी, श्रेणि—णी।

(अ) ति में अन्त हो होनेवाले कृति, मति, तति, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग है।

(ब) अन्य कृत् इकारान्त को इ तथा ई दोनो लगते है। पद्धति के अन्त में ति रहने पर भी पद्धति—ती दो रूप होते है।

पति का पत्नी, समान पतिर्यस्या सा सपत्नी।

३। उकारान्ता —पटु—पटु वा पट्वी, लघु—लघु वा लघ्वी, पाण्डु (पीला) का केवल पाण्डु, और पङ्गु (लगडा) का पङ्गु वा ङ्गी होता है।

उकारान्त विशेषणके स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे ई लगाकर रूप बनते हैं।

बाधक यथा सा वामोरु, रम्भोरु (रम्भा -स्त्री, केलेका पेड़), भोरु (करभ—कलाइसे कनिष्ठिका तकका हाथका पिछला भाग, था हाथीकी सूड़।

बहु० व्रा अन्त मे ऊरु के स्त्रीलिङ्ग में ऊरु होता है।

४। ऋकारान्ता नकारान्ताश्च—कर्तृ-कर्त्री, द्रष्टृ द्रष्ट्री, दण्डिन्-ण्डी, राजन्—राज्ञी।

ऋकारान्त तथा नकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके रूप ई लगानेसे ते हैं।

बाधक—

(अ) पञ्चन्, सप्तन् इत्यादि नकारान्त संख्यावाचक तथा तिसृ और तसृ (त्रि और चतुर् के आदेश)।

(ब) स्वसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ।

(क) मन् में अन्त होनेवाले शब्द—दामन्, सीमन्।

(अ) मतुप् (मत्)—बुद्धिमत्-बुद्धिमती, भगवत्-भगवती।

(ब) क्तवत् (वत्—कर्तरि भूत कृदन्त प्रत्यय)—कृतवत्-कृतवती।

(क) क्वसु (वस्—परोक्षभूत कृदन्त प्रत्यय)—विद्वस्—विदुषी, वरिमवस्—वरमुषी, तस्थिवस्—तस्थुषी (ई प्रत्यय भ अङ्गको लगता है)।

(ट) ईयसुन् (आपेक्षिक प्रत्यय ईयस्)—लघीयस्-लघीयसी।

(ठ) वतुप (वत्, परिमाणवाचक)—तावत् तावती, यावत्-ती,

एतावत् एतावती , इयत्-इयती , कियत्-कियती ।

(फ) शतृ (अत्-पर वर्तमान कृदन्त प्रत्यय)—गच्छन्ती, पुष्यन्ती चोरयन्ती, कारयन्ती, तुदती न्ती, याती न्ती, करिष्यती न्ती, चिकीर्षती न्ती परन्तु द्विषती, ददती, चिन्वती, रुन्धती, कुर्वती, क्रीणती । इनमें श्वा दि, चु, तथा णिजर्थकमें नु नित्य होता है, और तु और अदा आकारान्त धातु पर भविष्यत् तथा पर सन्नन्त में विकल्पसे नु होता है।

५ । उगितश्च —उन शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके रूप, जिनके अन्तमें ऐसे प्रत्यय हों जिनके उ वर्ण तथा ऋ वर्ण का लोप होता हो, ई लगाने बनते हैं । इस प्रकारके प्रत्यय ऊपर दिये हुए मतुप्, क्तवतु, इत्यादि हैं।

महती, भवती—महत् और भवत् (सर्वना) के स्त्रीलिङ्ग रूप भी ई लगाकर बनाये जाते हैं ।

तय—पञ्चतयी, द्वितयी

द्वयस—ऊरुद्वयसी ⎫ द्वयस, दघ्न, मात्र, परिमाण अर्थमें होते हैं।
दघ्न—ऊरुदघ्नी ⎬ जानुदघ्न पय —घुटने तक जल ।
मात्र—ऊरुमात्री ⎭

इक—वार्षिकी, मासिकी, प्रामाणिकी ।

दृश—तादृशी, मादृशी इत्यादि ।

६ । तय, द्वयस, मात्र, इक में अन्त होनेवाले शब्द, तथा तादृशी समान शब्दोंमें ई लगाकर स्त्रीलिङ्गके रूप बनाये जाते हैं ।

अधोलिखित पत्र कालिदासके मालविकाग्निमित्र में मिला है —

स्वस्ति । यज्ञशरणात् सेनापति पुष्पमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्र स्नेहात् परिष्वज्य अनुदर्शयति । विदितमस्तु । योऽसौ राजसूययज्ञ दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृत वसुमित्र गोप्तारमादिश्य संवत्सरोपावर्त

नीयो निरर्गलस्तुरगो विसृष्ट स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनाना प्रार्थित । तत उभयो सेनयोर्महानासीत् समर्द ।

तत परान् पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना।
प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तित

सोऽहमिदानीमंशुमतेव सगर पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानी-मकालहीन विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसेवनायागन्तव्य-मिति॥

(अनुदर्शयति—दिखाता है, अधोलिखित प्रकारसे जनाता है। विज्ञापयति छोटा बडेको, वा बराबरीवाला बराबरको विनयसे लिखता है। इसका अर्थ 'प्रार्थना करना', 'सादर निवेदन करना' है। आज्ञापयति बडा छोटेको लिखता है। अनुदर्शयति—निवेदयति। राजसूय नामक एक यज्ञ है, जो राज्याभिषेकके समयपर सार्वभौम राजासे किया जाता है। दीक्षित = जिसको यज्ञकी दीक्षा हुई। सवत्स०—जो एक वर्ष बाद लौटाया जानेको है। निरर्गल —निर्गता अर्गला यस्मात् स, स्वतन्त्र। रोधस —न तट। अनीक—न सेना, अश्वानीक न घोड़ोंकी सेना। प्रार्थित —रोका गया, आक्रान्त। वाजिराज —अश्वोंमें उत्तम। अकालहीनम्—कालक्षेप न करके।

श्री।

स्वस्ति। श्रीमद्गुरुचरणकमलनिरन्तरपरिचरणप्राप्तनिखिलपुरुषार्थेषु राजप्रियेषु चिराजितान् राजमान्यान् देवदत्तशर्मण आशीर्भिरभिनन्द्य (अथवा अमुकशर्मणो नमस्कारततीं कृत्वा) विज्ञापनमिद यद्भवदभिलषित पुस्तक समुपलभ्य प्रेषयामि। रोह सदत्र सर्वथा क्षेमेति विज्ञापयति

सवत् १९७३ माघ कृष्णत्रयोदश्याम्। यज्ञदत्तशर्मा॥

श्री ।

सूर्यपुरम्, २१-१ १० ।

श्रीमन् प्रियसुहृत्तम,

गतमासस्य पञ्चविंशतितमेऽह्नि भवल्लिखितं पत्रं प्राप्तं यथाकालं जात सुमहानानन्दसन्दोह । भवदीप्सितं पुस्तकं सम्पादयितुमितस्ततः कृता समीहा नाद्यापि फलं दर्शयतीति भृशं विषीदामि तद् भूयो [illegible]ऽन्वे निवेदयिष्यामि च तद्वार्तां यदि तल्लभेय। शमस्तु। तत्रभवतो जिज्ञासे पौन पुनिकाङ्क्षवर्लं पादाशासे च मुहुर्मद्देशानात् ।

भवदीय

नारायणशास्त्री ॥

संस्कृतमें पत्र लिखनेका ढंग समझनेके लिये ये दो आदर्शपत्र बस हैं

एवमुपाख्यायते—सत्यकामो जाबालो मृतपितृको जाबालां स्वमातर मुवाच आचार्यकुले ब्रह्मचर्यं वस्तुमिच्छामि किं गोत्रं ममेति । सोवा बहुह चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे नाहमेतद्वेद यद्गोत्रस्त्वमसि सत्यकामो नाम त्वमसि, जाबाला तु नामाहमस्मि । अत सत्यकाम जाबाल इत्येव त्वयाऽऽचार्यपृष्टेन वक्तव्यमिति । स गौतमं प्रत्येत्य ब्रह्म चर्यं भगवति वत्स्यामीति भगवन्तमुक्त्वा गौतमेन किंगोत्रस्त्वमिति पृ मात्रा यथोक्तं तथैव सर्वमुक्तवान् । तदनन्तरं गौतमस्य वचनं—नैत ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्या इति तमुपनीय कृशानां गवां चतुःशतसंख्यानां रक्षणाय नियोजयामास स ता आदाय यावत् सहस्रसंख्या न भविष्यन्ति तावन्न निवर्त्त इति प्र च्छायाऽरण्यं तृणजलसमृद्धं प्रापयामास । यदा ता सहस्रं सम्पन्ना तमाचार्यकुलं प्रापयितुमृषभ उवाच—प्राप्ताः सोम्य सहस्रं स्म इति प्रा

न आचार्यकुलम्। इत्युक्त्वा स ऋषभस्तस्मै सत्यकामाय षोडशकलस्य चतुष्पदो ब्रह्मण एकं पादमुक्तवान्। ततोऽवशिष्टांस्त्रीन् पादानग्निहंसमद्गू ऊचु। तथाभूत आचार्यकुलं प्राप्तमाचार्य उवाच—सत्यकाम ब्रह्मविदिव भासि, कस्त्वामनुशशास। अन्ये मनुष्येभ्य इति सत्यकाम उवाच। परन्तु न तावता मम सन्तोषः। यत आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधुतमत्वं प्रापदिति भगवत्सदृशेभ्यः श्रुतमस्ति। अतस्त्वत्त एव श्रोतुमिच्छामीति। तमाचार्यस्तृषभादिभिर्यदुक्तं ब्रह्म तदेव पुनरप्युक्तवानिति।

भरतखण्डमण्डयितो रघुपतिर्युधिष्ठिरयोगेन दर्शनीयश्चन्द्रोऽभवृन्दमिव विमानमध्यास्त।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः॥

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्॥

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः।
किंजातमधुना मित्र यूयं यूयं वयं वयम्॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥

न धनं न च राज्यसम्पदं न हि विद्यामिदमेकमर्थये।
मयि धेहि मनागपि प्रभो करुणाभङ्गितरङ्गिता दृशम्॥

मुनिरसग्रहेन्दुमिते विक्रमसंवत्सरे (सप्तग्रधिकैकोनविंशतिशततम इति यावत्। अङ्कानां वामतो गते) पुस्तकस्यास्य प्रथमाऽऽवृत्तिर्विरचिता।

अभी सेनापति अपनी उत्साहवर्धक वाणी समाप्त भी न करने पाया था (अनवसितवचन एव सेनापतौ), कि सिपाहियोंने कमर कसी और लड़नेके लिये तैयार हो गये।

मान लिया कि (कामम्) कर्तव्य कार्य अवश्य करना चाहिये, पर मैं यह वृत्तान्त राजासे नहीं कह सकता।

ज्यों २ तुम अपने कष्टका विचार करोगे त्यों२ तुम्हारा शोक अधिक होगा (यथा यथा—तथा तथा)।

"इन्द्रके मित्र लोग उसके शत्रुओंको जीते यह (इति का प्रयोग करो) केवल उसीका प्रभाव है" ऐसा राजाने मातलिसे कहा।

वनका आश्रय लेना अच्छा, पर अभिमानियोंकी सेवा करना अच्छा नहीं (वरम्—न तु)।

रोगके उत्पन्न होते ही (जातमात्र रोगम्) उसको दूर करनेका यत्न करना चाहिये।

रथको रोको जितनेमें (यावत्) मैं उतरता हूं।

यह आश्चर्य है कि मेरे बार २ उपदेश करनेपर भी (अनादरषष्ठी वा अनादरसप्तमीका प्रयोग करो) तुम सन्मार्गसे भटके।

संज्ञाशब्द।

अङ्क (अङ्क) पु—संख्या
अभ्र (अभ्रम्) न—मेघ
इन्दु (पु)—१ चन्द्र, २ इससे १ संख्याका बोध होता है।
उर्वी (स्त्री)—पृथ्वी
ऋषभ (ऋषभ) पु—बैल, वायुदेवता, जिसने बैलके शरीरमें प्रवेश किया था
किम्प्रभु (पु)—कुत्सितश्चासौ प्रभुश्च)—दुष्ट राजा
गति (स्त्री)—ज्ञान
गौतम (गौतम) पु—एक ऋषि
ग्रह (ग्रह) पु॰—१ ग्रह, २. इससे ९ का बोध होता है।
जाबाल (जाबाल) पु—एक मुनि
जाबाला (स्त्री)—किसी स्त्रीका नाम

दृश् (स्त्री)—दृष्टि
नूपुर (नूपुरम्) न—पायजेब
भङ्गि (स्त्री)—तरङ्ग
मुनि (पु)—१ ऋषि २. इससे ७ का बोध होता है।
मौन (मौनम्) न—चुप रहना
विश्लेष (विश्लेष) पु—वियोग
वृन्द (वृन्दम्) न—समूह
व्याघ्री (स्त्री)—शेरिन
सत्यकाम (सत्यकाम) पु—एक मुनिका नाम
हंस (हंस) पु—सूर्य

विशेषण।

अनुशिष्ट (अनु+शिष्—रु पर +त)—बचा हुआ
कृश—दुबला
चतुष्पाद् (चतुर्+पाद पु—चौथाई हिस्सा, चत्वार पादा यस्य स चतुष्पाद्)—चार चरणका (पाद चतुर्थांश, चार दिशाओंसे ब्रह्मका १ पाद और ४ कलायें होती हैं)
तरङ्गित (स्त्री ०ता)—जिसमें तरङ्ग बने हुए हैं
प्रमृ—चलना
तारक—रक्षक
ब्रह्मविद्—ब्रह्म या परमात्माको जाननेवाला
वित—(मा—जु आ+त)—नपा हुआ
षोडशकल—जिसके १६ भाग हैं (४ दिशायें, पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिव्, समुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, तथा मन, ये ब्रह्मकी १६ कलायें हैं।)
समद्गु (मद्गु पु एक जलचर पक्षी, यहां इसका अर्थ प्राण है)—प्राणसहित
समृद्ध (सम्+ऋध्—दि, स्वा पर +त)—पूर्ण
सम्पन्न (स+पद—दि आ+त)—हुआ

धातु।

अनु+शास् (अनुशास्ति, अ पर)—सिखाना
अर्थ् (अर्थयति-ते-चु उभ)—मांगना
उप+आ+ख्या (उपाख्याति, अ.

स सुहृद् व्यसने यः स्यादन्यजात्युद्भवोऽपि सन्।
वृद्धौ सर्वोऽपि मित्रं स्यात् सर्वेषामेव देहिनाम् ॥
स सुहृद् व्यसने यः स्यात् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्।
स भृत्यो यो विधेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः ।

तत् पश्य मे बुद्धिप्रभावम्। परं ममापि सुहृद्भूता वीणारवा नाम मक्षिकास्ति। तत्तामाहूयागच्छामि येन स दुरात्मा दुष्टगजो वध्यते। अथासौ चटकया सह मक्षिकामासाद्य प्रोवाच। भद्रे ममेष्टेय चटका केनचिद् दुष्टगजेन पराभूताण्डस्फोटनेन। ततस्तस्य वधोपायमनुतिष्ठतो मे साहाय्यं कर्तुमर्हसि। मक्षिकाप्याह। भद्रे किमुच्यतेऽत्र विषये। उक्तं च।

पुनः प्रत्युपकाराय मित्राणां क्रियते प्रियम्।
यत् पुनर्मित्रमित्रस्य कार्यं मित्रैर्न किं कृतम् ॥

सत्यमेतत्। परं ममापि भेको मेघनादो नाम मित्रं तिष्ठति। तमप्याहूय यथोचितं कुर्मः। उक्तं च।

हितैः साधुसमाचारैः शास्त्रज्ञैर्मतिशालिभिः।
कथंचिन्न विकल्पन्ते विद्वद्भिश्चिन्तिता नयाः ॥

अथ ते त्रयोऽपि गत्वा मेघनादस्याग्रे समस्तमपि वृत्तान्तं निवेद्य तस्थुः। अथ स प्रोवाच। कियन्मात्रोऽसौ वराको गजो महाजनस्य कुपितस्याग्रे। तन्मदीयो मन्त्रः कर्तव्यः। मक्षिके त्वं गत्वा मध्याह्नसमये तस्य मदोद्धतस्य गजस्य कर्णे वीणारवसदृशं शब्दं कुरु येन श्रवणसुखलालसो निमीलितनयनो भवति। ततश्च काष्ठकूटचञ्चवा स्फोटितनयनोऽन्धीभूतस्तृषार्तो मम गर्ततटाश्रितस्य सपरिकरस्य शब्दं श्रुत्वा जलाशयं मत्वा समभ्येति। ततो गर्तमासाद्य पतिष्यति पञ्चत्वं यास्यति चेति। एवं समवायः कर्तव्यो यथा वैरसाधनं भवति। अथ तथानुष्ठिते स मत्तगजो मक्षिकागेयसुखान्निमीलितनेत्रः काष्ठकूटहृतचक्षुर्मध्याह्नसमये भ्राम्यन् मण्डू-

कायन्यानुसारी गच्छन् महती गर्तामासाद्य पतितो मृतश्च। अतोऽहं ब्रवीमि—

चटकाकाष्ठकूटेन मक्षिकादर्दुरैस्तथा।
महाजनविरोधेन कुञ्जरः प्रलयं गतः॥

२। वामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता।

कदाचिद्वामदेवशिष्यः सोमदेवशर्मा नाम कञ्चिदेकं बालकं राज्ञः पुरो निक्षिप्याभाषत। देव रामतीर्थे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मया काननावनौ वनितया कयापि धार्यमाणमेनमुज्ज्वलाकारं कुमारं विलोक्य सादरमभाणि। स्थविरे का त्वम्। एतस्मिन्नटवीमध्ये बालकमुद्वहन्ती किमर्थमायासेन भ्रमसीति। वृद्धयाप्यभाणि। मुनिवर कालयवननाम्नि द्वीपे कालगुप्तो नाम धनाढ्यो वैश्यवरः कश्चिदस्ति। तन्नन्दिनी नयनानन्दकारिणी सुवृत्ता नामैतस्माद् द्वीपादागतो मगधनाथमन्त्रिसम्भवो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणालयो व्यवहार्युपयेमे। कालक्रमेण नताङ्गी गर्भिणी जाता। ततः सोदरविलोकनकुतूहलेन रत्नोद्भवस्तया सह प्रवहणमारुह्य पुष्पपुरमभिप्रतस्थे। कल्लोलमालिकाभिहतं पोतं समुद्राम्भस्यमज्जत्। तां ललनां धात्रीभावेन कल्पिताहं कराभ्यामुद्वहन्ती फलकमेकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम्। सुहृज्जनपरिवृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनोपायेन तीरमगमद्वा न जानामि। क्लेशस्य परां काष्ठामधिगता सुवृत्तास्मिन्नटवीमध्येऽद्य सुतमसूत। प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छायशीतले तरुतले निवसति। विजने वने स्थातुमशक्ततया जनपदगामिनं मार्गमन्वेष्टुमुद्युक्तया मया विवशायास्तस्याः समीपे बालकं निक्षिप्य गन्तुमनुचितमिति कुमारोऽप्यानायीति। तस्मिन्नेव क्षणे वन्यो वारणः कश्चिददृश्यत। तं विलोक्य भीता सा बालकं निपात्य प्राद्रवत्। अहं समीपलतागुल्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽतिष्ठम्। निपतितं बालकमाददति गजपतौ कण्ठीरवो भीमरवो महाग्रहेण न्यपतत्। भयाकुलेन

दन्तावलेन झटिति वियति समुत्पात्यमानो बालको न्यपतत्। स चोन्नततरुशाखासमासीनेन वानरेण केनचित् पक्वफलबुद्धया परिगृह्य फलेतरतया विततस्कन्धमूले निक्षिप्तोऽभूत्। सोऽपि मर्कटः क्वचिदगात्। केसरिणा करिण निहत्य क्वचिदगामि। लतागृहान्निर्गतोऽहमपि बालक शनैरवनीरुहादवतार्य वनान्तरे वनितामन्विष्याविलोक्यैन मानीय गुरवे निवेद्य तन्निर्देशेन भवन्निकटमानीतवानस्मीति ।

३ । सिंहशशकयोः ।

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंह. प्रतिवसति स्म। अथासौ वीर्यातिरेकान्नित्यमेवानेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयन्नोपरराम। अथान्येद्युस्तद्वनजा. सर्वे सारङ्गवराहमहिषशशकादयो मिलित्वा तमभ्युपेत्य प्रोचु.। स्वामिन् किमनेन सकलमृगवधेन नित्यमेव यतस्तवैकेनापि मृगेण तृप्तिर्भवति। तत् क्रियतामस्माभि. सह समयधर्म। अद्य प्रभृति तवात्रोपविष्टस्य जातिक्रमेण प्रतिदिनमेको मृगो भक्षणार्थं समेष्यति। एव कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेश विनापि भविष्यत्यस्माक पुन' सर्वोच्छेदन न स्यात्। तदेष राजधर्मोऽनुष्ठीयताम्। उक्त च।

> शनै शनैश्च यो राज्यमुपभुङ्क्ते यथाबलम्।
> रसायनमिव प्राज्ञ स पुष्टि परमा व्रजेत्॥

अथ तेषा तद्वचनमाकर्ण्य भासुरक आह। अहो सत्यमभिहित भवद्भि। पर यदि ममोपविष्टस्यात्र नित्यमेव नैक श्वापद. समागमिष्यति तन्नून सर्वानपि भक्षयिष्यामि। अथ ते तथैव प्रतिज्ञाय निर्वृतिभाजस्तत्रैव वने निर्भया पर्यटन्ति। एकश्च प्रतिदिन तेषां मध्यात् तस्य भोजनार्थं मध्याह्नसमये क्रमेणोपतिष्ठते। अथ कदाचिज्जातिक्रमाच्छशकस्यावसर समायात। स समस्तमृगै प्रेरितोऽनिच्छन्नपि मन्द मन्द गत्वा तस्य वधोपाय चिन्तयन् वेलातिक्रम कृत्वा व्याकुलितहृदयो यावद्गच्छति तावन्मार्गे गच्छता

कूपः संदृष्टः। यावत् कूपोपरि याति तावत् कूपमध्ये आत्मनः प्रति-
बिम्बं ददर्श। दृष्ट्वा च तेन हृदये चिन्तितं यद्भव्य उपायोऽस्ति।
अहं भासुरकं प्रकोप्य स्वबुद्ध्यास्मिन् कूपे पातयिष्यामि। अथासौ
दिनशेषे भासुरकसमीपं प्राप्तः। सिंहोऽपि वेलातिक्रमेण क्षुत्क्षाम-
कण्ठः कोपाविष्टः सृक्कणी परिलेलिह्यमानो व्यचिन्तयत्। अहो
प्रातराहाराय निःसत्त्वं वनं मया कर्तव्यम्। एवं चिन्तयतस्तस्य
शशको मन्दं मन्दं गत्वा प्रणम्य तस्याग्रे स्थितः। अथ तं प्रज्वलितात्मा
भासुरको भर्त्सयन्नाह। रे शशकाधम एकतस्तावत् त्वं लघु
प्राप्तोऽपरतो वेलातिक्रमेण। तदस्मादपराधात् त्वां निपात्य प्रातः
सकलान्यपि मृगकुलान्युच्छेदयिष्यामि। अथ शशकः सविनयं प्रोवाच।
स्वामिन् नापराधो मम न च सत्त्वानां तच्छ्रूयतां कारणम्।
सिंह आह। सत्वरं निवेदय यावन्मम दंष्ट्रान्तर्गतो न भविष्यसीति।
शशक आह। समस्तमृगैरद्य जातिक्रमेण मम लघुतरस्य प्रस्तावं
विज्ञाय पञ्चभिः शशकैः सहाहं प्रेषितः। ततश्चाहमागच्छन्नन्तराले
महता केनचिदपरेण सिंहेन विवरान्निर्गत्याभिहितः। रे क्व प्रस्थिता
यूयम्। अभीष्टदेवतां स्मरत। ततो मयाभिहितम्। वयं स्वामिनो
भासुरकसिंहस्य सकाशं आहारार्थं समयधर्मेण गच्छामः। ततस्ते-
नाभिहितम्। यद्येवं तर्हि मदीयमेतद्वनं मया सह समयधर्मेण
समस्तैरपि श्वापदैर्वर्तितव्यम्। चौररूपी स भासुरकः। अथ यदि
सोऽत्र राजा ततो विश्वासस्थाने चतुरः शशकानत्र धृत्वा तमाहूय
द्रुततरमागच्छ येन यः कश्चिदावयोर्मध्यात् पराक्रमेण राजा भविष्यति
स सर्वानेतान् भक्षयिष्यतीति। ततोऽहं तेनादिष्टः स्वामिसकाशमभ्या-
गतः। एतद्वेलाव्यतिक्रमकारणम्। तदत्र स्वामी प्रमाणम्। तच्छ्रुत्वा
भासुरक आह। यद्येवं तत् सत्वरं दर्शय मे तं चौरसिंहं येनाहं
मृगकोपं तस्योपरि क्षिप्त्वा स्वस्थो भवामि। शशक आह। यद्येवं
तर्ह्यागच्छतु स्वामी। एवमुक्त्वाग्रे व्यवस्थितः। ततश्च तेनागच्छता

वयं परमाद्भुतामिष्टिं त्वत्कृते विधास्यामो येन गर्भधारणज खेद न समवाप्स्यसि। ततो वर्षशते पूर्णे तस्य राज्ञो वाम पार्श्व विनिर्भिद्य महातेजा. सुतो निष्क्राम न च युवनाश्व नरपति मृत्युमाविशत्। त पुत्र दिदृक्षु शक्रस्तत्रोपागमत्त देवा अपृच्छन् कि धास्यत्यय पुत्र इति। तत. शक्रस्तस्यास्ये प्रदेशिनी समभिसदधे मामय धास्यतीत्युक्तवाञ्च।

मामय धास्यतीत्येव भाषिते चैव वज्रिणा।
मान्धातेति च नामास्य चक्रु सेन्द्रा दिवौकस॥
सोऽय मान्धातातितेजस्वी नृपोऽप्रतिहतचक्र राज्य बुभुजे॥

६। कुमारं चन्द्रापीड प्रति महाराजाज्ञा॥

कुमार महाराज समाज्ञापयति। पूर्णा नो मनोरथा। अधीतानि शास्त्राणि। शिक्षिता सकला कला.। गत सर्वास्त्रायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्। अनुमतोऽसि विनिर्गमाय विद्यागृहात् सर्वाचार्यै। उपगृहीतशिक्ष गन्धगजकुमारकमिव वारिबन्धाद्विनिर्गतमवगतसकलकलाकलाप पौर्णमासीशशिनमिव नवोदित पश्यतु त्वा जन'। व्रजन्तु सफलतामतिचिरदर्शनोत्कण्ठितानि लोकलोचनानि। दर्शन प्रति ते समुत्सुकान्यतीव सर्वाण्यन्त पुराणि। अयमिव भवतो दशम सवत्सरो विद्यागृहमधिवसत। प्रविष्टोऽसि षष्ठमनुभवन् वर्षम्। एव सपिण्डितेनामुना षोडशेन प्रवर्धसे। तदद्यप्रभृति निर्गत्य दर्शनोत्सुकाभ्यो दत्त्वा दर्शनमखिलमातृभ्योऽभिवाद्य च गुरूनपगतनियन्त्रणो यथासुखमनुभव राज्यसुखानि नवयौवनललितानि च। सम्मानय राजलोकम्। पूजय द्विजातीन्। परिपालय प्रजा। आनन्दय बन्धुवर्गम्। अयं च त्रिभुवनैकरत्नमनिलगरुडसमजव इन्द्रायुधनामा तुरङ्गम प्रेषितो महाराजेन द्वारि तिष्ठति। एष खलु देवस्य पारसीकाधिपतिना त्रिभुवनाश्चर्यमिति कृत्वा "जलधितलादुत्थितम-

योनिजमिदमम्बरतलमासादितं मया महाराजाधिरोहणयोग्यम्" इति सन्दिश्य प्रहितं । दृष्ट्वा च निवेदितं लक्षणविद्भिः । "देव यान्युच्चैःश्रवसः श्रूयन्ते लक्षणानि तैरयमुपेतः । नैवंविधो भूतो भावी वा तुरङ्गम" इति। तदयमनुगृह्यतामधिरोहणेन। इदं च मूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलप्रसूतानां विनयोपपन्नानां शूराणामभिरूपाणां कलावतां च कुलक्रमागतानां राजपुत्राणां सहस्रं परिचारार्थमनुप्रेषितं तुरङ्गमारूढं द्वारि प्रणामलालसं प्रतिपालयति। इत्यभिधाय विरतवचसि बलाहके चन्द्रापीडः पितुराज्ञां शिरसि कृत्वा नवजलधरध्वानगभीरया गिरा "प्रवेश्यतामिन्द्रायुध" इति निर्जिगमिषुरादिदेश ॥

७ । चन्द्रापीडं प्रति शुकनासोपदेशः ।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं चन्द्रापीडं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छञ्छुकनासोऽमात्यः सविस्तरमुवाच। तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचबध्यो रागमलावलेपः। घोरा च राज्यसुखनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे। गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवायः। यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते कालः उपदेशस्य। गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। आलोकयतु तावत् कल्याणा-

भेनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि लक्ष्मी क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागमिन्दुशकलादेकान्तवक्रतामुच्चैःश्रवसश्चलतां कालकूटान्मोहनशक्तिं मदिराया मदं कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यमित्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता। इयमनार्या लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। परिपालितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। तदस्मिन् महामोहकारिणि यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्न निन्द्यसे साधुभिर्न धिक्क्रियसे गुरुभिर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्न शोच्यसे विद्वद्भिः। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च समारोपितसंस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति। इत्येतावदभिधायोपशशाम॥

८। ब्रह्मज्ञानविषयकः गुरुशिष्यसंवादः।

श्रुतिस्मृतिभिर्गृहीतपरमात्मलक्षणः शिष्यः संसारसागरादुत्तितीर्षुः पृच्छेत्—तत्त्वमसि सोम्येति।

स यदि ब्रूयात्—ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यास गृहस्थो वा । इदानीमस्मि परमहंसपरिव्राट् संसारसागराज्जन्ममृत्युमहाग्राहादुत्तितीर्षुरिति ।

आचार्यो ब्रूयात्—इहैव तव सोम्य मृतस्य शरीरं वयोभिरद्यते मृद्भावं वापद्यते । तत्र कथं संसारादुद्धर्तुमिच्छसीति । न हि नद्या अवरे कूले भस्मीभूते नद्याः पारं तरिष्यसीति ।

स यदि ब्रूयात्—अन्योऽहं शरीरात् । शरीरं तु जायते म्रियते वयोभिरद्यते मृद्भावमापद्यते शस्त्राग्न्यादिभिश्च विनाश्यते व्याध्यादिभिश्च प्रयुज्यते । तस्मिन्नहं स्वकृतधर्माधर्मवशात् पक्षी नीडमिव प्रविष्टः पुनः पुनः शरीरविनाशे धर्माधर्मवशात् शरीरान्तरं यास्यामि पूर्वनीडविनाशे पक्षीव नीडान्तरम् । तस्मान्नित्य एवाहं शरीरादन्य । शरीराण्यागच्छन्त्यपगच्छन्ति च वासांसीव पुरुषस्येति ।

आचार्यो ब्रूयात्—साध्ववादी । सम्यक् पश्यसि कथं मृषावादीर्ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यास गृहस्थो वा इदानीमस्मि परमहंसपरिव्राडिति ।

स यदि ब्रूयात्—भगवन् कथमहं मृषावादिष्मिति ।

तं प्रति ब्रूयादाचार्य —यतस्त्वं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं शरीरं जात्यन्वयवर्जितस्यात्मनः प्रत्यभ्यज्ञासीर्ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वय इत्यादिना वाक्येनेति ।

स यदि पृच्छेत्—कथं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं शरीरं कथं वाहं जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इति ।

आचार्यो ब्रूयात्—शृणु सोम्य यथेदं शरीरं त्वत्तो भिन्नं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं त्वं च जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इत्युक्त्वा तं स्मारयेत् परमात्मलक्षणं श्रुतिस्मृत्युक्तमिति ॥

आह्लादकत्वं च निशाधिनाथा-
दादाय राज्ञः क्रियते शरीरम्॥ २॥
सर्वदेवमयो राजा मनुना सम्प्रकीर्तितः।
तस्मात्तं देववत्पश्येन्न व्यलीकेन कर्हिचित्॥ ३॥
सर्वदेवमयस्यापि विशेषो नृपतेरयम्।
शुभाशुभफलं सद्यो नृपाद्देवाद्भवान्तरे॥ ४॥
अपि स्वल्पममता यः पुरो वदति भूभुजाम्।
देवानां च विनश्येत स द्रुतं सुमहानपि॥ ५॥
अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः॥ ६॥
बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥ ७॥
एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम्।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयम्॥ ८॥

११। अराजकं राष्ट्रम्।

(रामायण—अयोध्याकाण्ड—सर्ग ६७)

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम्।
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्॥ १॥
नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे॥ २॥
अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके।
इदमत्याहितं चान्यत् कुतः सत्यमराजके॥ ३॥
नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः।
शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः॥ ४॥
नाराजके जनपदे बद्धघण्टा विषाणिनः।
अटन्ति राजमार्गेषु कुञ्जराः षष्टिहायनाः॥ ५॥

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिन ।
गच्छन्ति चेममध्वान बहुपण्यसमाचिता ॥ ६ ॥
यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृण वनम्।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥ ७ ॥
नाराजके जनपदे स्वक भवति कस्यचित्।
मत्स्या इव जना नित्य भक्षयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥
राजा सत्य च धर्मश्च राजा कुलवता कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ९ ॥
यमो वैश्रवण शक्रो वरुणश्च महाबल ।
विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता तत ॥ १० ॥
अहो तम इवेद स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन।
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुनी ॥ ११ ॥

१२। पञ्चवटी।

(रामायण—अरण्यकाण्ड—सर्ग १५)

तत पञ्चवटी गत्वा नानाव्यालमृगायुताम्।
उवाच लक्ष्मण रामो भ्रातर दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
आगता स्म यथोद्दिष्ट य देश मुनिरब्रवीत्।
अय पञ्चवटीदेश सौम्य पुष्पितकानन ॥ २ ॥
सर्वतश्चार्यता दृष्टि कानने निपुणो ह्यसि।
आश्रम कतरस्मिन्नो देशे भवति समत ॥ ३ ॥
रमते यत्र वैदेही त्वमह चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यता देश सनिकृष्टजलाशय ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मण संयताञ्जलि ।
सीतासमक्ष काकुत्स्थमिद वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥ ६ ॥
सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥ ७ ॥
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ८ ॥
अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥ १० ॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ ११ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता।
नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥ १२ ॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १३ ॥
इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम्।
इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥ १४ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥ १५ ॥

१३। श्रीनिवासस्थानानि।

(महाभारत—अनुशासनपर्व—२२ अध्याय)

युधिष्ठिर उवाच।

कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतर्षभ।
श्रीः पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।
रुक्मिणी देवकीपुत्रसन्निधौ पर्यपृच्छत ॥ २ ॥

नारायणस्याङ्कगतां ज्वलन्तीं दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानवक्त्राम् ।
कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥

कानीह भूतान्युपसेवसे त्वं सन्तिष्ठसे कानि च सेवसे त्वम् ।
तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकन्ये ॥ ४ ॥

एवं तदा श्रीरभिभाष्यमाणा देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य ।
उवाच वाक्यं मधुराभिधानं मनोहरं चन्द्रमुखी प्रसन्ना ॥ ५ ॥

श्रीरुवाच ।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६ ॥

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवृत्ते न चाविनीते न गुरुष्वसूयके ॥ ७ ॥

ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमाना क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु ॥ ८ ॥

स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते ।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे क्षान्तासु दान्तासु तथाबलासु ॥ ९ ॥

स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव ।
वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते ॥ १० ॥

---

१४ । दम्पतीस्नेहः ।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय १४४)

भीष्म उवाच ।

अथ वृक्षस्य शाखायां विहङ्गः सुसुहृज्जनः ।
दीर्घकालोषितो राजस्तत्र चित्रतनूरुहः ॥ १ ॥

तस्य काव्यगता भार्या चरितुं नाभ्यवर्तत ।
प्राप्ता च रजनी दृष्ट्वा स पश्चात् पर्यतप्यत ॥ २ ॥
वात्सर्यं महच्चासीत्र चागच्छति मे प्रिया ।
किं नु तत्कारणं येन साद्यापि न निवर्तते ॥ ३ ॥
अपि स्वस्ति भवेत्तस्याः प्रियाया मम कानने ।
तया विरहितं चेदं शून्यमद्य गृहं मम ॥ ४ ॥
पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः ।
भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत् ॥ ५ ॥
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् ॥ ६ ॥
यदि सा रक्तनेत्रान्ता चित्राङ्गी मधुरस्वरा ।
अद्य नाभ्येति मे कान्ता न कार्यं जीवितेन मे ॥ ७ ॥
न भुङ्क्ते मय्यभुक्ते या नास्नाते स्नाति सुव्रता ।
नातिष्ठत्युपतिष्ठेत शेते च शयिते मयि ॥ ८ ॥
हृष्टे भवति सा हृष्टा दुःखिते मयि दुःखिता ।
प्रोषिते दीनवदना क्रुद्धे च प्रियवादिनी ॥ ९ ॥
पतिधर्मव्रता साध्वी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
यस्य स्यात्तादृशी भार्या धन्यः स पुरुषो भुवि ॥ १० ॥
सा हि श्रान्तं क्षुधार्तं च जानीते सा तपस्विनी ।
अनुरक्ता स्थिरा चैव भक्ता स्निग्धा यशस्विनी ॥ ११ ॥
वृक्षमूलेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद् गृहम् ।
प्रासादोऽपि तया हीनः कान्तार इति निश्चितम् ॥ १२ ॥
धर्मार्थकामकालेषु भार्या पुंसः सहायिनी ।
विदेशगमने चास्य सैव विश्वासकारिका ॥ १३ ॥
भार्या हि परमो ह्यर्थः पुरुषस्येह पठ्यते ।
असहायस्य लोकेऽस्मिंल्लोकयात्रासहायिनी ॥ १४ ॥

तथा रोगाभिभूतस्य नित्य कृच्छ्रगतस्य च ।
नास्ति भार्यासम मित्र नरस्यार्तस्य भेषजम् ॥ १५ ॥
नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गति ।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसग्रहे ॥ १६ ॥
यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्य यथारण्य तथा गृहम् ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच ।

एव विलपतस्तस्य द्विजसगार्तस्य वै सदा ।
गृहीता शकुनिघ्नेन भार्या शुश्राव भारतीम् ॥ १८ ॥

कपोत्युवाच ।

अहोऽतीव सुभाग्याह यस्या मे दयित पति ।
असतो वा सतो वापि गुणानेव प्रभाषते ॥१९॥
सा हि स्त्रीत्वमगन्तव्या यस्या भर्ता तु तुष्यति ।
तुष्टे भर्तरि नारीणा तुष्टा स्यु सर्वदेवता ।
अग्निसाक्षिकमप्येतद् भर्ता हि दैवत परम् ॥ २० ॥
दावाग्निनेव निर्दग्धा सपुष्पस्तवका लता ।
भस्मीभवति सा नारी यस्या भर्ता न तुष्यति ॥ २१ ॥

---

१५ । सयमः ।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय २२१)

भीष्म उवाच ।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभि ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्म योऽनूचान स नो महान् ॥ १ ॥
तपोमूलमिद सर्व यन्मा पृच्छसि पाण्डव ।
तदिन्द्रियाणि सयम्य तपो भवति नान्यथा ॥ २ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव सिद्धिमाप्नोति मानवः ॥३॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
योगस्य कलया तात न तुल्यं विद्यते फलम् ॥४॥

१६। आपदि शोकत्यागः।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय २२३)

संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद्भ्रश्यते श्रियः।
संतापाद्भ्रश्यते चायुर्धर्मश्चैव सुरेश्वर ॥ १ ॥
विनीय खलु तद् दुःखमागतं वै मनस्सुखम्।
ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं संविजानता ॥ २ ॥
यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथैवास्य प्रसिध्यन्ति सर्वार्था नात्र संशयः ॥ ३ ॥
ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धांश्च वने मुनींश्च।
कान्नापदो नोपनमन्ति लोके परावरज्ञास्तु न संभ्रमन्ति ॥४॥
न पण्डितः क्रुध्यति नाभिपद्यते न चापि संसीदति न प्रहृष्यति।
न चार्थकृच्छ्रव्यसनेषु शोचते स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥५॥
यमर्थसिद्धिः परमा न हर्षयेत् तथैव काले व्यसनं न मोहयेत्।
सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं निषेवते यः स धुरंधरो नरः ॥६॥
यां यामवस्थां पुरुषोऽधिगच्छेत् तस्यां रमेतापरितप्यमानः।
एवं प्रवृद्धं प्रणुदन्मनोजं संतापनीयं सकलं शरीरात् ॥ ७ ॥
लब्धव्यान्येव लभते गन्तव्यान्येव गच्छति।
प्राप्तव्यान्येव चाप्नोति दुःखानि च सुखानि च ॥ ८ ॥
एतद्विदित्वा कार्त्स्न्येन यो न मुह्यति मानवः।
कुशली सर्वदुःखेषु स वै सर्वधनो नरः ॥ ९ ॥

१७। संतोषः।

(महाभारत शान्तिपर्व-अध्याय ३३८)

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ १ ॥
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ २ ॥
भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥ ३ ॥
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥ ४ ॥
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंसर्गो गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥ ५ ॥
सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः ।
स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् ॥ ६ ॥
अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ।
अतृप्ता यान्ति विध्वंसं संतोषं यान्ति पण्डिताः ॥ ७ ॥
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ ८ ॥
अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ।
तस्मात् संतोषमेवेह धनं पश्यन्ति पण्डिताः ॥ ९ ॥
निमिषमात्रमपि हि वयो गच्छन्न तिष्ठति ।
स्वशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत् ॥ १० ॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत् ॥ ११ ॥

१८। आत्मज्ञानम्—कर्त्तव्यज्ञानम्।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय ३२९)

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते किं ते पुत्रैः पुत्रक यो मरिष्यसि।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे॥ १॥

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम्॥ २॥
अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते हि बान्धवाः।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा॥ ३॥
एवमभ्याहते लोके कालेनोपनिपीडिते।
सुमहद्धैर्यमालम्ब्य धर्मं सर्वात्मना कुरु॥ ४॥
अथेमं दर्शनोपायं सम्यग्यो वेत्ति मानवः।
सम्यक् स्वधर्मं कृत्वेह परत्र सुखमश्नुते॥ ५॥

न देहभेदे मरणं विजानतां न च प्रणाशः स्वनुपालिते पथि।
धर्मं हि यो वर्धयते स पण्डितो य एव धर्माच्च्यवते स दह्यते॥ ६॥

यस्तु भोगान् परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत्।
न तेन किंचिन्न प्राप्तं तन्मे बहुमतं फलम्॥ ७॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥ ८॥
अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम॥ ९॥
न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि।
स्वकृतैस्तानि जातानि भवांश्चैव गमिष्यति॥ १०॥
इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवतामपि नश्यति॥ ११॥
संचिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः।
ततः क्लेशमवाप्नोति परत्रेह तथैव च॥ १२॥

पश्यति च्छिन्नभूतं हि जीवलोकं स्वकर्मणा ।
तत् कुरुष्व तथा पुत्र कृत्स्नं यत् समुदाहृतम् ॥ १३ ॥
तदेतत् सम्प्रदृश्यैव कर्मभूमिं प्रपश्यत ।
शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभीप्सता ॥ १४ ॥
धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते
बलेन किं येन रिपुं न बाधते ।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी ॥ १५ ॥

१६। अजविलापः।

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ १ ॥
कुसुमान्यपि गात्रसंगमात् प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः ॥ २ ॥
अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥ ३ ॥
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ४ ॥
अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥ ५ ॥
मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ॥ ६ ॥
शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ॥ ७ ॥
नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम् ।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम् ॥ ८ ॥

कलमन्यभृतासु भाषित कलहंसीषु मदालस गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षित पवनाधूतलतासु विभ्रमा ॥ ८ ॥
त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मा निहिता सत्यममी गुणास्त्वया ।
विरहे तव मे गुरुव्यथ हृदय न त्ववलम्बितु क्षमा ॥ १० ॥
धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरत गेयमृतुर्निरुत्सव ।
गतमाभरणप्रयोजन परिशून्य शयनीयमद्य मे ॥ ११ ॥
गृहिणी सचिव सखी मिथ. प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद किं न मे हृतम् ॥ १२ ॥

---

२० । प्रकीर्णानि सुभाषितपद्यानि ।

येषा न विद्या न तपो न दान
ज्ञानं न शील न गुणो न धर्म. ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १ ॥
यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन ।
स पण्डित. स श्रुतिमान् गुणज्ञ ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ २ ॥
धनैर्निष्कुलीना कुलीना भवन्ति
धनैरापद मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्य. परो बान्धवो नास्ति लोके
धनान्यर्जयध्व धनान्यर्जयध्वम् ॥ ३ ॥
वर वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालय पत्रफलाम्बुभोजनम् ।
तृणानि शय्या वसनं च वल्कल
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ ४ ॥

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
    सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
    अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ ५ ॥
निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
    लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
    न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ६ ॥
दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या
    चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य
    वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एव ॥ ७ ॥
तापं हन्ति सुखं सूते जीवयत्युज्ज्वलं यशः ।
अमृतस्य प्रकारोऽयं दुर्लभः साधुसंगमः ॥ ८ ॥
रसायनमयी शीता परमानन्ददायिनी ।
नानन्दयति कं नाम साधुसङ्गतिचन्द्रिका ॥ ९ ॥
यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगङ्गया ।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ १० ॥
  पात्रं पवित्रयति नैव गुणान् क्षिणोति
    स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते ।
  दोषावसानरुचिरश्चलता न धत्ते
    सत्संगमः सुकृतसद्मनि कोऽपि दीपः ॥ ११ ॥
उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १२ ॥
  प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
    शिरसि निहितभारा नारिकेला नराणाम् ।

उदकममृतकल्पं ते ददुर्जीवितान्तं
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ १३ ॥
उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
विकसति यदि पद्मं पर्वतानां शिखाग्रे ।
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्नि-
र्न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित् ॥ १'
परीक्षका यत्र न सन्ति देशे
नार्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि ।
न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम् ॥ १५ ॥

अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति ।
मलये भिल्लपुरन्ध्री चन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुरुते ॥ १६ ॥
गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति पण्डिताः ॥ १७ ॥
विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना ।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता ॥ १८ ॥
गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः ॥ १९ ॥
नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥ २० ॥
काव्यान्यपि यदीमानि[1] व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत् ।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥ २१ ॥
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।

१। अर्थात् ललितसौन्दर्ययुक्ता कविता।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥ २२ ॥
केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजा ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ २३ ॥
साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमान—
स्तद् भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ २४ ॥
इतरतापशतानि यथेच्छया
वितर तानि सहे चतुरानन ।
अरसिकेषु रसाभिनिवेदनं
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥ २५ ॥
अन्या सखे बधिरलोकनिवासभूमौ
किं कूजितेन खलु कोकिल कोमलेन ।
एते हि दैवहतकास्तदभिन्नवर्णं
त्वां काकमेव कलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥ २६ ॥
सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मी—
रुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः ।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो
मम तु मतिर्न मनागपैतु धर्मात् ॥ २७ ॥
भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ २८ ॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥ २९॥
पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ ३०॥
तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनान्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां लक्षणम्॥ ३१
लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत् तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं निजैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥३२॥
वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले—
ष्वेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥ ३३॥
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकर—
मसन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥ ३४॥
प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।

अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसारा परकथा.
सतां केनोद्दिष्टं विषमममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ३५ ॥

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव पुरुषैः कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ ३६ ॥

गात्रं सङ्कुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ ३७ ॥

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः
सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ॥ ३८ ॥

झटिति प्रविश गेहं मा बहिस्तिष्ठ कान्ते
ग्रहणसमयवेला वर्तते शीतरश्मेः।
अयि सुविमलकान्तिं प्रेक्ष्य नूनं स राहु-
र्ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ३९ ॥

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥ ४० ॥

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया ,
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ४२ ॥

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ ४३ ॥
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सव
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ४४ ॥
अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ ४५ ॥
अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ ४६ ॥
अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ ४७ ॥

विरलविरलाः स्थूलास्तारा कलाविव सज्जना
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः ।
व्यपसरति च ध्वान्तं चित्तात् सतामिव दुर्जनः
व्रजति च निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमनादिव ॥ ४८ ॥
अभूत् पिङ्गा प्राची रसपतिरिव प्राश्य कनकं
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।
क्षणात् क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न दीपा राजन्ते विनयरहितानामिव गुणाः ॥ ४९ ॥

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
    सतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
    कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥ ५०॥
दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि
    मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
    नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा सताम्॥ ५१॥
नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
    तत् कल्याणि त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
    नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥ ५२॥
श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
    वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
    हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति॥ ५३॥
घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं
    छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्डम्।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं
    न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्॥ ५४॥
घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं
    वने वासः कन्दैरशनमपि दुःस्थं वपुरिदम्।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत कराम्भोजकुहरे
    क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥ ५५॥
दूरादर्थं घटयति नवं दरतयापशब्दं
    त्यक्त्वा भूयो भवति निरतः सत्सभारञ्जनेषु।

मन्दं मन्दं रचयति पदं लोकचित्तानुवृत्त्या
कामं मन्त्री कविरिव सदा खेदभारैरमुक्तः ॥ ५६ ॥
उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह गुरुं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिरं मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशाने शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः ॥ ५७
क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्णविभवः।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु—
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ ५८ ॥
यत्र नास्ति दधिमन्थनघोषो यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि।
यत्र नास्ति गुरुगौरवपूजा तानि किं बत गृहाणि वनानि ॥५

राम.—सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृम्भते
लक्ष्मण.—चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति
राम.—वत्सैतद्विदितं कथं नु भवता

लक्ष्मण.— धत्ते कुरङ्गं यत

राम.—क्वासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥६०

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिश्वासपवनः।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥ ६१ ॥

कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम्।
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत् प्रिये किं करोमि ॥ ६२ ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ता प्रभव स्मयदूषिता ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥ ६३ ॥
एह्यागच्छ समाश्रयासनमिद कस्माच्चिराद् दृश्यसे
का वार्ता ह्यतिदुर्बलोऽसि कुशल प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।
एव ये समुपागतान् प्रणयिन प्रह्लादयन्त्यादरात्
तेषा युक्तमशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तु सदा ॥ ६४ ॥
मा गा इत्यपमङ्गल व्रज पुन स्नेहेन हीन वच.
तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरु ह्येषाप्युदासीनता ।
नो जीवामि त्वया विनेति वचन सभाव्यते वा न वा
तन्मा शिक्षय मित्र यत् समुचित वाक्य त्वयि प्रस्थिते ॥६५
मा भूत् सज्जनसङ्गो यदि सङ्गो मा पुन स्नेह ।
स्नेहो यदि मा विरहो यदि विरहो मा पुनश्च जीवितम् ॥६६॥
बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुष रोषान्मया कि कृत
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि ।
तत्कि रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥६७॥
अम्बा कुप्यति तात मूर्ध्नि विधृता गङ्गेयमुत्सृज्यता
विद्वन् षण्मुख सतत मयि रता तस्या गति का वद ।
कोपाटोपवशाद्विदिद्रवदन प्रत्युत्तर दत्तवान्
अम्भोधिर्जलधि पयोधिरुदधिर्वारानिधिर्वारिधि ॥ ६८ ॥
रत्नाद्रिर्निर्जायते मथ्यमानाङ्कुरिस्तोय खन्यमाना ददाति ।
साहसाना नास्त्यसाध्य नराणा मार्गारब्धा सर्वयत्ना फलन्ति ॥६९॥
गुणाना वा विशालाना सत्काराणा च नित्यश ।
कर्तार सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभा. ॥ ७० ॥
यस्या न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान् न च पुनर्वीजन्ति यस्या भयात् ।

वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमा
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ ७१ ॥
रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता—
मम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद्वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥७२
यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून् मृषा
नैषां गर्वगिरः शृणोषि न पुनः प्रत्याशया धावसि ।
काले बालतृणानि खादसि सुखं निद्रासि निद्रागमे
तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किं नाम तप्तं तपः ॥ ७३ ॥
नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु—
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥ ७४ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा[1] ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ७५ ॥

२१ । स्तुतिपद्यानि ।

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ १ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ २ ॥
मेघश्यामं पीतकौशेयवासं श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥ ३ ॥

---

१ अर्यमन् तथा पूषन् शब्दके प्र०-ए० व० में केवल दीर्घ होता है। पूषा पूषणौ पूषणः पूषणम् पूषणौ।

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमपि वरं दक्षिणाङ्गे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं चाङ्कुशं वामभागे
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं भजामि॥ ४॥
रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥ ५॥
असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥ ६॥
महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥ ७॥
यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै—
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥ ८॥
रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥ ९॥
इतो न किंचित् परतो न किंचिद्
यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित्॥ १०॥

उद्धृत गद्यपद्योंपर टिप्पणी।

१।—वनोद्देशे (उद्देश = स्थान)—वनभूमिमें। चटकदम्पती—(चटक—एक पक्षी + दम्पती, द्वन्द्व स०, जाया च पतिश्च जायापती जम्पती दम्पती वा)—चटक पक्षियोंका जोडा। निलय—स्थान। गच्छता कालेन—समयके बीतनेपर। घर्मार्त (घर्मेण आर्त, आर्त = आ + ऋत, ऋ का भूत कृदन्त आ + ऋ = आर् ६७ पृष्ठमें टिप्पणी देखो)—गर्मीसे पीडित। समोत्कर्षात् (उत्कर्ष = आधिक्यम्, अधिकता)—गर्वकी अधिकतासे। पुष्करम् सूंड। विशीर्णानि (वि + शॄ—क्र्यादि-पर का भूतकृदन्त)—टोड़े। आयुःशेषतया = आयुः शेषो ययोस्तौ आयुःशेषौ तयोर्भावः आयुःशेषता तया—क्योंकि आयु समाप्त न हुई थी, आयुके अवशेष होनेसे। चटकौ = चटकश्च चटकी च—एकशेष समास। पितरौ तथा श्वशुरौ ये दूसरे एकशेष समासके उदाहरण हैं। मातापितरौ तथा श्वश्रूश्वशुरौ ये पितरौ तथा श्वशुरौ के वैकल्पिक रूप हैं। कथमपि—किसी प्रकार। विशेष—भेद। श्लेष्माश्रु (श्लेष्मन् पु कफ)—कफमिश्रित आंसू। (मध्यमपदलोपी समा०, श्लेष्मणा मिश्रितमश्रु श्लेष्माश्रु)। गजापसदस्य (अपसद-पु नीच, समासके अन्तमें इसका अर्थ 'अधम', 'निन्दित' होता है।)—नीच गजका। [illegible]—भ्रमरी जातिमें उत्पन्न। विधेयज्ञ (उपपदसमास, विधेयं जानातीति विधेयज्ञः)—जो यह जानता है कि क्या करना चाहिये। सुहृत्ता—मित्रकी तरह। उत्तरपदस्थो भूतशब्दः समार्थः। कभी इसका अर्थ रूपक होता है। स्वरूपार्थोऽपि भूतशब्द उत्तरपदस्थ—इदं जगत् तमोभूतमासीत्—तमोरूपमित्यर्थः। [illegible] फोड़ना। मतिशालिभि—मत्या शालन्ते शोभन्ते ते मतिशालिनस्तैः। उन लोगोंसे जो बुद्धिमें चमकते हैं। [illegible]—निष्फल नहीं होते; सफल होते हैं। नया—नीतिमार्ग। कियन्मात्रः (कियती मात्रा प्रमाणं यस्य)—किस गिनतीका। [illegible] बेचारा। [illegible]—

इसको एकदेशिसमास वा अवयविसमास कहते हैं। ('अह सर्वैक- देशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' ।५।४।८७॥ चात् संख्याव्ययादेः। अह इत्यादि पूर्व होनेपर रात्रि शब्दसे समासान्त अच् प्रत्यय होता है। अर्थात् रात्रिका रात्र होता है। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र (द्वन्द्व), रात्रेः पूर्वं पूर्वरात्र; संख्याता चासौ रात्रिश्च संख्यातरात्र। इसीप्रकार-पुण्यरात्र, द्वयो रात्र्योः समाहारो द्विरात्रम्, अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्र (प्रादिसमास)। 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' ५।४।८८॥ सर्व इत्यादि पूर्व होनेपर अहन् को अह्न होता है। सर्वाह्ण, पूर्वाह्ण। परन्तु यदि संख्यावाचक वा पुण्य, सुदिन पूर्व हो तो अहन् को अह होता है, अह्न नहीं होता, पुण्याहम् (पुण्याह भवन्तो ब्रुवन्तु—स्वस्तिवाचन विधिमें यजमान ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करता है।) द्वयोरह्नोः समाहार द्व्यह। रात्र, अह्न, अह, में अन्त होनेवाले द्वन्द्व तथा तत्पुरुष पुल्लिङ्गमें होते हैं। ('रात्राह्नाहाः पुंसि' २।४।२९॥)। पुण्य सुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा—पुण्याहम्। सुदिनाहम्। लालस—उत्सुक। चञ्चू—स्त्री०, चोंच। सपरिकरस्य। सेवकोंसे सहित। गर्त—र्तम्—र्ता—गड्ढा। समवाय—समूह। पञ्चत्वं यास्यति=मरेगा, पांच तत्त्वोंमें मिलेगा। मण्डूक—मेढक।

२।—अवनि-नी—पृथ्वी। सादरमभाणि—सादरम्—आदरसे साथ। अव्य०, क्रियावि०, अभाणि भण्‌का कर्मणि लुङ् प्रथम पु० एकवचन, स्थविरे-से वृद्ध। वेश्मवर=वेश्मसु वर, सप्त० तत्पु०, ऐसे स्थलोंपर षष्ठीका निषेध है। वेश्मानां वर तथा वेश्मसु वर ये निर्धारणषष्ठी तथा निर्धारणसप्तमीके उदाहरण हैं। वेश्मानां वर में समास नहीं हो सकता। न निर्धारणे २।२।१०॥—निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते। नन्दिनी— लड़की। व्यवहारी—व्यापारी। उदयंसे—विवाह किया। सोदर—सगा भाई, समानमुदरं यस्य सः, समानके स्थानमें स हुआ है। प्रवहणम्—जहाज। पोत—नाव। अभिमन्त्रस्व—रम्, क्रट, आ, वि, ये पूर्व रहनेपर क्रम धातुसे आत्मनेपद होता है। समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२। कल्लोल—बड़ा तरङ्ग।

ालिका—समूह। धात्रीभावेन कल्पिताहम्—मैं जो उसकी धाइ बनाई
यी थी। फलकम्—पटिया। परां काष्ठामधिगता—जो सीमातक पहुंची
थी। विचेतना—विगता चेतना यस्या सा। प्रच्छायशीतले—प्रकृष्टा
छाया यस्य तत् प्रच्छायं प्रच्छायं च तत् शीतलं च प्रच्छायशीतलं
तस्मिन् (विशेषणसमास, कर्म० स०)। जनपदगामिनम् (जनपद
गच्छतीति जनपदगामी तम्)—गांवकी ओर जानेवाला। वारण—
हाथी। प्राद्रवत्—भागा। गुल्मक—ग्राम्—समूह। कण्ठीरव—सिंह
(कण्ठो रवौ शला)। आददति—आददत् की सप्तमीका एकवचन।
आददत्=आ+दा—जु० पर० का वर्तमान कृदन्त। शास्, जक्ष्, चकास्,
ाप्, तथा जुहोत्यादि गणके धातुओंके वर्तमान कृदन्तमें—जिनके प्रथम
पुरुषके बहुवचनमें अनुनासिक नहीं लगता—पुल्लिङ्गके सर्वनामस्थानमें
अनुनासिक नहीं लगता, तथा नपुंसकलिङ्गके प्र०, द्वि०, तथा सम्बोधनके
बहुवचनमें विकल्पसे अनुनासिक लगता है—ददत ददतौ, ददत, ददतम्
ददतौ। न० प्र० ददत्, ददती, ददति-ददन्ति। दन्तावल—गज। (वल
=मत्वर्थीय प्रत्यय। अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है—जैसे कृषीवल—
किसान)। समासीनेन (समासीन—सम्+आस्का वर्तमान कृदन्त है। यह
अनियत है)—बैठे हुए। निकट—टम्—सामीप्य, निकटम्-अव्यय पास।

३।—क्रियतां समयधर्मः (समय=एकरार) एकरार किया जाय।
शुष्कक्षामकण्ठ—जिसका गला भूखसे सूख गया था। क्षाम क्षै धातु ध्या
र का भूत कृदन्त है। (क्षायो मः ८।१।६३॥ से क्षै के बाद त को म होता है)।
सृक्किणी परिलेलिह्यमान—'प्रान्तावोष्ठस्य सृक्किणी' इत्यमरः—सृक्किन् न
होठोंके किनारे। परिलेलिह्यमान—बार२ चाटता हुआ। यङन्त
लिह् धातुका वर्तमान कृदन्त। भ्रमयन्—भ्रम् (भ्रमयते)। यह प्राय
आत्मनेपद है। चिताग्निसमाने—अग्निके समान।

४।—दायादः दायमादत्ते इति दायाद—उत्तराधिकारी। अरघट्ट-
घटीषु—अर चक्रके हुए, अरैर्घट्यते इत्यरघट्ट—कूएंसे पानी

दीपोंसे प्रकाशसे हटाया जा सकता है, और बहुत गहिरा नहीं होता। 'यौवनप्रभव तम' उपमेय है, और 'साधारण तम' उपमान है। यहां उपमेयाधिक्यपर्यवसायी व्यतिरेक अलङ्कार है। रागमलावलेप =विषयप्रेमकी अशुद्धिसे उत्पन्न होनेवाला गर्व। अस्नानशौचवध्य =जो स्नानकी शुद्धिसे नष्ट नहीं हो सकता। गर्भेश्वरत्वम्—जन्मसिद्ध सार्वभौमता। अविनयाना समवाय =एषामेकैकमप्यविनयानामायतनं समवाय (उनका समूह) अविनयानामायतनमिति किमुत (किं वक्तव्यम्)—जब इनमें प्रत्येक अविनयका स्थान है, तब इनके समुदायकी क्या बात है। इसको कैमुतिक न्याय कहते हैं। अभिनवं यौवनं यस्य स अभिनवयौवनः तस्य भावः अभिनवयौवनत्वम्। इसी प्रकार अप्रतिमरूपत्वम् तथा अमानुषशक्तित्वम् का विग्रह करना चाहिये। कालुष्यम्—मालिन्य, कलुष-मटमैला। भवादृश —भवादृश्-श-क्ष-ये तीन रूप हैं। ऐसे २ और शब्दोंसे भी तीन रूप होते हैं, जैसे—तादृश्-श-क्ष। अपगतमल-मल —मलम्-धूल, मालिन्य, अपवित् विचार। गभस्ति-पु स्त्री—किरण। गभस्तिमत्—सूर्य। कल्याणाभिनिवेशी—कल्याणे अभिनिवेशः कल्याणाभिनिवेश, सोऽस्यास्तीति कल्याणाभिनिवेशी, तत्पु० स० को इन् प्रत्यय लगाया गया है।—जो अपने हितकी ओर लगा हुआ है। (अभिनिवेश—भक्ति, गाढ़प्रेम)। राग =१ रंग, २ प्रेम। एकान्तवक्रता=१ अत्यन्त टेढ़ापन, २ अत्यन्त टेढ़े मार्गसे चलना। चञ्चलता=१ फुर्ती, २ अस्थिरता। मोहनशक्ति=१ मोहित करनेकी शक्ति, २ वशीकरण। मद=१ नशा, २ गर्व। नैष्ठुर्यम्—१ कड़ापन, २ क्रूरता। इस प्रकार इन शब्दोंसे दो २ अर्थ हैं, और यहां अलङ्कार श्लेष है। दो अर्थोंमें एक पारिजातपल्लव, इन्दुशकल इत्यादिकी तरफ लगता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीकी तरफ। शकल —टुकड़ा। कालकूटम्—विष। विरहविनोदविहानि—वियोगको दूर करनेसे लहरा। पलायते—जब अय—त्वा आत्म से पूर्व परा होता है, तब परा के र् को ल् होता है। अय् के परोक्षभूतमें अयाञ्चक्रे—बभूव—आस रूप होते हैं।

अभिजन—उन्नत वंश। कामम्—मान लिया, चाहे ऐसा हो। समारोपि—जिसके उपनयन इत्यादि संस्कार पिताके द्वारा किये गये हैं। तरल—चञ्चल। अप्रतिबुद्ध—जिसको प्रकाश अथवा ज्ञान नहीं हुआ। मुखरीकृतवान्—मुझसे बुलवाया। कृत मयेदम्—कृतवानहमिदम। धातुके अकर्मक होनेपर अर्थमें भेद नहीं होता। गतोऽहं ग्रामम् और गतवानहं ग्रामम् का अर्थ एक ही है—मैं गांव गया। इदमेव—पुरुषमिव दुर्विनीता लक्ष्मी खलीकरोतीति। विजयस्व—वि तथा परा पूर्वक जि धातु आत्मनेपद है। विपराभ्यां जेः १।३।१८॥ सिद्धादेश—वह जिसकी आज्ञा अवश्य सफल हो।

८।—श्रुतिस्मृतिनिर्दिष्टोऽसपरमात्मलक्षणम्—जिसने वेद तथा धर्मशास्त्र-से आत्माका अनुभव किया है। परमहंसपरिव्राट्—सन्यासियोंके चार भेद हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस, तथा परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठता दिखाता है। इस प्रकार परमहंस सबसे श्रेष्ठ है। न हि—निश्चय। जब नदीका समीपका तट जलकर खाक हो जाता है तो कोई नहीं पार करना नहीं चाहता। इसी प्रकार जब मृत शरीर पक्षियोंसे खाया जाता या खाक हो जाता है, तो कोई इस संसारसे मुक्त होना नहीं चाहता। तो तुम क्यों मुक्त होना चाहते हो? पार और अवर (समीप तथा दूरका तट) से पारावार शब्द बना हुआ है, जिसका अर्थ समुद्र है। आए —धाड़ियाल। अपस्—न पक्षी। साध्ववादी —अब तुम ठीक कहते हो। पहिले तुमने झूठ क्यों कहा—'मैं एक विशिष्ट कुलमें ब्राह्मण और ब्रह्मचारी था, और अब मैं परमहंस हूं'। मृषोद्य—असत्य। अयोऽन्वय—अयो अन्वय यस्य = इस वंशका। प्रत्यभ्यज्ञासि०—तुमने शरीरको पहिचाना, जिसकी कई जातियां वंश तथा संस्कार है, जिस प्रकार आत्माको पहिचाना, जिसकी न जाति है, न वंश, और न संस्कार।

९।—परमानन्दमाधवम्—विष्णु जो परम आनन्दका आत्मा है। मा=लक्ष्मी+धव=पति। सत्—सत्ता या स्थिति, चित्—ज्ञान, और

दीपोंसे प्रकाशसे हटाया जा सकता है, और बहुत गहिरा नहीं होता। 'यौवनप्रभव तम' उपमेय है, और 'साधारण तम' उपमान है। यहां उपमेयाधिक्यपर्यवसायी व्यतिरेक अलङ्कार है। रागमलावलेप =विषयप्रेमकी अशुद्धिसे उत्पन्न होनेवाला गर्व। अस्नानशौचवध्य =जो स्नानकी शुद्धिसे नष्ट नहीं हो सकता। गर्भेश्वरत्वम्—जन्मसिद्ध सार्वभौमता। अविनयाना समवाय =एषामेकैकमप्यविनयानामायतन समवाय (इनका समूह) अविनयानामायतनमिति किमुत (किं वक्तव्यम्)—जब इनमें प्रत्येक अविनयका स्थान है, तब इनके समुदायकी क्या बात है। इसको कैमुतिक न्याय कहते हैं। अभिनव यौवन यस्य स अभिनवयौवन तस्य भाव अभिनवयौवनत्वम्। इसी प्रकार अप्रतिमरूपत्वम् तथा अमानुषशक्तित्वम् का विग्रह करना चाहिये। कालुष्यम्—मालिन्य, कलुष मटमैला। भवादृश—भवादृश्-श-क्ष-ये तीन रूप हैं। ऐसे २ और शब्दोंसे भी तीन रूप होते हैं, जैसे—तादृश्-श-क्ष। अपगतमरा-मल —मलम्-धूल, मालिन्य, अपवित्र विचार। गभस्ति पु स्त्री—किरण। गभस्तिमत्—सूर्य। कल्याणाभिनिवेशी—कल्याणे अभिनिवेश कल्याणाभिनिवेश, सोऽस्यास्तीति कल्याणाभिनिवेशी, तत्पु० स० को इन् प्रत्यय लगाया गया है।—जो अपने हितकी ओर लगा हुआ है। (अभिनिवेश—भक्ति, गाढ़प्रेम)। राग =१ रंग, २ प्रेम। एकान्तवक्रता=१ अत्यन्त टेढ़ापन, २ अत्यन्त टेढ़े मार्गसे चलना। चञ्चलता=१ फुर्ती, २ अस्थिरता। मोहनशक्ति=१ मोहित करनेकी शक्ति, २ वशीकरण। मद=१ नशा, २ गर्व। नैष्ठुर्यम्—१ कड़ापन, २ क्रूरता। इस प्रकार इन शब्दोंके दो २ अर्थ हैं, और यहां अलङ्कार श्लेष है। दो अर्थोंमें एक पारिजातपल्लव, इन्दुशकल इत्यादिकी तरफ लगता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीकी तरफ। शकल —टुकड़ा। कालकूटम्—विष। विरहविनोदचिह्नानि—वियोगको दूर करनेके उपाय। पलायते—जब अय—म्वा आत्म के पूर्व परा होता है, तब परा के र् को ल् होता है। अय् के परोक्षभूतमें अयाञ्चक्रे—बभूव—आस रूप होते हैं।

अर्थात् मैं कभी स्वतन्त्र नहीं। यथावत्—यथायोग्य। वल्गुश्च—सुन्दर। सुरभि—सुन्दर। भावित—पवित्र। चक्रवाक—यह पत्ती रातको अपनी प्रियासे वियुक्त होता है। पत्तिणा=जटायुणा। कन्दरा—गुहा। आसन्न—समीप।

१३।—भरतर्षभ—भरतेषु ऋषभस्तत्सम्बुद्धौ भरतर्षभ—भरत वंशीयोंमें श्रेष्ठ। ऋषभ, शार्दूल, सिंह, पुङ्गव इत्यादि समासमें उत्तरपदके तरह प्रयुक्त होते हैं और इनका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है। 'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः॥ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे—उपमित अर्थात् उपमेयका व्याघ्र इत्यादिके साथ समास होता है, जब साधारण धर्मका वाचक कोई पद न हो। पुरुष, व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः, पर पुरुषो व्याघ्र इव शूरः। यहां 'शूर' यह साधारण धर्मवाचक पद है, इसलिये समास नहीं होता। नृसोम—ना सोम इव। श्री—सौन्दर्य, औदार्य, इत्यादिकी शोभा। पद्मा—लक्ष्मी। मकरध्वजस्य—प्रद्युम्नका। प्रगल्भे—ढीठ आदमीमें। देवपरे=देव परं प्रधान वस्तु यस्य स देवपरः तस्मिन् देवपरे। उदीर्ण—उदार प्रकृतिका। (उद्+ईर्—अ आत्म का भूतकृ)। साङ्करिके=जिसमें वर्णसङ्कर है। अनुपक—दोषदृष्टि करनेवाला। कृतात्मन्—जितेन्द्रिय, पवित्र। स्वाध्यायनित्य—वेदाभ्यासमें लगा हुआ, नित्य=निमग्न। संवृतमनोरथेषु—उन लोगोंमें जिनके अभिप्राय गुप्त है, जिनके मनमें एक और वचनमें दूसरी बात है।

१४।—तनूरुह—केश। कल्यगता—कल्य प्रातरपर्युख वा—प्रातःकाल। आकीर्णम् (आ+कॄ (किरति) तु पर का भूत कृदन्त)—व्याप्तम्—भरा हुआ। तपस्विनी—बेचारी (दीनता दिखाता है)। कृच्छ्रम्—कष्ट। भेषजम्—औषध। शकुनिघ्नेन—शकुनि हन्तीति शकुनिघ्नस्तेन—बहेलियेसे। अग्निसाक्षिकम्—अग्नि साक्षी यस्मिन्स्तत्। एतत्—भर्ता हि परं दैवमित्येतत्। स्तबक—गुच्छा।

१५।—ऋच्छति—ऋ (ऋच्छ्) भ्वा पर वर्त म पु ए व।

आनन्द (सुख) ये तीन परमात्माके स्वरूप हैं । वक—बगुला । वञ्चनम् —ठगना । कार्यकाल = उनके उपयोगका समय । सिता—स्त्री.—मिश्री।

१० ।—अर्क—सूर्य । लोकपाल—लोकके पालक । तपन—सूर्य । वैश्रवण—कुबेर । वित्ताप्पत्यो—वित्तपति—धनपति—कुबेर, और अप्पति —जलपति—वरुण । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकं सम्बध्यते— पतिशब्द जो वित्ताप द्वन्द्वके अन्तमें है, वित्त तथा अप् दोनोंके साथ सम्बद्ध होता है । अर्थात् इस शब्दका अर्थ है—वित्तपति तथा अप्पति। बालीफल—फलके । द्रुतम्—शीघ्र । विद्रुत—भागा हुआ । मनुष्य इति—उसको मनुष्य जानकर । दुरुपसर्पिणम्—जो उसके पास कठिनतासे पहुंच सकता है ।

११ ।—इक्ष्वाकु—इक्ष्वाकु राजाके वंशका । बीजमुष्टिं प्रकीर्यते= मुट्ठीभर बीज नहीं छींटे जाते, बीज नहीं बोये जाते (क्योंकि फसिलके समय चोरोंका डर रहता है—फलकाले लुण्टाकशङ्कया) पितुः पुत्रो—वधे= पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानता, और न स्त्री पतिकी आज्ञा मानती है क्योंकि आज्ञाओंको उल्लङ्घन करनेवालेको दण्ड देनेवाला कोई नहीं। अत्याहितम्—बड़ा भय । 'अत्याहित महाभीति' इत्यमरः । विधाविन — अच्छे हालवाले । हायन —नप् वर्षम् । क्षेम—कुशल । पथ्यम्—हित वस्तु। विभजन्—विभाग करता हुआ । स्वकम्—जीवन । सत्य च धर्मध—सत्य तथा धर्मके प्रवर्तक । महता वृत्तेन—यमको केवल पापियोंके दण्ड करने की शक्ति है, कुवेरको केवल धन देनेकी, इन्द्रको केवल मनुष्योंके रक्षण करने की, और वरुणको केवल उनको सन्मार्गपर ले जानेकी शक्ति है, परन्तु रामामें इन चारों शक्तियोंके रहनेसे वह अपने बड़े चरित्रसे सबसे श्रेष्ठ है ।

१२ ।—नाना—अथवा भिन्न । व्याल —गज, सर्प । सन्निरुष्य—समीप प्रघृताञ्जलि —जो प्रणामार्थ लिये हाथ जोड़े हुए है । परवानस्मि—जितने = जब आप मेरे साथ है तो मैं चाहे १०० वर्ष तक आपका अधीन हूं

अर्थात् मैं कभी स्वतन्त्र नहीं। यथावत्—यथायोग्य। सङ्काश—तुल्य। सुरभि—सुन्दर। भावित—पवित्र। चक्रवाक—यह पक्षी रातको अपनी प्रियासे वियुक्त होता है। पत्तिका=सहायता। कन्दरा—गुहा। आसन्न—समीप।

१३।—भरतर्षभ—भरतेषु ऋषभस्तत्सम्बुद्धौ भरतर्षभ—भरत वंशीयोंमें श्रेष्ठ। ऋषभ, शार्दूल, सिंह, पुङ्गव इत्यादि समासके उत्तरपदके तरह प्रयुक्त होते हैं और इनका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है। 'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः॥' उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे—उपमित अर्थात् उपमेयका व्याघ्र इत्यादिके साथ समास होता है, जब साधारण धर्मका वाचक कोई पद न हो। पुरुष, व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्र, पर पुरुषो व्याघ्र इव शूर। यहाँ 'शूर' यह साधारण धर्मवाचक पद है, इसलिये समास नहीं होता। नृसोम—ना सोम इव। श्री—सौन्दर्य, औदार्य, इत्यादिकी शोभा। पद्मा—लक्ष्मी। मकरध्वजस्य—प्रद्युम्नका। प्रगल्भ—ढीठ आदमीमें। देवपरे=देव परं प्रधान वस्तु यस्य स देवपर तस्मिन् देवपरे। उदीर्ण—उदार प्रकृतिका। (उत्+ईर्—अ आरम्भ का भूतकृ)। साङ्कुरिके=जिसमें वर्णसङ्कर है। अनूयक—दोषदृष्टि करनेवाला। कृतात्मन्—जितेन्द्रिय, पवित्र। स्वाध्यायनित्य—वेद,भ्यासमें लगा हुआ, नित्य=निमग्न। मगुप्तमनोरथेषु—उन लोगोंमें जिनके अभिप्राय गुप्त हैं, जिनके मनमें एक और वचनमें दूसरी बात है।

१४।—तनुमद—थोड़ा। कल्पगता—कल्य प्रातरथर्मुख वा—प्रातःकाल। आकीर्णम् (आ+कॄ (किरति) तु पर का भूत कृदन्त)—व्याप्तम्—भरा हुआ। तपस्विनी—बेचारी (दीनता दिखाता है)। कृच्छ्रम्—कष्ट। भेषजम्—औषध। शकुनिघ्नेन—शकुनि हन्तीति शकुनिघ्नस्तेन—बहेलियेसे। अग्निसाक्षिकम्—अग्नि साक्षी यस्मिन्कर्मणि तत्। एतत्—भर्ता हि शरणं परमित्येतत्। साहक—शुष्क।

१५।—ऋच्छति—ऋ (कच्छ) ... पर वर्त म पु ए व

आनन्द (सुख) ये तीन परमात्माके स्वरूप हैं। बक—बगुला। वञ्चनम् —ठगना। कार्यकाल=उनके उपयोगका समय। विता—स्त्री—मिसरी।

१०।—अर्क—सूर्य। लोकपाल—लोकके पालक। तपन—सूर्य। वैश्रवण—कुबेर। वित्ताप्पत्यो—वित्तपति—धनपति—कुबेर, और अप्पति—जलपति—वरुण। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाण पद प्रत्येक सम्बध्यते—पतिशब्द जो वित्ताप द्वन्द्वके अन्तमें है, वित्त तथा अप् दोनोंके साथ अन्वित होता है। अर्थात् इस शब्दका अर्थ है—वित्तपति तथा अप्पति। व्यलीकेन—छलसे। द्रुतम्—शीघ्र। विद्रुत—भागा हुआ। मनुष्य इति—उसको मनुष्य जानकर। दुरुपसर्पिणम्—जो उसके पास कठिनतासे पहुंच सकता है।

११।—इक्ष्वाकु—इक्ष्वाकु राजाके वंशवाले। बीजमुष्टि प्रकीर्यते= मुट्ठीभर बीज नहीं छीटे जाते, बीज नहीं बोये जाते (क्योंकि फसिलके समय चोरोंका डर रहता है—फलकाले लुण्टाकशङ्कया) पितु पुत्री—वशे= पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानता, और न स्त्री पतिकी आज्ञा मानती है। क्योंकि आज्ञाओंको उल्लङ्घन करनेवालेको दण्ड देनेवाला कोई नहीं। अत्याहितम्—बड़ा भय। 'अत्याहित महाभीति' इत्यमर। विघासिन—अच्छे दांतवाले। हायन—नमुवर्षम्। क्षेम—कुशल। पथ्यम्—प्रिय वस्तु। विभजन्—विभाग करता हुआ। स्वकम्—जीवन। सत्य च धर्मश्च—सत्य तथा धर्मके प्रवर्तक। महता वृत्तेन—यमको केवल पापियोंके दण्ड करने की शक्ति है, कुबेरको केवल धन देनेकी, इन्द्रको केवल मनुष्योंके रक्षा करने की, और वरुणको केवल उनको सन्मार्गपर ले जानेकी शक्ति है। परन्तु राजामें इन चारों शक्तियोंके रहनेसे वह अपने बड़े चरित्रसे उन सबसे श्रेष्ठ है।

१२।—नाना—अन्य भिन्न। व्याल—गज, सर्प। सन्निकृष्ट—समीप। सप्रताञ्जलि—जो प्रणामके लिये हाथ जोड़े हुए है। पारवानस्मि—त्वयि= जब आप मेरे साथ हैं तो मैं चाहे १०० वर्ष तक आपका अधीन हूं;

उदाहरण । अशनि कल्पित एव वेधसा—इस मालाको देवने वज्र बनाया है। अशनि विधेय है। वाक्यमें दो भाग होते है—उद्देश्य और विधेय। इनमे विधेय प्रधान रहता है। निश्चायक सर्वनामका लिङ्ग विधेयके अनुसार होता है। विधेयप्राधान्यादेव इति पुंलिङ्गता। इसी प्रकार—शैत्य हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य। कृतपूर्वम्—पूर्व कृत कृतपूर्वम्। सुपसुप्-समास। शर्वपति —शर्वेन पति न स्वर्यन—नासका राजा। भावनिव-न्धना—(भाव स्वभाव)—स्वाभाविक। शर्वरी—स्त्री—रात्रि। द्वन्द्वचर—जोड़ेसे चलनेवाले। चकवा सर्वदा अपनी प्रियाके साथ चलता तथा रात-को वियुक्त होता है। पतत्रिणम्—चक्रवाकको। पतत्र डैना। वामोरु—वामौ सुन्दरौ ऊरु जङ्घे यस्याः सा वामोरु तत्सम्बुद्धौ वामोरु। (समासमें स्त्रीलिङ्गमें ऊरु का ऊरु होता है—यदि समासका पूर्वपद उपमानवाचक या संहित, वाम, इनमें कोई हो। जैसे—रम्भोरू, करभोरू) ('ऊरूत्तरपदादौ-पम्ये' ४।१।६९॥ 'संहितशफलक्षणवामादेश्च' ४।१।७०॥)। कलम्—अव्यक्त और मधुर। अन्यभृतासु—कोकिलाओंमें। परभृता, अन्यभृता (दूसरेसे पोषित) का अर्थ कोयल है। क्योंकि इनके अडे कौओंसे बढ़ाये जाते हैं। अन्य पर परभृत् (पर बिभर्तीति, जो दूसरेका पोषण करता है) का अर्थ कौआ है। पृषतीषु—मृगियोंमें। विभ्रमा—विलास। कलाविधौ—कलाओंके करनेमें करुणाविमुखेन—विगत मुख यस्य स विमुख, करुणाया विमुख करुणाविमुखस्तेन।

२०।—अर्थोष्मणा—धनकी गरमीसे। त्रिलोकीतिलक—भूषाणा त्रयाणा समाहारस्त्रिलोकी (समाहारद्विगु। इसी प्रकार अष्टाध्यायी, पञ्चमूली, पञ्चवटी) त्रिलोक्यास्तिलक भूषण त्रिलोकीतिलक, तीनों लोकका भूषण। शीतसितया—शीता चासौ सिता च शीतसिता तया। शीतल और श्वेत (गङ्गा), हृदयको आनन्द देनेवाली और निष्कलङ्क।

पात्र पात्रयति०—दीपक पात्रको मलिन करता है, परन्तु सज्जनोंके साथ मैत्री पुरुषको पवित्र, तथा अपवित्र विचारोंसे रहित बनाती है। दीपक

१६।—त्रैविद्यवृद्धान्—तिस्रो विद्या अधीयते विदन्ति वा त्रैविद्यास्तेषु वृद्धास्तान्। वैदिकोंमें वृद्ध। परावरज्ञा—परं च अवरं च परावरे ते जानन्तीति—भूत तथा वर्तमानको जाननेवाले। स्व प्रवृद्ध—शरीरात्—स्व प्रवृद्ध सकल मनोज सन्तापनीय शरीरात् प्रणुदन्—दूरीकुर्वन्नित्यर्थः।

१७।—भैषजमेतद्—चिन्तयेत्—यदेतत् (दुःख) नानुचिन्तयेत्तदेतत्। अननुचिन्तनमित्यर्थः। दुःखस्य भैषजम्। दुःखका विचार न करना ही उसको दूर करनेकी दवा है। स्पृहयेत्—लोभ करे। स्निग्धत्व—सप्रियम—अज्ञानवश विषयोंका प्रेम एक आपत्ति है और मरणका कारण है। वया गच्छन्न तिष्ठति—वय जाता हुआ रुकता नहीं। लगातार चला ही जाता है। यदि—'वयोऽगच्छन्न तिष्ठति' पाठ हो तो उसका अर्थ—वय विना चले नहीं ठहर सकता। अध्यात्मरति—आत्मन्यधिकृत्याध्यात्मम्, अध्यात्म रतिर्यस्य स। निरामिष—सांसारिक विषयोंके प्रेमसे मुक्त।

१८।—पुत्रक—प्रियपुत्र। गुहा प्रविष्टम्—हृदयके भीतर बैठा हुआ। न हि प्रतीक्षते—कृतम्—मृत्यु यह देखनेकी प्रतीक्षा नहीं करता कि इसकी जीवनका कार्य समाप्त हुआ वा नहीं। न देहभेदे-विजानताम्—यह न समझना कि शरीरका परिवर्तन मरण है। जब मनुष्य मरता है तो उसका आत्मा दूसरे शरीरमें जानेके लिये प्रथम शरीरको छोड़ता है। न तेन किञ्चिन्न प्राप्तम्—तेन किञ्चिन्न प्राप्तमिति न अपि तु प्राप्तमेव। द्वौ नञौ प्रकृतार्थं दृढीकुरुत—दो न प्रकृत अर्थको दृढ़ करते है।

१९।—बाष्पगद्गदम्—वाष्पैः गद्गदं विशीर्णाक्षरं यथा स्यात्तथा आसुओंसे गला रुधनेके कारण लड़खड़ाते अक्षरोंमें। अय—लोहा। केव कथा शरीरिषु—चेतन जीवों की बात ही क्या है? जब लोहेके समान अचेतन पदार्थ भी गरमीसे मुलायम हो जाता है तो चेतन जीवों का शोकसे सन्तप्त तथा मृदु होनेमें आश्चर्य क्या है। हन्त—हाय! प्रहरिष्यत—मारनेको चाहनेवाले। अथ वा—दूसरे पक्षमें—पक्षान्तरे इत्यर्थः। हिम—निर्यापित्त—वो ओसके गिरनेसे नष्ट होती है। पूर्वनिदर्शनम्—पहिला

गुण (बत्ती) को नष्ट करती है, पर सज्जनोंकी मित्रता गुणोंको नष्ट नहीं करती, उनको बढ़ाती है। दीपक स्नेह (तेल) को नष्ट करता है, सज्जनोंकी मित्रता स्नेह (प्रेम) को नष्ट नहीं करती। दीपक मल (काजल) को उत्पन्न करता है, सज्जनोंकी मित्रता मल अर्थात् दुष्ट विचारोंको उत्पन्न नहीं करती। दीपक दोषा (रात्रि) के अन्तमें शोभा नहीं देता, सज्जनोंकी मित्रता दोषोंके नष्ट होनेसे शोभा देती है। दीपक चञ्चल है; सज्जनोंकी मैत्री चञ्चल नहीं। इस प्रकार सच्चरित्र पुरुषोंके यहां सत्समागम एक अवर्णनीय दीपक है। यहांपर सज्जनोंकी मित्रता साधारण और दीपकोंसे श्रेष्ठ कही गयी है। इस प्रकार उपमेय उपमानसे श्रेष्ठ होनेके कारण व्यतिरेक अलङ्कारकी ध्वनि निकलती है। पवित्रयति—(नामधातु, पवित्र करोति)।

नार्घन्ति—अर्घो मूल्यमर्घन्ति न भवन्तीत्यर्थ (नामधातु)।

प्रतिभावत—जिसको कल्पनाशक्ति है। प्रतिभा—"प्रज्ञा नवनवो-न्मेषशालिनी प्रतिभा मता"—नवीन२ कल्पनाओंसे चमकनेवाली बुद्धि। प्रतिभाके बिना उत्तम काव्य नहीं बन सकता। कस्यचित्—कस्यचिदेव न सर्वस्य।

नाकवित्व—कविता न बनानेसे कर्तव्यकी हानि रोग, वा दण्ड नहीं होता, सज्जन कहते हैं कि दुष्टकाव्य बनाना साक्षात् मरण (कीर्तिका नाश) अर्थात् पूर्ण अनादर है।

व्याख्यागम्यानि—यदि ऐसी (कृत्रिम सौन्दर्यपूर्ण) कविताओंका अर्थ शास्त्रोंके समान केवल टीकाओंके सहारे लग सकता है, तो निश्चय यह तीक्ष्ण बुद्धि लोगोंके लिये सुदिन है, परन्तु हाय! मन्दबुद्धिवालोंकी दुर्दशा है। इसका अर्थ यह है कि कविता स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिये। इसके समझनेके लिये शास्त्रोंके समान टीकाओंकी आवश्यकता न होनी चाहिये। दुर्मेधस—'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः' ५।४।१२२॥ ३३ वां पाठ देखो। प्रजा तथा मेधान्त बहुव्रीहिसे असिच् समासान्त

प्रत्यय होता है। अर्थात् प्रजा तथा मेधाका प्रजस् तथा मेधस् होता है, यदि उसके पूर्व नञ् (अ वा अन्), दुस्, और सु हो। (अप्रजा सुप्रजा, अमेधा इत्यादि)।

मूर्धजा —मूर्धनि जायन्ते इति मूर्धजा केशा ।

जीवमान —जीव्-त्वा पर है, पर यहां ताच्छील्यके अर्थमें आया है। जीवमान का अर्थ है जिसको जीनेकी आदत है। 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' ।३।२।१२९।—चानश् (आन, आत्म का वर्तमान कृदन्त प्रत्यय) ताच्छील्य अर्थमें धातुओंको लगाया जाता है। यह इन अर्थोंमें भी लगाया जाता है जहां वयस्का बोध हो वा शक्ति मालूम हो। भोग भुञ्जान —जिसको सुख उपभोग करनेकी आदत है। कवच बिभ्राण —जो कवच धारण करने योग्य वयस् को पहुंचा। शत्रून्निघ्नान —जिसको शत्रुओंके मारनेकी शक्ति है।

भागधेयम्—भाग एव भागधेयम्—धेय स्वार्थवाचक प्रत्यय है, अर्थात् इसके लगानेसे प्रकृतिके अर्थमें कोई भेद नहीं होता। नाम एव नामधेयम्, बाल एव बालक (क स्वार्थवाचक है), सुखमेव सौख्यम्।

इतरतापशतानि—अरसिकोंके सामने रसपूर्ण वचन कहनेके कष्टको छोड इतर सैकडों कष्ट।

अस्था सखे०—यह अन्योक्ति वा अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण है। जब अप्रस्तुत (अवर्णनीय) की प्रशंसा अर्थात् कथनसे प्रस्तुत (वर्णनीय) की प्रतीति होती है तब अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार होता है। अरसिकोंके सामने रसपूर्ण वचन कहना वैसा है जैसे बहिरोंके आगे हुए ज्ञानपर मुश्किलकी होती। कविका अभिप्राय विद्वान्को उपदेश देनेमें है कि वह अरसिकोंके सामने अपनी विद्वत्ता न दिखावे।

ईवदतका —ईव दत्त निन्द्र येषा ते। यहां निष्ठान्त वा भूतकृदन्त उत्तरपदके समान प्रयुक्त हुआ है। आहिताग्नि वा अग्न्याहित (जिसने अग्निका आधान किया है) दोनों रूप होते हैं। कृतानभिज्ञाः—

१ जो बाल वा अव्यक्तमधुर शब्दोंसे अभिज्ञ नहीं है २ जो कलाओंको नहीं जानते।

कृतान्त —यम। मनाक् (अव्य)—थोड़ा।

लोभश्चे द०—लोभ अग्निके समान है, चुगली खाना पाप करनेके समान है—इत्यादि।

विद्याया व्यसनम्—व्यसन—आसक्ति।

भवन्ति नम्रा०—पहिले तीन पादोंमें विशेष बातें कही गयी हैं, जिनका समर्थन चतुर्थ पादमें सामान्यसे किया गया है। इस प्रकार सत्र सामान्यसे विशेषका, वा विशेषसे सामान्यका समर्थन किया जाता है सो अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है।

ज्ञेय सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुन॥

अर्थान्तरन्यास वह अलङ्कार है जिसमें कवि कोई बात कह उसके समर्थनमें समर्थ दूसरी बात कहता है।

पूर्वार्धपरार्धभिन्ना—दिनके पूर्वभागमें छाया छोटी २ होती जाती है, इसी प्रकारकी खलोंकी मित्रता होती है, दिनके उत्तर भागमें छाया बड़ी २ होती है, इसी प्रकारकी सज्जनोंकी मित्रता होती है।

सज्जा —उत्तम मित्रके लक्षणोंको जाननेवाले। अनुविधेयम्—अनुसरणीयम्। उद्दिष्टम्—उपदिष्टम्। असिधाराव्रतम्—असिधाराचङ्क्रमणवत् दुष्करम्—तलवारके धारपर चलनेके समान कठोर। 'एकस्यामेव शय्याया मध्ये खड्ग निधाय स्त्रीपुंसौ यत्र ब्रह्मचर्येण शयाते तदसिधाराव्रतम्'—यह दिनकर टीकाकारकी परिभाषा है।

सम्भ्रमविधि —अतिथिके सत्कार करनेके विषयमें घबड़ाहट। सदसि कथन चाप्युपकृते —सभामें अपने ऊपर किये गये उपकारोंका कहना। अनुत्सेक —गर्वका अभाव। निरभिभवसारा —निर्गत अभिभव,

अपमान एव भारो यस्या सा —दूसरोंके विषयकी बातें निन्दासे शून्य होनी चाहिये।

लालायते—लार टपकाता है। असितायते असित् इव आचरति—इन दोनोंमें क्यङ् (य) प्रत्यय लगाकर सनाद्योंसे धातु बनाये गये हैं।

प्रणयगर्भगिर —प्रणय गर्भे यासां ता प्रणयगर्भा, प्रणयगर्भा गिर येषां ते प्रणयगर्भगिर (बहुव्रीहिगर्भो बहुव्रीहि)। वे लोग जिनकी वाणी प्रेमपूर्ण है। वल्गन्ति—शोभते हैं। चमीलने० यह श्लोक भोज-प्रबन्धमें है। पहिले तीन चरणोंमें राजा भोज अपने सुखका वर्णन करता है और चाहता है कि चतुर्थ चरण बनावें कि इतनेमें एक चोर जो महलमें घुसा था, चतुर्थचरणको पूर्ण करता है, जो प्रथम तीन चरणोंके साथ खूब मेल खाता है और इसका तात्पर्य यह है कि आंख मूंदनेपर (मरणके बाद) इनमेंसे कोई चीज नहीं रहती।

झटिति—शीघ्र। प्रिये! चन्द्रग्रहण समीप है। तुम्हारा मुखचन्द्र निष्कलङ्क है परन्तु पूर्णचन्द्र सकलङ्क है। इसलिये पूर्णचन्द्रको छोड़ राहु तुम्हारे मुखचन्द्रको ग्रसेगा। अत शीघ्र भीतर जाओ। यहां व्यतिरेकालङ्कारध्वनि है। अर्थात् व्यतिरेक अलङ्कार जिसमें उपमानसे उपमेयका आधिक्य वर्णित है, व्यङ्ग है।

पुरा—पूर्वकालमें कवियोंकी गिनती होनेपर कनिष्ठिका कालिदासके लिये उपयुक्त हुई। अबतक कालिदासके तुल्य कविके न होनेसे अनामिका नाम सार्थक हुआ। शिवने अपनी अंगुलीसे ब्रह्माका सिर काटा इसलिये वह अपवित्र हुई उसको पवित्र करनेके लिये धार्मिक विधियोंमें अङ्गुलीमें कुशकी अगूठी पहिनी जाती है। अङ्गुष्ठ, तर्जनी वा प्रदेशिनी, मध्यमा, अनामिका, और कनिष्ठिका ये अंगूठेसे लेकर क्रमसे सब अंगुलियोंके नाम हैं।

यास्यत्यद्य—यास्यति—जायगी, न उद्‌गयी न सा रही है। वह जाने के है तो भी मैं अत्यन्त व्याकुल हूं। संस्पृष्टम्—सम्यक स्पृष्टम्। कलुष —

१ जो कल वा अव्यक्तमधुर शब्दोंके अभिज्ञ नहीं है, २ जो कलाओंको नहीं जानते।

कृतान्त —यम। मनाक् (अव्य)—थोड़ा।

लोभश्चेद०—लोभ अग्निके समान है, चुगली खाना पाप करनेके समान है—इत्यादि।

विद्याया व्यसनम्—व्यसन—आसक्ति।

भवन्ति नम्रा०—पहिले तीन पादोंमें विशेष बातें कही गयी हैं, जिनका समर्थन चतुर्थ पादमें सामान्यसे किया गया है। इस प्रकार जब सामान्यसे विशेषका, वा विशेषसे सामान्यका समर्थन किया जाता है तो अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है।

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः॥

अर्थान्तरन्यास वह अलङ्कार है जिसमें कवि कोई बात कह उसके समर्थनमें समर्थ दूसरी बात कहता है।

पूर्वार्धपरार्धभिन्ना—दिनके पूर्वभागमें छाया छोटी २ होती जाती है, इसी प्रकारकी खलोंकी मित्रता होती है, दिनके उत्तर भागमें छाया बड़ी २ होती है, इसी प्रकारकी सज्जनोंकी मित्रता होती है।

तज्ज्ञा —उत्तम मित्रके लक्षणोंको जाननेवाले। अनुविधेयम्—अनुसरणीयम्। उद्दिष्टम्—उपदिष्टम्। असिधाराव्रतम्—असिधाराचङ्क्रमणवद् दुष्करम्—तलवारके धारपर चलनेके समान कठोर। 'एकस्यामेव शय्यायां मध्ये खड्गं निधाय स्त्रीपुंसौ यत्र ब्रह्मचर्येण शयाते तदसिधाराव्रतम्'—यह दिनकर टीकाकारकी परिभाषा है।

सम्भ्रमविधि —अतिथिके सत्कार करनेके विषयमें घबड़ाहट। सदसि कथनं चाप्युपकृते —सभामें अपने ऊपर किये गये उपकारोंका कहना। अनुत्सेक —गर्वका अभाव। निरभिभवसारा —निर्गत अभिभव

है कि वे जिस किसीको देखें उसीको मिथ्यास्तुति न करें। यह स्वाभिमानका उपदेश करता है।

आर्द्रयन्ति—आर्द्र से नामधातु—गीला करते हैं।

यद्वच्च मुदुरोचसे—यह भी अन्योक्तिका उदाहरण है। इसमें कवि स्वाभिमानी तथा सन्तोषी पुरुषका वर्णन करता है।

निर्दौवारिकानिर्दयोक्त्यपरुषम् = निर्गत दौवारिक (द्वारपाल) यस्मात् तत् निर्दौवारिकम्। निर्दया चासा उक्तिश्च निर्दयोक्ति। निर्दयोक्त्या अपरुष निर्दयोक्त्यपरुषम्—निर्दौवारिक च तन्निर्दयोक्त्यपरुष च निर्दौवारिकानिर्दयोक्त्यपरुषम्—परमेश्वरके भवनपर कोई द्वारपाल नहीं जो लोगोंको भीतर आनेसे रोके और न वहां कोई ऐसा आदमी है जो कठोर वचन कहे।

श्रीवत्साङ्क—श्रीवत्स चिह्नसे युक्त। श्रीवत्स—उरसि रोमावर्त,—वक्ष स्थलका केशोंका भंवरा। भागवतमें कथा है कि यह भृगुके लात मारनेका चिह्न है। एकबार भृगुको यह जाननेकी इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव इनमें सबसे श्रेष्ठ कौन है। भृगु इन तीनोंके यहां गये और उनके सामने अविनय किया। ब्रह्मा तथा शिव उस अविनयको न सह सके। इसके अनन्तर भृगु विष्णुके यहां गये और उनके हृदयपर लात मारी। भगवान् विष्णु कुछ न बोले। यही श्रीवत्स चिह्न है।

हृत्कल्पितम्—मनसे कल्पित। यह श्लोक मानसिक पूजाका वर्णन करता है।

भेदप्रतिपत्ति—भेदका ज्ञान। मैं उनको भिन्न नहीं समझता।

रामो राजमणि०—इस श्लोकमें रामशब्दके सब विभक्तियोंके एकवचनके रूप दिखाई देते हैं।

कहूं कि 'आओ' तो मेरा वचन प्रेमशून्य होगा, यदि कहूं कि 'ठहरो' तो इससे तुम्हारे ऊपर अपनी प्रभुता प्रकट होगी, यदि कहूं कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' तो यह उपेक्षा दिखाएगा, और यदि कहूं कि 'तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता' तो यह कदाचित् संभव वा असम्भव समझा जायगा।

श्मशानम्—श्मानः शवाः शेरते अत्रेति श्मशानम्।

बाले नाथ—यह पतिपत्नीका संवाद है।

पति—बाले। पत्नी—नाथ। पति—विसृज्य मानिनि रुषम्। पत्नी—रोषान्मया किं कृतम्? पति—खेदोऽस्मासु। पत्नी—न मेऽपराध्यति—मयि। पति—तत्किं रोदिषि—वचसा? पत्नी—कस्याग्रतो रुद्यते? पति—नन्वेतन्मम। पत्नी—का तवास्मि? पति—दयिता। पत्नी-नास्मीत्यतो रुद्यते।

अम्बा कुप्यति—शिवपुत्र षण्मुख कार्तिकेय शिवसे कहते हैं। अम्बा—त्यज्यताम्—हे पिता जी, माताको कोप आता है, इसलिये इस सिरपर रक्खी हुई गङ्गाको छोड़िये। आपकी माताले गङ्गा अधिक प्रिय है और आपने उसे सिरपर धारण किया है। यही कारण है कि पार्वतीको क्रोध आता है। इसलिये गङ्गाको छोड़िये। शिव कहते हैं—विद्धन् षण्मुख—वद। वह मुझपर अत्यन्त अनुरक्त है, वह कहां जाय? विद्धवदन—जिसका मुख बढ़ गया था। अपने छः मुखोंसे कार्तिकेयने कहा—अम्भोधि ··वारिधि। वह समुद्रमें जाय। अपने छः मुखोंसे वह छः समुद्रवाचक पदोंका प्रयोग करते हैं।

काप्युदग्रि०—यह तथा इससे आगेके दो श्लोक भास कविके नाटकोंसे लिये गये हैं। यस्या न—शकुन्तलाके 'पातु न प्रथम' से साथ मिलान करो। वीजन्ति। पचाद्यजन्त से क्विप् हुआ है, नामधातु। वीजयतीति वीज (इस प्रकार वीज, वीज चु० से बना हुआ सन्नाशब्द है)। वीज इवाचरतीति वीजति (नामधातु)। इसका अर्थ 'पंखा झलता है' है।

रे रे चातक०—इस अन्योक्तिसे कवि अपने पाठकोंको उपदेश करता

परिशिष्ट (क)।

कृ धातुके रूप।

कृ—पर (कर्तरि)—करोति (लट्), करोतु (लोट्), अकरोत् (लङ्), कुर्यात् (लिङ्), चकार (लिट्), कर्ता (लुट्), करिष्यति (लृट्), अकरिष्यत् (लृङ्), अकार्षीत् (लुङ्), क्रियात् (आशीर्लिङ्)।

कृ—आत्मने (कर्तरि)—कुरुते, कुरुताम्, अकुरुत, कुर्वीत, चक्रे, कर्ता, करिष्यते, अकरिष्यत, अकृत, कृषीष्ट।

कृ—(कर्मणि)—क्रियते, क्रियताम्, अक्रियत, क्रियेत, चक्रे, कर्ता—कारिता, करिष्यते—कारिष्यते, अकरिष्यत—अकारिष्यत, अकारि, कृषीष्ट—कारिषीष्ट।

कृ—णिजन्त तथा सन्नन्तके रूप ३१२ वें पृष्ठमें दिये गये है।

कृ—(यङ्) चेक्रीयते इत्यादि, यङ्लुगन्त—चर्करीति—चर्कर्ति—चरिकर्ति—चरीकर्ति।

कृदन्त—कुर्वत् (शतृ पर), कुर्वाण (शानच्—आत्म), क्रियमाण (कर्मणि शानच्), कृत (निष्ठा—क्त), कृतवत् (कर्तरि निष्ठा-क्तवतु), करिष्यत् (भविष्यति शतृ), करिष्यमाण (भवि आत्म शानच्), कृत्वा (अव्यय कृदन्त), कारं कारम् (णमुल्); कर्तुम् (तुमुन्), चकृवस् (क्वसु), चक्राण (आत्म कानच्), कार्य (ण्यत्), कारित—(णिजन्त से क्त), कारयत् (णिजन्त—शतृ), कारयित्वा, कारयितुम्, चिकीर्षत्—चिकीर्षमाण, इत्यादि।

ऊपर दिये हुए रूप केवल 'कृ' के हैं। इनको देखनेसे विद्यार्थियोंको साहित्यमें आनेवाले रूपोंके पहिचाननेमें सुगमता होगी।

लकारों के प्राचीन नाम—भवन्ती (लट्), परोक्षा (लिट), अनद्यतनी (भूता) वा ह्यस्तनी (लङ्), अद्यतनी (लुङ्), भविष्यन्ती (लृट्), अनद्यतनी (भाविनी) वा श्वस्तनी (लुट) अतिसर्गी (लोट), विधायिका (लिङ्), आशी (आशीर्लिङ), अतिपातिका (लृङ्), पञ्चमी तथा सप्तमी ये भी लोट् तथा लिङ् के नाम हैं। क्योंकि पाणिनिके लकारोंके क्रमसे यह पांचवां तथा सातवां लकार है—लट्, लिट्, लुट्, लृट, लेट्, (छन्दोमात्रगोचर—केवल वेदमें), लोट्, लङ, लिङ, लुङ, लृङ्।

परिशिष्ट (ख)।

पाणिनीय पद्धति।

संस्कृत वैयाकरणोंमें पाणिनिका नाम प्रसिद्ध है। पाणिनिका व्याकरण, जो आठ अध्यायोंमें है, अष्टाध्यायीके नामसे प्रसिद्ध है। अष्टाध्यायीकी टीकाओंमें भट्टोजीदीक्षितकी सिद्धान्तकौमुदी बहुत प्रचलित है। संस्कृत व्याकरणके उत्तम ज्ञानके लिये सिद्धान्तकौमुदीका पढ़ना आवश्यक है। सिद्धान्तकौमुदीका संक्षेप लघुसिद्धान्तकौमुदी है। इस ग्रन्थको पढ़नेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मार्ग सुगम करना ही इस परिशिष्टका उद्देश है।

पाणिनिके नियम संक्षिप्त हैं और बहुत अर्थका बोध कराते हैं। ये सूत्र कहाते हैं। अतिसंक्षिप्त होनेके कारण इनका कण्ठ करना सुगम है। और इस कारण ये व्याकरणका पढ़ना सुगम बनाते हैं। 'संस्कृतशिक्षिका' पढ़ते समय इन सूत्रोंका अभ्यास करनेसे व्याकरणके नियमोंका मनपर संस्कार दृढ़ होगा। सूत्रोंके समझनेके लिये कुछ संज्ञाओं और परिभाषाओं (सूत्रव्याख्यान) का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। पाणिनिके व्याकरणके मूलभूत अधोलिखित चौदह माहेश्वर (शिवसे प्राप्त) सूत्र हैं —

अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्। हयवरट्। लण्। ञमङणनम्। झभञ्। घढधष्। जबगडदश्। खफछठथचटतव्। कपय्। शषसर्। हल्।

इन चौदहों सूत्रोंके अन्तिम अक्षर तथा लण् में ल का अ इत् कहाते हैं। इस प्रकार ण्, क्, ङ् इत्यादि इत् हैं। ह, य, इत्यादि व्यञ्जनोंके साथ का अ अक्षरोंके उच्चारणमें सुगमता होनेके लिये है। इन सूत्रोंके किसी अक्षरको इत् वर्णके साथ मिलानेसे अक्, अच्, अल्, अश्, इत्यादि निकलते हैं। ये प्रत्याहार कहाते हैं। इनसे [illegible] लेकर इत् तकके [illegible] से क् को छो[illegible] वर्णोंका (इत् छोड़कर) बोध होता है।

से क् तकके सब वर्णों (अ, इ, उ, ऋ) का बोध होता है। अच् से सब स्वरोंका बोध होता है। 'हयवरट्' के ह से 'हल्' के ल् तक हल् प्रत्याहार है, जिससे सब व्यञ्जनोंका बोध होता है।

स्वर तीन प्रकारके हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर प्लुत होता है। इनमें प्रत्येक स्वर दो प्रकारका होता है—अनुनासिक और अननुनासिक। इस प्रकार स्वर छ प्रकारके हैं। उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित ये भी तीन स्वरके भेद हैं, जो वेदमें पाये जाते हैं। इस रीति से अ, इ, उ इन में प्रत्येकके अठारह भेद हैं। ऋ के भी अठारह भेद हैं। ऌ को दीर्घ नहीं होता, इस लिये उसके १२ भेद हैं। ऋ तथा ऌ ये सवर्ण हैं, और इनके ३० प्रकार हैं। ए, ऐ, ओ, तथा औ को ह्रस्व नहीं होता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके हैं।

ऊपर दिये हुए विषयको पढ़नेसे यह मालूम होगा कि जब प्रत्याहार किसी स्वरका बोध कराता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध कराता है। परन्तु यदि उस स्वरके बाद 'त्' हो तो उसीका बोध होता है जिसके बाद 'त्' है। अक् कहनेसे सब प्रकारके अ, इ, उ, ऋ, तथा ऌ का बोध होता है। अत् से सब प्रकारके ह्रस्व अ, आत् से दीर्घ आ के सब प्रकारोंका बोध होता है।

स्थानानि (उच्चारणके इन्द्रिय) १० वा पृष्ठ देखो।

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ (अ, कु-कवर्ग, ह्, तथा विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय हैं)।

इचुयशानां तालु (इ, चु—चवर्ग, य, तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय हैं)।

ऋटुरषाणां मूर्धा (ऋ, टु—टवर्ग, र्, तथा ष् इनका मूर्धस्थान है अर्थात् ये मूर्धस्थानीय हैं)।

ऌतुलसानां दन्ता (ऌ, तु-तवर्ग, ल्, तथा स् इनका दन्तस्थान है अर्थात् ये दन्तस्थानीय हैं)।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ (उ, पु पवर्ग, तथा उपध्मानीय ≈ इनका ओष्ठस्थान है, अर्थात् ये ओष्ठस्थानीय हैं)।

ञमङणनानां नासिका च (ञ्, म्, ङ्, ण, न् इनका नासिका स्थान भी है, अर्थात् ये नासिकास्थानीय भी हैं)।

एदैतौ कण्ठतालु (ए तथा ऐ का + कण्ठ तथा तालु स्थान है)।

ओदौतौ कण्ठोष्ठम् । (ओ, औ का कण्ठ तथा ओष्ठ स्थान है)।

वकारस्य दन्तोष्ठम् (व् का दन्त तथा ओष्ठ स्थान है)।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् (जिह्वामूलीय का स्थान जिह्वाका मूल है)।

नासिकानुस्वारस्य (अनुस्वारका नासिका स्थान है)।

सन्धिनियमाः ।

१। प्रति + उत्तरम् = प्रत्युत्तरम्, मधु + अरि = मध्वरि, पितृ + अर्थ = पित्रर्थ, लृ + आकृति = लाकृति ।

§ इको यणचि । ६।१।७७॥ इक्—इ, उ, ऋ, लृ—के स्थानमें यण् अर्थात् य्, व्, र्, तथा ल् होते हैं, यदि उनके आगे अच् वा स्वर हो। २९ वें पृष्ठमें २रा नियम देखो।

२। दैत्य + अरि = दैत्यारि, ओ + ईश = ओश, रघु + उत्तम = रघूत्तम, होतृ + ऋकार = होतॄकार, होतृ + लृकार = होतॄकार ।

* क के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको जिह्वामूलीय, तथा प के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको उपध्मानीय कहते हैं। राम + करोति = राम करोति, वा राम ≍ करोति, राम + पाति = राम पाति, वा राम ≍ पाति। जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीयके लिखनेका व्यवहार कम है।

† यदि 'ओष्ठ' के पूर्व 'अ' हो, तो वह अ तथा ओ मिलकर ओ वा औ होता है। जैसे—कम्बोष्ठम् वा कम्बौष्ठम्।

§ अष्टाध्यायीके प्रति अध्यायमें चार पाद हैं और पादोंमें सूत्र हैं। यह छठे अध्यायके प्रथम पादका ७७ वाँ सूत्र है। इसी प्रकार सूत्रोंके आगे दिये हुए अङ्कोंको समझना चाहिये।

से क् तकसे सब वर्णों (अ, इ, उ, ऋ) का बोध होता है। अच् से सब स्वरोंका बोध होता है। 'हयवरट्' के ह से 'हल्' के ल् तक हल् प्रत्याहार है, जिससे सब व्यञ्जनोंका बोध होता है।

स्वर तीन प्रकारके हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर प्लुत होता है। इनमें प्रत्येक स्वर दो प्रकारका होता है—अनुनासिक और अननुनासिक। इस प्रकार स्वर छ प्रकारके हैं। उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित ये भी तीन स्वरके भेद हैं, जो वेदमें पाये जाते हैं। इस रीति से अ, इ, उ इन में प्रत्येकके अठारह भेद हैं। ऋ के भी अठारह भेद हैं। ऌ को दीर्घ नहीं होता, इस लिये उसके १२ भेद हैं। ऋ तथा ऌ ये सवर्ण हैं, और इनके ३० प्रकार हैं। ए, ऐ, ओ, तथा औ को ह्रस्व नहीं होता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके हैं।

ऊपर दिये हुए विषयको पढ़नेसे यह मालूम होगा कि जब प्रत्याहार किसी स्वरका बोध कराता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध कराता है। परन्तु यदि उस स्वरके बाद 'त्' हो तो उसीका बोध होता है जिसके बाद 'त्' है। अक् कहनेसे सब प्रकारके अ, इ, उ, ऋ, तथा ऌ का बोध होता है। अत् से सब प्रकारके ह्रस्व अ, आत् से दीर्घ आ के सब प्रकारोंका बोध होता है।

स्थानानि (उच्चारणके इन्द्रिय) १० वा पृष्ठ देखो।

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः (अ, कु—कवर्ग, ह्, तथा विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय हैं)।

इचुयशानां तालु (इ, चु—चवर्ग य्, तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय हैं)।

ऋटुरषाणां मूर्धा (ऋ, टु—टवर्ग, र्, तथा ष् इनका मूर्धस्थान है अर्थात् ये मूर्धस्थानीय हैं)।

ऌतुलसानां दन्ताः (ऌ, तु तवर्ग, ल्, तथा स् इनका दन्तस्थान है अर्थात् ये दन्तस्थानीय हैं)।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ (उ, पु-पवर्ग, तथा उपध्मानीय * इनका ओष्ठस्थान है, अर्थात् ये ओष्ठस्थानीय हैं)।

ञमङणनानां नासिका च (ञ्, म्, ङ्, ण, न् इनका नासिका स्थान भी है, अर्थात् ये नासिकास्थानीय भी हैं)।

एदैतोः कण्ठतालु (ए तथा ऐ का+कण्ठ तथा तालु स्थान है)।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् † (ओ, औ का कण्ठ तथा ओष्ठ स्थान है)।

वकारस्य दन्तोष्ठम् (व् का दन्त तथा ओष्ठ स्थान है)।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् (जिह्वामूलीय का स्थान जिह्वाका मूल है)।

नासिकानुस्वारस्य (अनुस्वारका नासिका स्थान है)।

सन्धिनियमाः ।

१। प्रति+उत्तरम्=प्रत्युत्तरम्, मधु+अरि=मध्वरि, पितृ+अर्थ=पित्रर्थ, लृ+आकृति=लाकृति।

§ इको यणचि। ६।१।७७॥ इक्—इ, उ, ऋ, ऌ—के स्थानमें यण् अर्थात् य्, व्, र, तथा ल् होते हैं, यदि उनके आगे अच् वा स्वर हो। २९ वें पृष्ठमें २रा नियम देखो।

२। दैत्य+अरि=दैत्यारि, श्री+ईश=श्रीश, रघु+उत्तम=रघूत्तम, होतृ+ऋकार=होतॄकार, होतृ+लृकार=होतॄकार।

---

* क के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको जिह्वामूलीय, तथा प के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको उपध्मानीय कहते हैं। राम+करोति=राम ≍करोति, वा रामः करोति, राम+पाति=राम ≍ पाति वा रामः पाति। जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीयके लिखनेका प्रचार कम है।

† यदि 'ओष्ठ' के पूर्व 'अ' हो, तो वह अ तथा ओ मिलकर औ वा ओ होता है। जैसे—कण्ठौष्ठम् या कण्ठोष्ठम्।

§ अष्टाध्यायीके प्रति अध्यायमें चार पाद हैं और पादोंमें सूत्र हैं। यह ६ अध्यायके प्रथम पादका ७७ वां सूत्र है। इसी प्रकार सूत्रोंके आगे दिये अङ्कोंको समझना चाहिये।

अक सवर्णे दीर्घ ।६।१।१०१॥ सवर्ण (समान) अच् आगे रहनेपर अक् को दीर्घ एकादेश होता है। १८ वे पृष्ठमें ६ वा नियम देखो।

३। उप+इन्द्र=उपेन्द्र, परम+ईश्वर=परमेश्वर, रमा+ईश=रमेश, चन्द्र+उदय=चन्द्रोदय, गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम्, कृष्ण+ऋद्धि=कृष्णर्द्धि, तव+लृकार=तवल्कार—

अदेङ् गुणः ।१।१।२॥—अत्-अ तथा एङ्—ए, ओ गुण कहाते है। ५ वा पृष्ठ देखो। आद्गुणः ।६।१।८७॥ अवर्णके आगे यदि अच् हो तो उन दोनोंके स्थानमें एक गुण आदेश होता है। १८ वे पृष्ठमें ८ वा नियम देखो।

४। कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम्, परम+ऐश्वर्यम्=परमैश्वर्यम्, गङ्गा+ओघ=गङ्गौघ, महा+औषधि वा ओषधि=महौषधि।

वृद्धिरादैच् ।१।१।१॥ आत्—आ, तथा ऐच्-ऐ, औ वृद्धि कहाते हैं। ५ वे पृष्ठमें ११ वा नियम देखो। वृद्धिरेचि ।६।१।८८॥ (आत् एचि वृद्धि)—यदि अवर्णके बाद एच् हो तो उन दोनों स्वरोंके स्थानमें एक वृद्धि आदेश होता है ३५ वे पृष्ठमें ३रा नियम देखो।

५। हरे+ए=हरये, विष्णो+ए=विष्णवे, नै+अक=नायक, पौ+अक=पावक—

एचोऽयवायावः ।६।१।७८॥ अच आगे रहनेपर एच् के स्थानमें अय्, अव्, आय्, आव्, ये आदेश होते है। २४ वे पृष्ठमें ५वा नि० देखो।

६। हरे+एहि=हर एहि वा हरयेहि, विष्णो+इह=विष्ण इह वा विष्णविह, श्रियै+उद्यत=श्रिया उद्यत वा श्रियायुद्यत, गुरौ+अपि=गुरा अपि वा गुरावपि—

सुप्तिङन्तं पदम् ।१।४।१४॥ सुप् (कारक विभक्तियां) वा तिङ् (लकारोंके प्रत्यय) जिनके अन्त में हों, वे पद कहाते हैं।

१४ वा पृष्ठ ४था नियम देखो।

लोपः शाकल्यस्य। ८।३।१९॥ शाकल्याचार्यके मतसे, पदके अन्तमें

रहनेवाले अय्, आय्, अव्, आव् (ए, ऐ, ओ, तथा औ के आदेशसे) य वा व् का विकल्पसे लोप होता है।

२४वे पृष्ठमें ६ वा नियम देखो।

७। ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्। १।१।११॥ ईकारान्त, ऊकारान्त, तथा एकारान्त द्विवचन प्रगृह्य कहाता है। २९ वा पृष्ठ ५ वां नियम।

८। यदि कृष्ण अत्र गोचरति वा यदि कृष्णाऽत्र गोचरसि (सर्व प्लुतो विकल्प्यते)—कपी + आगच्छत = कपी आगच्छत, हरी + एतौ = हरी एतौ, विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ पचेते + इमौ = पचेते इमौ, अमी + ईशा = अमी ईशा —

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्। ६।१।१२५॥ स्वर आगे रहनेपर प्लुत और प्रगृह्य को नित्य प्रकृतिभाव होता है, अर्थात् इनमें कोई सन्धिकार्य नहीं होता। २९ वा पृष्ठ नियम ५, तथा ६५ वा पृष्ठ टिप्पणी १ में देखो।

९। हर्यनुभव वा हर्य्यनुभव, कर्ता वा कर्त्ता, वर्तमान वा वर्त्तमान —

अचोरहाभ्यां द्वे। ६।४।४६॥ अच्के पर रहनेवाले र् वा ह् के बादकी यर् को विकल्पसे द्वित्व होता है। ७१ पृष्ठ २ नियम।

१०। बिम्ब + ओष्ठ = बिम्बोष्ठ वा बिम्बौष्ठ, स्थूल + ओतु = स्थूलोतु वा स्थूलौतु —

ओत्वोष्ठयोः समासे वा (वार्तिक)—समासमें अ वर्णके बाद यदि ओतु वा ओष्ठ आवे तो पर का (ओतु वा ओष्ठ का) रूप विकल्पसे होता है।

११। हरे + अव = हरेऽव, विष्णो + अव = विष्णोऽव—

एङः पदान्तादति। ६।१।१०९॥ अ आगे रहनेपर पदान्तमें रहनेवाले एङ् को पूर्वरूप एक आदेश होता है, अर्थात् अ का लोप होता है। २३वां पृष्ठ नियम ४।

व्यञ्जनसन्धि।

१२। वाक्+ईश=वागीश, चित्+रूपम्=चिद्रूपम्—

झलां जशोऽन्ते। ८।२।३९॥ पदके अन्तमें रहनेवाले झल् को जश् होता है। ७१ पृष्ठ, नियम ३ (अ)।

१३। हरिस्+शेते=हरिश्शेते, रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति, सत्+चित्=सच्चित्, सत्+जन=सज्जन, शार्ङ्गिन्+जयति=शार्ङ्गिञ्जयति—

स्तोः श्चुना श्चुः।८।४।४०॥ स् तथा तवर्ग को श् तथा चवर्ग का योग रहनेपर श् तथा चवर्ग होता है। २४ पृष्ठ नि ७।

१४। रामस्+षष्ठ=रामष्षष्ठ, तत्+टीका=तट्टीका—ष्टुना ष्टुः। ८।४।४१॥ स् तथा तवर्ग को ष् तथा टवर्ग का योग रहनेपर ष् तथा टवर्ग होता है। ३० पृष्ठ, नियम ६।

१५। तत्+मरणम्=तद्मरणम् वा तन्मरणम्, एतत्+मुरारि=एतद्मुरारि वा एतन्मुरारि, तत्+मात्रम्=तन्मात्रम्, चित्+मयम्=चिन्मयम्, वाक्+मयम्=वाङ्मयम्—

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा। ८।४।४५॥ अनुनासिक आगे रहनेपर पदके अन्तमें रहनेवाले यर् को अनुनासिक विकल्पसे होता है। प्रत्यये भाषायां नित्यम्। ७१ पृष्ठ नि २ (ब), ३ (क)।

१६। तत्+लय=तल्लय, विद्वान्+लिखति=विद्वांल्लिखति—

तोर्लि। ८।४।६०॥ ल् आगे रहनेपर तवर्गको परसवर्ण होता है। १२१ वा पृष्ठ देखो।

१७। उद्+स्थानम्=उत्थानम्, उद्+स्तम्भनम्=उत्तम्भनम्

उत्थ्थानम् तथा उत्थ्तम्भनम् भी होता है पर प्रयोगमें कम आता है।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य। ८।४।६१॥ उद् पूर्वक स्था तथा स्तम्भ् धातुको पूर्वसवर्ण होता है। दूसरे सूत्रसे स्था तथा स्तम्भ् के स् को उसके

पूर्व रहनेवाले वर्णका सवर्ण वर्ण अर्थात् य होता है। दूसरे सूत्रसे य का विकल्पसे लोप होता है। ६४ पृष्ठ, टिप्पणी देखो।

१८। तत्+हितम्=तद्धितम् वा तद्धितम्, वाक्+हरि = वाग्हरि वा वाग्घरि —

झयो होऽन्यतरस्याम्। ८।४।६२॥ झय परस्य हस्य (पूर्वसवर्ण विकल्पेन)—झय् (वर्गके पहिले ४ वर्ण) से पर रहनेवाले ह् को विकल्पसे वर्गका चतुर्थ वर्ण होता है (क्योंकि वर्गका चतुर्थ ह् का सवर्ण है, जो घोष तथा महाप्राण है) १०८ पृष्ठ, १२ नियम देखो।

१९। तत्+शिव =तच्शिव वा तच्छिव, तत्+श्लोक =तच्-श्लोक वा तच्छ्लोक, पर वाक्+श्चोतति—

शश्छोऽटि। ८।४।६३॥ छत्वममीति वाच्यम्। झय से पर रहनेवाले श् को विकल्पसे छ् होता है, यदि उसके आगे अट् वा कात्यायनके अनुसार अम् हो ९२ पृष्ठ, टिप्पणी देखो।

२०। उद्+पतति = उत्पतति—

खरि च।८।४।५५॥ (झलां खरि चर)—खर् आगे रहनेपर झल् को चर होता है। ११ वा पृष्ठ देखो।

२१। पुष्पम्+हरति=पुष्प हरति, त्वम्+करोषि=त्व करोषि वा त्वङ्करोषि, हरिम्+वन्दे=हरिं वन्दे वा हरिव्ँवन्दे।

मोऽनुस्वारः। ८।३।२३॥ (पदान्तस्य, हलि) हल् आगे रहने पर पदान्त में रहनेवाले म् को विकल्पसे अनुस्वार होता है १४ पृष्ठ नियम ५।

२२। प्रत्यङ्+आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्+ईश =सुगण्णीश, सन्+अच्युत =सन्नच्युत —

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्। ८।३।३२॥ ५६ पृष्ठ, नि ५।

२३। शार्ङ्गिन्+छिन्धि=शार्ङ्गिञ्छिन्धि, कान्+चन=काञ्चन, बिडालान्+ताडयति=बिडालांस्ताडयति—

नश्छव्यप्रशान् ।८।३।७॥ २९ पृष्ठ, नि ३। प्रशान् अपवाद है। प्रशान् + चिनोति = प्रशाञ्चिनोति, प्रशांश्चिनोति नहीं।

२४। स्व + छाया = स्वच्छाया ; अ + छिनत् = अच्छिनत्, वि + छेद = विच्छेद—

छे च ।६।१।७३॥ छ् आगे रहने पर ह्रस्वको तुक् आगम होता है (त्, जिसको 'स्तोः श्चुना श्चुः' से च् होता है) १९६ पृष्ठ, १ टिप्पणी देखो।

चच्छिद्यते—

दीर्घात् ।६।१।७५॥ छ् आगे रहनेपर दीर्घको भी तुक् आगम होता है। १९६ पृष्ठ, टिप्पणी १ देखो।

लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया वा लक्ष्मीछाया—

पदान्ताद्वा ।६।१।७६॥ पदान्तमें रहनेवाले दीर्घको विकल्पसे तुक आगम होता है १९६ पृष्ठ, टिप्पणी १।

आ + छादयति = आच्छादयति, मा + छिन्दि = माच्छिन्दि।

आङ्माङोश्च । ६।१।७४॥ यह 'पदान्ताद्वा' का बाधक है। आ तथा मा को नित्य तुक् होता है १९६ पृष्ठ, टिप्पणी १।

विसर्गसन्धि।

२५। मन + रथ = मनोरथ, मन + हर = मनोहर, वीर + अस्ति = वीरोऽस्ति। पृष्ठ १८ नियम ७,८ तथा पृष्ठ २३ नियम ४।

२६। शुक + उत्पतति = शुक उत्पतति, बाला + आगच्छन्ति = बाला आगच्छन्ति, देवा + जयन्ति = देवा जयन्ति। पृष्ठ १९ नियम ९, तथा १४ पृष्ठ, नियम २।

२७। कपि + अस्ति = कपिरस्ति, मनो + अपत्यानि = मनोरपत्यानि, नि + रस = नीरस, नि + रोग = नीरोग २३ पृष्ठ, नियम २ तथा ३।

२८। अश्व + चरति = अश्वश्चरति, जन + तरति = जनस्तरति, राम + टीकते = रामष्टीकते। पृष्ठ १३ नि १, तथा पृष्ठ २९ नियम ४।

२९। हरि + शेते = हरिश्शेते, वा हरि शेते, हरि + स्फुरति = हरिस्स्फुरति, हरि स्फुरति, वा हरिस्फुरति—

वा शरि । ८।३।३६॥ शर् आगे रहनेपर विसर्गको विसर्ग होता है अर्थात् वह कायम रहता है। ३५ पृष्ठ, नि १।

खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्य —ऐसा शर् जिसके बाद खर हो, आगे रहनेपर विसर्गका विकल्पसे लोप होता है। राम + स्याता, रामस्स्याता, वा रामस्याता।

३०। स + अम्भु = स अम्भु, एष + विष्णु = एष विष्णु, पर एषक + रुद्र = एषको रुद्र, अब + शिव = अब शिव, वा अबश्शिव, एष + अनु = एषोऽनु—

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि। ६।१।१३२॥ हल आगे रहने पर ककाररहित एतद् तथा तद् के स् का लोप होता है, पर नञ् समासमें नहीं होता। (इसलिये एषको रुद्र और अब शिव) ३५पृष्ठ, नियम २।

अन्तर्गत सन्धि।

३१। पितृ + नाम् + पितृणाम्, कर् + न = कर्ण, कृष् + न = कृष्ण, रामेण, रामाणाम्, रामान्—

रषाभ्यां नो णः समानपदे।८।४।१॥ एक ही पदमें र् तथा ष् के बाद आनेवाले न् को ण् होता है। १० पृष्ठ, नि १।* ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् —ऋ के बाद आनेवाले न् को ण् होता है।१०पृष्ठ, नि १। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। ८।४।२॥ अट्, कु—कवर्ग, पु—पवर्ग, आङ् (उपसर्ग आ), नुम् (अनुस्वार) इनका व्यवधान होनेपर भी, अर्थात् ऋ, र्, वा ष तथा न् के बीचमें अट् इत्यादि रहनेपर भी न् को ण् होता है। पृष्ठ १०, नियम २।

* पाणिनिके सूत्रोंकी न्यूनता कात्यायनने अपने वार्त्तिकसे पूर्ण की। वार्त्तिकके अन्तमें 'वाच्यम्' वा 'वक्तव्यम्' आता है। इन दोनोंकी न्यूनता भाष्यकार पतञ्जलिने पूर्ण की, जिनके नियम इष्टि कहे जाते हैं। इष्टियोंके अन्तमें 'इष्यते' आता है।

३२ । वाच्+सु=वाक्+सु—

चो कुः ।८।२।३०॥ झल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें चु—चवर्गको कु—कवर्ग होता है ५६ पृष्ठ, नि २ ।

३३ । वाच्+भ्याम्=वाज्+भ्याम्=वाग्भ्याम् , बुध्+ध=बुद्+ध=बुद्ध , लभ्+ध=लब्ध , दुघ्+ध=दुग्ध ।

झलां जश् झशि ।८।४।५३॥ झश् आगे रहनेपर झल्को जश् होता है। १६८ पृष्ठ, नि (आ) ।

३४ । वाक्+सु=वाक्+षु=वाक्षु , कमल्+सु=कमल्+षु=कमलषु , वार्+सु=वार्षु , रामे+सु=रामेषु , हरिषु वृषु, वधूषु ; परन्तु रमासु ।

आदेशप्रत्यययोः ।८।३।५९॥ * इण् तथा कवर्गसे पर पदके अन्तमें न रहनेवाले आदेश वा प्रत्ययके स् को मूर्धन्य अथवा ष् होता है। ५६ पृष्ठ, नियम ७ ।

३५ । शास्+त =शिस्+त =शिष्+ट =शिष्ट , उषित , जक्ष्+इव=जक्स्+इव=जक्ष्+इव=जक्षिव ।

शासिवसिघसीनां च । ८।३।६० ॥ इण् तथा कवर्गसे पर शास्, वस्, तथा घस् के स्को ष् होता है। १७२ पृष्ठ, नियम (ङ) ।

३६ । पुनर्+रमते=पुनारमते ।

रो रि ।८।३।१४॥ र् आगे रहनेपर र् का लोप होता है २३ पृष्ठ, नियम ३ ।

ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ।६।३।१११। ढ् तथा र् को लोप करनेवाले वर्ण अर्थात् ढ् तथा र् आगे रहनेपर पूर्व अण् (अ, इ, उ) को दीर्घ होता है । १८७ पृष्ठ, नि० (इ) ।

---

* यहां इण् प्रत्याहार इ से लण् के तकका है, अर्थात् इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल् ।

३७ । बुध् + त = बुध् + ध = बुद् + ध = बुद्ध ।

झषस्तथोर्धोऽध ।८।२।४०॥ झष्से पर आनेवाले त् तथा थ् को ध् होता है, पर धा धातुके त् वा थ् को नही होता । १८६ पृष्ठ, नियम (आ)

३८ । लिह् + ति = लेह् + ति = लेढ् + ढि = लेढि, लेढा, लीढ, ऊढ —

लिह् + स्यति = लेह् + स्यति = लेट् + स्यति = लेक् + स्यति = लेक् + ष्यति = लेक्ष्यति—

हो ढ ।८।२।३१॥ झल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें ह् को ढ् होता है १८६ पृष्ठ, नियम (अ) ।

षढो क सि ।८।२।४१॥ स् आगे रहनेपर ष् तथा ढ् को क् होता है १७४ पृष्ठ, नियम (च) ।

३९ । दुह् + तासि = दोह् + तासि = दोघ् + धासि दोग् + धासि = दोग्धासि, दोह् + स्यामि = दोघ् + स्यामि = धोघ् + स्यामि—

दादेर्धातोर्घ ।८।२।३२॥ झल् आगे रहनेपर वा पदके अन्तमें दकारादि धातुके ह् को घ् होता है । १८७ पृष्ठ, नियम (ई) ।

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वो ।८।२।३७॥ पृष्ठ १८८, नि (इ) ।

४० । द्रोग्धा, द्रोढा, स्नेढ् + स्यति = स्नेक् + स्यति इत्यादि = स्नेक्ष्यति, मूढ वा मुग्ध—

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ।८।२।३३॥ झल आगे रहनेपर वा पदान्तमें द्रुह्, मुह्, स्नुह्, तथा स्निह् के ह् को विकल्पसे घ् होता है, पक्षमें ढ् होता है । १८७ पृष्ठ, नि (उ) ।

४१ । नह् + ता = नध् + ता = नध् + धा = नद्धा, नत्स्यति, उपानद्भि —

नहो ध ।८।२।३४॥ झल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें नह के ह् को ध् होता है । १८७ पृष्ठ, नियम (उ) ।

४२ । सह् + त = सढ् + त = सढ् + ध = सढ् + ढ = सोढ, सोढुम्—

पाणिनिकी सञ्ज्ञाओंके अर्थ।

लट्—वर्तमान, लिट्—परोक्षभूत, लुट्—अनद्यतनभविष्यत्, लृट्—सामान्यभविष्यत्, लेट्—विधि (वैदिक); लोट्—आज्ञा, लङ्—अनद्यतनभूत, लिङ्—विधि तथा आशीर्लिङ्, लुङ्—सामान्यभूत, लृङ्—क्रियातिपत्ति।

णिच्—प्रेरणार्थक प्रत्यय, सन्—इच्छार्थक प्रत्यय, यङ्—पौनःपुन्यार्थक (बार २ होनेके अर्थमें) प्रत्यय।

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥

अजन्त वा ऐसा धातु जिसमें अकार हो, जो तास् (अनद्यतनभवि का प्रत्यय) आगे रहने पर अनिट् होता है, थल् (परोक्षभूतका थ) आगे रहने पर वेट् होता है, इस प्रकारका ऋकारान्त धातु नित्य अनिट होता है, और कृ इत्यादि (कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु) के सिवा अन्य धातु लिट में सेट् होते हैं। २६२ पृष्ठ, नि ९, तथा २६३ पृष्ठ, नियम १०, ११।

संस्कृत व्याकरणोंमें धातु कुछ अनुबन्धोंके साथ दिये गये हैं, जैसे—ग्रसॢ अदने, मृङ् मरणे, डुकृञ् करणे, गुपू रक्षणे, ञिदिर् द्वैधीकरणे, ष्ठसु अनवस्थाने, नृती गात्रविक्षेपे। इन धातुओंमें लृ, ङ्, ञ, ऊ, इर्, उ तथा ई ये अनुबन्ध हैं। लृ अनुबन्धवाले धातुओंमें नियमसे लुङ्का द्वितीय प्रकार होता है, इर् अनुबन्धवाले धातुओंमें विकल्पसे लुङ् का द्वितीय प्रकार होता है, ऊ अनुबन्धवाले वेट् हैं, ङ् अनुबन्धवाले आत्मने, तथा ञ अनुबन्धवाले उभयपदी होते हैं, उ अनुबन्धवाले धातुओंके अव्ययभूत कृदन्तमें विकल्पसे इ आगम होता है, ई अनुबन्धवाले धातुओंमें त आगे रहनेपर इ आगम नहीं होता। यद्यपि धातुओंका उनके अनुबन्धोंके साथ याद करना परिश्रमका काम है परन्तु वह परिश्रम सफल है, क्योंकि विद्यार्थियोंको याद करना सुगम होता है। प्रधान धातु उनके अनुबन्धोंके साथ नीचे दिये जाते हैं —

१। भ्वादि।

वदि अभिवादनस्तुत्योः (वन्दते)।
स्यदि निःस्रवणे (स्यन्दते)।
त्रपूष् लज्जायाम् (त्रेपिषे त्रसे)।
क्षमूष् सहने (चक्षमिषे चक्षंसे)।
क्रमु पादविक्षेपे (क्रमित्वा-क्रान्त्वा, क्रन्त्वा)।
अशु अदने।
गाहू विलोडने।
ष्टुञ् स्तुतौ।
स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु अवस्रंसने।
वृतु वर्तने (वर्तित्वा—वृत्वा)।
वृधु वृद्धौ।
स्यन्दू प्रस्रवणे।
कृपू सामर्थ्ये।
रमु क्रीडायाम्।
क्रमु चलने।
षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (लुङ्—असदत्)।
गुहू संवरणे।
गम्लृ सृप्लृ गतौ (अगमत, असृपत)
पत्लृ गतौ।
दृशिर् प्रेक्षणे (अदर्शत-अद्राक्षीत)
डीङ् विहायसा गतौ (डयते)।
मेङ् पालने।
श्रिञ् सेवायाम् (अश्रित-ते)।
भृञ् भरणे।
हृञ् हरणे।
णीञ् प्रापणे।
धृञ् धारणे।

२। अदादि।

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि।
शीङ् स्वप्ने।
षूङ् प्राणिगर्भविमोचने।
ष्टुञ् स्तुतौ।
ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि।
मृजू शुद्धौ।
रुदिर् अश्रुविमोचने (अरोदीत्—अरुदत्)।
शासु अनुशिष्टौ।

३। जुहोत्यादि।

डुभृञ् धारणपोषणयोः।
ओहाङ् गतौ।
डुदाञ् दाने।
डुधाञ् धारणपोषणयोः।

४। दिवादि।

दिवु क्रीडादिषु।
तुषो उद्वेगे।
नृती गात्रविक्षेपे।
जनी प्रादुर्भावे।
शमु उपशमे।
तमु काङ्क्षायाम्।

दमु उपशमे ।
श्रमु तपसि खेदे च ।
भ्रमु अनवस्थाने ।
क्षमू सहने ।
क्लमु ग्लानौ ।
मदी हर्षे ।
असु क्षेपणे ।

५ । स्वादि ।

षुञ् अभिषवे ।
चिञ् चयने ।
स्तृञ् आच्छादने ।
वृञ् वरणे ।
धुञ् कम्पने ।
शक्लृ शक्तौ ।
आप्लृ व्याप्तौ ।

६ । तुदादि ।

उन्दी क्लेदने ।
दृङ् आदरे ।
धृङ् अवस्थाने ।
पृङ् व्यायामे ।
मृङ् प्राणत्यागे ।
षद्लृ विशरणादिषु ।
मुचॢ मोचने ।
लुप्लृ छेदने ।
विद्लृ लाभे ।
न। छेदने ।

७ । रुधादि ।

रुधिर् आवरणे ।
छिदिर् द्वैधीकरणे ।
भिदिर् विदारणे ।
रिचिर् विरेचने ।
युजिर् योगे ।
शिष्लृ विशेषणे ।
पिष्लृ सञ्चूर्णने ।
अञ्जू व्यक्त्यादिषु ।

८ । तनादि ।

तनु विस्तारे ।
क्षणु क्षिणु हिंसायाम् ।
मनु अवबोधने ।
वनु याचने ।
डुकृञ् करणे ।

९ । क्र्यादि ।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।
प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ।
पूञ् पवने ।
स्तॄञ् आच्छादने ।
वृञ् वरणे ।
धूञ् कम्पने ।
लूञ् छेदने ।
क्लिशू विबाधने ।

१० । चुरादि ।

धूञ् कम्पने ।
प्रीञ् तर्पणे ।

परिशिष्ट (ग)।

कृदन्त रूप।

धातु	भू कृ	अव्य. भू कृ	तुम्
ज्ञा	ज्ञात	ज्ञात्वा	ज्ञातुम्
स्था	स्थित	स्थित्वा	स्थातुम्
दा	दत्त	दत्त्वा	दातुम्
आदा	आत्त-आदत्त	आदाय	आदातुम्
प्रदा	प्रत्त-प्रदत्त	प्रदाय	प्रदातुम्
धा	हित	हित्वा	धातुम्
पा	पीत	पीत्वा	पातुम्
हा छोड़ना	हीन	हित्वा	हातुम्
हा जाना	हान	हात्वा	हातुम्
नी	नीत	नीत्वा	नेतुम्
श्रु	श्रुत	श्रुत्वा	श्रोतुम्
कृ	कृत	कृत्वा	कर्तुम्
तॄ	तीर्ण	तीर्त्वा	तरितुम्-तरीतुम् तर्तुम्
पॄ	पूर्ण	पूर्त्वा	परितुम् परीतुम्-पर्तुम्
हृ	हृत	हृत्वा	हर्तुम्
गै	गीत	गीत्वा	गातुम्
त्रै	त्रात वा	त्रात्वा	त्रातुम्
म्लै	म्लान	म्लात्वा	म्लातुम्
ग्लै	ग्लान	ग्लात्वा	ग्लातुम्
सो	सित	सित्वा	सातुम्

पच्	पक्व	पक्त्वा	पक्तुम्
मुच्	मुक्त	मुक्त्वा	मोक्तुम्
युज्	युक्त	युक्त्वा	योक्तुम्
वृत्	वृत्त	वृत्त्वा-वर्तित्वा	वर्तितुम्
अद्	जग्ध	जग्ध्वा	अत्तुम्
खिद्	खिन्न	खित्त्वा	खेत्तुम्
छिद्	छिन्न	छित्त्वा	छेत्तुम्
क्षुध्	क्षुद्ध	क्षुद्ध्वा	क्षोद्धुम्
तन्	तत	तत्वा तनित्वा	तनितुम्
मन्	मत	मत्वा	मन्तुम्
हन्	हत	हत्वा	हन्तुम्
खन्	खात	खनित्वा-खात्वा	खनितुम्
जन्	जात	जनित्वा	जनितुम्
लभ्	लब्ध	लब्ध्वा	लब्धुम्
गम्	गत	गत्वा	गन्तुम्
नम्	नत	नत्वा	नन्तुम्
यम्	यत	यत्वा	यन्तुम्
रम्	रत	रत्वा	रन्तुम्
क्रम्	क्रान्त	क्रमित्वा, क्रान्त्वा, क्रन्त्वा	क्रमितुम्
शम्	शान्त	शमित्वा, शान्त्वा	शमितुम्
प्रच्छ्	पृष्ट	पृष्ट्वा	प्रष्टुम्
विश्	विष्ट	विष्ट्वा	वेष्टुम्
दृश्	दृष्ट	दृष्ट्वा	द्रष्टुम्
सृज्	सृष्ट	सृष्ट्वा	स्रष्टुम्
नश्	नष्ट	नष्ट्वा, नंष्ट्वा, नशित्वा	नष्टुम्
यज्	इष्ट	इष्ट्वा	यष्टुम्

वप्	उप्त	उप्त्वा	वप्तुम्
वच्	उक्त	उक्त्वा	वक्तुम्
वह्	ऊढ	ऊढ्वा	वोढुम्
वस्	उषित	उषित्वा	वस्तुम्
वद्	उदित	उदित्वा	वदितुम्
व्यध्	विद्ध	विद्ध्वा	व्यद्धुम्
ग्रह्	गृहीत	गृहीत्वा	ग्रहीतुम्
लिह्	लीढ	लीढ्वा	लेढुम्
दुह्	दुग्ध	दुग्ध्वा	दोग्धुम्
नह्	नद्ध	नद्ध्वा	नद्धुम्
सह्	सोढ	सोढ्वा, सहित्वा	सोढुम्-सहितुम्
भञ्ज्	भग्न	भक्त्वा, भङ्क्त्वा	भङ्क्तुम्
बन्ध्	बद्ध	बद्ध्वा	बन्द्धुम्
चुर्	चोरित	चोरयित्वा	चोरयितुम्
कृ-प्रे०	कारित	कारयित्वा	कारयितुम्
निविश् प्रे०	निवेशित	निवेश्य	निवेशयितुम्
प्रगण्	प्रगणित	प्रगणय्य	प्रगणयितुम्
विरच्	विरचित	विरचय्य	विरचयितुम्

धातु भू कृ
ध्या—ध्यान
चि—चित चीण
श्री—श्रयित
ह्री—ह्रीन
लू—लून
क्षै—क्षाम
मस्ज्—मग्न
मद्—मत्त
प्याय्—प्यान, पीन (पीन मुखम्। अन्यत्र प्यान पीन स्वेद)
स्फाय्—स्फीत
त्वर्—त्वरित तूर्ण
फल—फुल्ल
श्वि—शून शून (विजिगीषाया शूनम्)
धाव्—धौत
ष्ठिव्—ष्ठ्यूत
सिव्—स्यूत
शुष्—शुष्क
मुह्—मुग्ध—मूढ
निर्-वा—निर्वात ण (निर्वाणोऽग्निर्मुनिश्च, निर्वातो वात)।
घ्रा—घ्रात-ण
ह्री—ह्रीत ण

धातु—अव्य भू कृ
प्र ख्या—प्रख्याय
वि जि—विजित्य
प्र स्तु—प्रस्तुत्य
अधि इ—अधीत्य
अनु कृ—अनुकृत्य
वि स्मृ—विस्मृत्य
अनु भू—अनुभूय
उद् तृ—उत्तीर्य
आह्वे—आहूय
अनु मन्—अनुमत्य
नि हन्—निहत्य
आ गम्—आगम्य, आगत्य
नि यम्—नियम्य, नियत्य
प्र णम्—प्रणम्य, प्रणत्य
वि रम्—विरम्य, विरत्य
अप वह्—अपोह्य
प्र वच—प्रोच्य
उप वस्—उपोष्य
अनुबन्ध्—अनुबध्य
सम् श्री—संश्रय्य

कर्त्तरि भूतकृदन्त।

गम्—गतवत्
कृ—कृतवत्

परोक्षभू कृदन्त।

दा—ददिवस्

पत्—पेतिवस्
कृ—चकृवस्—चक्राण (आ)
हृ—जहृवस्-जह्राण (आ)
नी—निनीवस्—निन्यान (आत्म)
स्तु—तुष्टुवस्—तुष्टुवान (आत्म)

वर्तमान कृदन्त पर

भ्वा गम्—गच्छत्—गच्छन्ती (स्त्री.)
दृश—पश्यत्—पश्यन्ती
दा—यच्छत्—न्ती
गुह्—गूहत्—न्ती
सद्—सीदत्—न्ती
दि पुष्—पुष्यत्—न्ती
तुष्—तुष्यत्—न्ती
सो—स्यत्—न्ती
श्रम्—श्राम्यत्—न्ती
भ्रम—भ्रम्यत्—न्ती, भ्राम्यत्—न्ती, भ्रमत्—न्ती
तु क्षिप—क्षिपत्—ती—न्ती
इष्—इच्छत—ती—न्ती
प्रच्छ्—पृच्छत्—ती—न्ती
मस्ज्—मज्जत—ती—न्ती
व्रश्च्—वृश्चत्—ती—न्ती
मस्ज्—मज्जत् ती न्ती
सृज्—सृजत् ती न्ती
सद्—सीदत् ती न्ती
कॄ—किरत्-ती-न्ती

चु चुर्—चोरयत्-न्ती
पीड्—पीडयत् न्ती
स्पृह्—स्पृहयत् न्ती

आत्मने ।

भ्वा वृत्—वर्तमान ना (स्त्री)
वृध्—वर्धमान ना
रम्—रममाण-णा
गुह्—गूहमान-ना
त्रै—त्रायमाण णा
दि जन्—जायमान ना
विद्—विद्यमान—ना
बुध्—बुध्यमान ना
युध्—युध्यमान ना
दीप्—दीप्यमान ना
तु मृ—म्रियमाण-णा
व्याप्—व्याप्रियमाण णा
दृ—द्रियमाण णा
धृ—ध्रियमाण णा
चु मन्त्र्—मन्त्रयमाण-णा
भर्त्स्—भर्त्सयमान ना
तर्ज्—तर्जयमान-ना

परस्मै ।

अ या—यात्-ती न्ती
अस्—सत्—ती
इ—यत् ती
नु—नुवत्-ती

ब्रू—ब्रुवत्-ती

स्तु—स्तुवत्-ती

शास्—शासत्-ती

जक्ष्—जक्षत्-ती

हन्—घ्नत्-ती

जागृ—जाग्रत्-ती

आत्मने ।

आस्—आसीन-ना

अधिइङ्—अधीयान-ना

ब्रू—ब्रुवाण-णा

शी—शयान-ना

स्तु—स्तुवान-ना

ईश्—ईशान-ना

चक्ष्—चक्षाण-णा

वस्—वसान-ना

परस्मै ।

जु हु—जुह्वत्-ती

हा—(छोड़ना) जहत्-ती

भी—बिभ्यत्-ती

दा—ददत्-ती

ह्री—जिह्रियत्-ती

भृ—बिभ्रत्-ती

निज्—नेनिजत्-ती

आत्मने ।

हा (जाना)—जिहान-ना

मा—मिमान-ना

दा—ददान-ना

भृ—बिभ्राण-णा

निज्—नेनिजान-ना

परस्मै ।

स्वा चि—चिन्वत्-ती

आप्—आप्नुवत्-ती

श्रु—शृण्वत्-ती

वृ—वृण्वत्-ती

आत्मने ।

चि—चिन्वत्-ना

अश्—अश्नुवान-ना

वृ—वृण्वान-ना

परस्मै ।

रु रुध्—रुन्धत्-ती

भञ्ज्—भञ्जत्-ती

छिद्—छिन्दत्-ती

हिंस्—हिंसत्-ती

आत्मने ।

रुध्—रुन्धान-ना

इन्ध्—इन्धान-ना

छिद्—छिन्दान-ना

भुज् (खाना)—भुञ्जान-ना

परस्मै ।

तना तन्—तन्वत्—ती

कृ—कुर्वत्—ती

क्षण्—क्षण्वत्-ती

आत्मने ।

तन्—तन्वान-ना

कृ—कुर्वाण-णा

वन्—वन्वान ना

परस्मै ।

क्रा। क्री—क्रीणत्-ती

ग्रह्—गृह्णत् ती

मुष्—मुष्णत् ती

ज्ञा—जानत्-ती

बन्ध्—बध्नत् ती

आत्मने ।

क्री—क्रीणान ना

ग्रह्—गृह्णान ना

ज्ञा—जानान-ना

भवि कृदन्त ।

कृ—करिष्यत्-ती न्ती

गम्—गमिष्यत ती न्ती

श्री—श्रयिष्यमाण-णा

कृ—करिष्यमाण-णा

शुद्धिपत्र ।

—०—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	ऋट	ऋह
४	अन्तिम	स्मर+अ	स्मर् अ
६	१४	सुज्ञाना	सुझाना
६	२१	छते	छूते
७	१	उपर	ऊपर
१०	१४	ऋट	ऋह
१०	१५	न	न्
१०	१७	कण्ट	कण्ठ
१७	१४	रामाणाम	रामाणाम
१७	२३	गमें	ग् में
८	हेडिंग	स्कृत	सस्कृत
९	१	व्याघ्रभ्य	व्याघ्रेभ्य
९	८	हस्ताद्	हस्ताद्
०	४	अयके	अर्थके
१	२०	हरीणाम	हरीणाम्
१	२६	भानुभ्याम	भानुभ्याम्
७	४	पुष्प्राणा	पुष्पाणा
८	८	मस	मस्

शुद्धिपत्र ।

—०—

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	ऋट	ऋद्द
४	अन्तिम	स्मर+अ	स्मर् अ
६	१४	सुज्ञाना	सुभ्ताना
६	२१	कृतै	कृते
७	१	उपर	ऊपर
१०	१४	ऋट	ऋद्द
१०	१५	न	न्
१०	१७	काष्ट	काष्ठ
१७	१४	रामाणाम	रामाणाम
१७	२३	गार्मे	ग् मे
१८	हेडिंग	स्कृत	संस्कृत
१९	१	व्याघ्रभ्य	व्याघ्रेभ्य
१९	८	ह्नचात्	ह्नचात्
२०	४	अर्थके	अर्थके
२१	२०	हरीणाम	हरीणाम्
२१	२६	भानुभ्याम	भानुभ्याम्
२७	४	पुष्प्राणा	पुष्पाणा
२८	८	मस	मस्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१६	मस	मस्
३२	२१	प	प्र
३२	२३	सर्वं ण	सर्वेण
३३	८	पलिङ्ग	पु लिङ्ग
३३	९	सव	सर्व
३५	१	उनके	उनको
३५	२३	देवर्ता	देवता
३७	६	कुलपती	कुलपतेः
३७	८	विघ्नघ्न	विघ्न
३७	२२	श्वश्वा	श्वश्वा
३८	२०	वध्वौः	वध्वो
३९	७	अति द्दम	अतिसूक्ष्म
४०	१५	होतेते	होते
४१	हेडिंग	अर	और
४२	,,	ओर	और
४४	३	प्रनिदिन	प्रतिदिन
४५	अन्तिम	समास	समान
५३	२१	भगवन्तो	भगवन्तौ
५६	१३	कसलके	कमलके
५८	१७	श्रै	शैल
५९	११	अव्यय	अव्यय

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
५८	टिप्पणी	लचीवत्	लक्ष्मीवत्
५८	२	भूमिमत	भूमिमत्
५८	,,	समास	समास
६०	५	स्त्रीलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
६०	अन्तिम	प्रवर्तम्	प्रवर्तम्
६१	,,	क्त—	क्त—
६४	७	लिले	लिये
६४	१६	मव	मैव
७५	१६	ऋवा	ऋवा
८३	४	विद्योतते	विद्योतते
८४	८	(दरा)	(दुरा)
८४	१८, २०	कर्ता कार्ते	कर्ता कर्ते
८७	५	नृणा	नृणा
६०	५	जाता है	जाता है
६०	८	स्थानम	स्थानम्
६५	ऐडिंग	ऋकारान्त	ऋकारान्त
६६	१	१७	१८
६६	१४	वस्तु	वस्तुपु
६८	१७	पूवके	पूर्वक
१००	८	३	२
१००	१७	देवायत्त	देवाय

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१०८	४	प्रेरणार्थंक	प्रेरणार्थक
१०९	४	समासाद्य	समासाद्य
११०	३	(रत्नम्) पु	(रत्नम्) न,
११०	१२	ब्राह्मण	ब्राह्मण
१११	टिप्पणी	प्रयह	प्रत्यह
११२	११	रतपरीक्षा	रत्नपरीक्षा
११३	२२	पुष—	पुम्—
११४	२	ह्वि व	ह्वि व
,,	,,	ड व	ब व
,,	१८	स्नात्—	स्नात्—
११६	६	साधु	साधु
,,	२०	(अङ्गम्)	अङ्गम्
११७	२०	वाल्मोकि	वाल्मीकि
११८	५	साध	साधुत्व
११८	२१	जाता है	आता है
१२०	४	किय	किया
१२०	१२	सेदिवद्भ्य	सेदिवद्भ्य
१२०	१६	सेदिवास	सेदिवास
२२१	१२	गरिष्ट	गरिष्ठ
१२१	२०	वलिष्ठ	बलिष्ठ
१२२	२४	लशान्	क्लेशान्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१२३	१	तिष्टन्ते	तिष्ठन्ते
१२४	७	भ्राष्ट	भ्राष्ट्र
१२५	२१	श्रोर	श्रौर
१२६	५	एकद्वि,	एक, द्वि,
१३१	२४	सुष्टु	सुष्ठु,
१३४	अन्तिम	स्रिय	स्त्रिय
१३५	१८	अच्चि	अस्थि
१३५	२०	अच्चन्	अस्थन्
१३५	टिप्पणी	रजस्वला	रजस्वला
१४०	अन्तिम	शृण	शृणु
१४२	७	पररमपद	परस्मैपद
१४५	२०	भुंवा	भ्रुंवा
१४८	३	तुस	तुम्
१४८	२०	दोरधु	दोग्धु
१५०	१५	अक्रोणाथ म्	अक्रोणायाम्
१५१	१८	सम्यत्सम्पद	सम्पत्सम्पद
१५२	१२	(ज व)	(ज व)
१५३	१५	ओजखिता	ओजस्विता
१५४	१२	(सुयोधन)	(सुयोधन)
१५८	२१	—	ब्रुवीत
१६३	२०		विद्धि

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१६४	१८	अगुठी	अगूठी
१६५	७	कारण	कारण
१६७	१६	त्व	त्वा
१६८	१५	भ्रस्ज	भ्रस्ज्
१६९	१५	श्वस	श्वस्
१७५	१८	देवेन	दैवेन
१७८	टिप्पणी	प्रत्यग	प्रत्यय
१८३	,,	रुन्द्धम्	रुन्धम्
१८४	२०	भिन्ते	भिन्दताम्
१८४	२४	भिन्ते	भिन्दताम्
१८५	२	अभिन्ताम्	अभिन्त्ताम्
१८७	२२	द्रुह	द्रुह्
१८८	२२	दिवसे	दिवस
१९१	अन्तिम	अनुकुल	अनुकूल
१९२	टिप्पणी	रञ्ज	रञ्ज्
१९४	२२	मकारौ	नकारौ
१९७	४	—तृत—	—तृतृ—
१९७	१९	विभराम है	बिभरामहै
२०२	१४	पाप	पाप
२०३	५	कात	क्षात
२०३	६	पुनदर्शनानि	पुनर्दर्शनानि

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२०८	१२	यावनमल्यक्रामत्	यौवनमल्यक्रामत्
२११	१	अवतम	अततम
२१८	१	अवयव	अवयवै
२१९	७	अव्ययीभाव	अव्ययीभाव
२२१	५	अपर	अमर
२२१	६	मध्यान्ह	मध्याह्न
२२१	१२	कामलम	कामलम्
२२५	हेडिंग	तत्प रूप	तत्पुरुष
२२५	१	कोइ	कोई
२२६	अन्तिम	वत्मत	उत्पन्न
२२८	२	सविज्ञान	सविज्ञान
२२८	१५	इत्यादि	इत्यादि
२३३	६	(विहार)	(विहार)
२३४	१२	शब्दसग्रहा	शब्दसग्रहों
२४०	१०	प्रजायन्त	प्रजायन्ते
२४०	१६	च्छोतु—	च्छ्रोतु—
२४१	३	रुदता	रुदती
२४४	१	(परिचप)	(परिचय)
२४७	८	परिवत्तन	परिवर्तन
२४७	२४	धातुको	धातुओंको
२४७	टि० २	—	अदृदर्स्ते—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२५०	३	लुट्	लट्
२५०	८	लुङ्	लङ्
२५१	७	ह्रध	ह्रध्
२५२	८	अनुनामिक	अनुनासिकं
२५३	७	प्रक्षात	प्रकृति
२५६	७	मारकी	मोरकी
२५७	२२	हटहच्च	वटहच्च
२६२	७	चिक्राय	चिक्राय
२६२	१२	पप्रच्छ	पप्रच्छु
२६२	१७	जक्रतुः	जक्रतु.
२६३	७	अविकार	अविकारक
२६३	१४	र , व	र् , व्
२६६	१	गुण सन्निपाते	गुणसन्निपाते
२६६	१७	पररपर	परस्पर
२६७	५	हत्ति	हत्ति
२७०	१८	ऋकाराल्न	ऋकारान्त
२७१	८	वच	वच्
२७३	३	पूर्वं	पर
२७३	अन्तिम	ब्राह्मा	ब्राह्मरा
२७५	२	शखायें	शाखाये
२७५	३	वप	वर्प

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२७८	१५	माला कारा	मालाकारा
२८२	२०	मित	मिति
२८५	६	(स्त्री)	(स्त्री)
२८६	१५	दूर्धी	दुर्धी
२९१	हेडिंग	द्वित	तद्धित
२९३	८	दर्श न	दर्शन
२९४	२	पड	पड्
२९४	५	परिष्वजे	परिष्वजे
२९९	२	अवादिष्ठाम्	अवादिष्टाम्
२९९	१७	इष्ठाम्	इष्टाम्
२९९	अन्तिम	अचान्पि	अचालिपु
३०५	१२	न्यत	न्यत
३०६	११, १२	यतयस्य	यतयोऽस्य
३०६	१६	रत्यु पाय	ऽत्युपाय
३०६	१६	तेनलन्तिक	तेनात्यन्तिक
३०८	२०	सद्गुण	सद्गुण
३०८	५	क्राया	नुरा
३१०	६	चितिधेनुरिव	चितिर्धेनुरिव
३१७	२४	रुद्रै च्छिन्ना	रुद्रै श्छिन्ना
३१४	१३	तावुभो	तावुभौ
३१६	१७	कुरनेमे	करनेमें

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३१९	५	उरु	उरू
३२१	१४	रोधस	रोधस्
३२३	७	तमाचायकल्पभा	तमाचार्यं कल
३२३	१५	अदृश्य तत्व—	अदृश्यत त्व—
३२७	१०	तद्द ख	तद्दु'ख
३२९	८	सुज्वलाकार	सुज्वलाकारं
३३०	२	बुद्धया	बुद्ध्या
३३१	५	रुक्मणी	रुक्मिणी
३३१	११	च्छ्रयता	च्छ्रूयता
३३२	१	भूत्तसेव	भूत्तमेव
३३२	४	सिद्द	सिह.
३३३	१७	मालिङ्गग्य	मालिङ्ग्य
३३५	६	धम	धर्मं
३३७	१५	लोकेच्छेद्य	लोकोच्छेद्य
३३९	४	सोभ्य	सोम्य
३४०	११	तद्दन	तद्दन
	८	अभ्रव	अभ्रुव
	१२	राचा	राजा
	१५	य	ये
३४८	१४	का नापदो	कानापदो
३४८	१९	या यामवस्था	या यामवस्थां

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३५०	१०	धम	धर्म
३५१	५	नाशुते	नाश्नुते
३५१	८	वशो	वशी
३५२	८	म्रत्यना	मृत्य ना
१५५	३	चन्द्रोज्वला	चन्द्रोज्ज्वला
३५२	२३	द्रमालय	द्रुमालय
३५७	२५	वक्लव्यं	वैक्लव्य
३५८	२५	दरत—	दूरत—
३६०	१	॰नुकत्त्या	नुहत्त्या
३६२	७	चाटन्	चाटून्
३६२	८	नपां	नेपा
३६५	१७	विधयं	विधेय
३६६	६	अतिकान्तो	अतिक्रान्तो
३७१	२२	मत्यभ्यज्ञास	मत्यभ्यज्ञासी
३७८	११	[illegible]	सोऽर्थो॰
३८०	१९	[illegible]	पहु चनेवाला
३८१	२	[illegible]	मुनिके
३८३	५	[illegible]	है
३८८	१३	वाद	वाद
३८८	अन्तिम	शाकल्यस्य	शाकल्यस्य
३८९	१	य	य

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
३१२	७	तुक	तुक्
३८३	२४	कत्तव्यम्	वक्तव्यम्
३८५	१	वुड	वुड्
३८७	१८	आडपूर्वक	आड्पूर्वक
४००	११	स्तृञ	स्तृञ्

त्रुटि।

११ पृ०, प० १२ में य, व्, इत्यादिके पूर्व 'वर्गोंके अन्ति ३ वर्ण' अधिक पढना चाहिये।

३५ पृ०, प १७ में दूसरे नियममें 'जब स और एव विसर्गके बाद' इत्यादि पढना चाहिये।

४५ पृ०, प० ७ में पीतमम्बर यस्य स के बाद 'पीताम्ब जोडना चाहिये।

१०७ पृ०, नियम ७ को इस प्रकार पढना चाहिये — ऋ को गुण वा वृद्धि होने ... को दूर होता है, और यह ऋ ओष्ठस्थानीय वर्णके बाद आता है तो उसको होता है।